॥ श्रीः ॥

हिन्दी के मुसलमान कवि

गंगाप्रसादसिंह विशारद

द्वारा संग्रहीत

दुर्गाप्रसाद खत्री

प्रोप्राइटर लहरी बुकडिपो, काशी द्वारा

प्रकाशित

१९२६ [मूल्य— १।।।)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठसंख्या

विषय	पृष्ठसंख्या

दो शब्द ।

मुझे तो केवल दो शब्द लिखने हैं। परन्तु क्या लिखूं ? कौन से दो शब्द लिखूं। "हिन्दू-मुसलमान" "मेल-मिलाप" ।

१९२१—२२ में मालूम होता था कि हिन्दू-मुसल्मान एक दिल हो गए पर १९२४ मे यह मेल हवा हो गया। प्यारे गङ्गा प्रसाद को सच्चे मेल की झलक १९२१ के युगान्तर में मिलो थी। उसी का यह पुस्तक परिणाम है। धर्म के नाम पर लोग लड़ते है। साहित्य के नाम पर लोग बिगड़ उठते हैं पर जब स्थाई मेल होगा, धर्म और साहित्य ही के द्वारा होगा।

साहित्य द्वारा मेल का नमूना इस पुस्तक में मिलेगा। "कबीर," "रहीम", "खुसरो" "जायसी", 'तानसेन", "रसलीन", "दरिया साहेब", "यारी साहेब" के नाम तो हिन्दू जगत में प्रसिद्ध हैं परन्तु इस साहित्य के प्रेमी मुगल सम्राट अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब भी थे इस बात का पता भी इस पुस्तक से मिलेगा।

हिन्दुस्तान में मुसलमानी राज्य भी "स्वदेशी" राज्य था। उस राज्य के ह्रास के अनेक राजनीतिक कारण इतिहास-वेत्ता बतलाएंगे पर साहित्यिक मेल के, जिसका परिचय इस

पुस्तक से मिलता है, श्रोत के बन्द हो जाने से भी विदेशियों के आने का द्वार खुल गया; इस लिए साहित्य की दृष्टि से भी भविष्य अन्धेरा सा हो गया है;। पर अब भी कुछ बिगड़ा नहीं:—

जा कारन जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहिं।
परदा दीया भरम का ताते सूझै नाहिं॥

बस, इस "भरम" के परदे को हटाने का भाई गङ्गा प्रसाद जी ने यह उत्कृष्ट उद्देश्य किया है, फल ईश्वर के हाथ है।

काशी,
नागपंचमी १९८२ } रामनारायण मिश्र,

प्रस्तावना

संकलनकार की इच्छा हुई कि इस ग्रंथ की प्रस्तावना मैं लिख दूँ। प्रस्तावना लिखने के समय विचार हुआ, कि प्रस्तावना लिखूं "जिन दिन देखे वे कुसुम गई सुबीति बहार" फिर सोचा, यह तो नैराश्य है, नैराश्यवाद अच्छा नहीं। क्यों न निश्चित किया जावे, "ह्वै हैं बहुरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल।" निराशा से आशा, और निर्जीवता से सजीवता अच्छी है। उद्योग जीवन का लक्षण है, और चेष्टा सफलता की कुंजी! और कुछ न हो अच्छे उद्देश्य का अच्छा होना ही क्या कम है। संग्रहकार का उद्देश्य उच्च है, उसने सम्बन्धबीज वपन किया है, स्नेह-सलिल से उसे सींचा है, क्यों न आशा की जावे कि वह अंकुरित होगा, और काल पाकर सुन्दर फूल फल भी लावेगा। संसार परिवर्तनशील है, काल चक्र कब किस प्रकार घूमेगा, यह कौन जानता है।

अन्तर्जगत दर्पण के समान पारदर्शक और उज्वल है, इस विविध भावमय संसार में वह प्रत्येक भाव का प्रतिबिम्ब वा तथ्य ग्रहण करता है, और उसको उसी रूप में प्रकट करना चाहता है। वह मलिन हो अथवा कारण विशेष से कलुषित हो तो उसके प्रतिबिम्ब आवरण में अन्तर पड़ सकता है, किन्तु यह उसका वास्तविक रूप नहीं है। हिन्दू हो अथवा मुसलमान, स्वाभाविक हृदय सबका समान होता है, उसमें अस्वाभाविकता भी पाई जाती है, किन्तु उसके कारण वंशगत, समाजगत, वा संसर्गगत कुछ संस्कार हैं, जो अधिकांश अवास्तव हैं। जो जिस देश का निवासी है, उसका

उस देश की भाषा से प्रेम होना स्वाभाविक है। जो भाषा आबाल जीवन सहचरी है, उसकी ममता कोई छोड नही सकता। प्रायः भली प्रकार भावस्फुरण भी उसी में होता है, वह सुन्दरता के साथ प्रकट भी उसी में किया जा सकता है। स्वाभाविकता भी उसी में पाई जाती है; कृत्रिमता की बात मै नहीं कहता, वह अन्य विषय है। कबीर और मलिक मुहम्मद जाइसी की अपूर्व रचना में इसी बात के उदाहरण हैं। रसखान की मुग्धकरी कृति में भी उसी का सरस रस प्रवाहित है। खुसरो, रहीम, रसलीन, मुबारक जैसे भावुकों के भाव-प्रवाह मे भी उसी का बहुत कुछ विकास है। ये हिन्दी के ऐसे सरस-हृदय कवि हैं कि कतिपय सर्वमान्य महाकवियों को छोड़ अधिकांश हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवियों के वे समकक्ष है इन सहृदय मुसल्मान कवियोंपर मुसल्मान जाति उचित गर्व कर सकती है, हिन्दू जाति को तो उनका गर्व है ही, इतना ही नही वह उनकी विचार-उच्चता की कृतज्ञ भी है। चलती गाने की चीजों में विशेष कर ठुमरी, खेमटे दादरों इत्यादि में कुछ मुसल्मान सहृदयों ने जो रचना पटुता दिखलाई है वह अभूतपूर्व है। उनमें इतनी सरसता, स्वाभाविकता और हृदयग्राहिता है कि उनकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है। इस विषय में उनका समकक्ष कोई हिन्दी कवि कठिनता से मिलता है, उचित समकक्षता लाभ की है तो बाबू हरिश्चन्द्रजी ने लाभ की है, उनके प्रेमतरंग इत्यादि ग्रंथों में इस प्रकार की बड़ी मनोमोहक रचनायें हैं। इस कथन का अभिप्राय यह है कि हिन्दी भाषा को अपना कर मुसल्मानों ने कम कीर्ति और प्रतिष्ठा नहीं लाभ की है, साथ ही उन्होंने मनोभावों के चित्रण में भी पराकाष्ठा दिखलाई है।

मेरा तो विचार है कि उर्दू के महा कवियों की रचनाओं में उतनी स्वाभाविकता और सरसता किसी—किसी शेर मे ही मिलेगी। इस लिये यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी क्षेत्र मुसलमानों का नही है। वास्तव बात यह है कि हिन्दी पर प्रत्येक हिन्द निवासी का स्वत्व है, और यही कारण है कि वह साधारण मुसल्मान बादशाहों से ले कर मुसल्मान सम्राटो तक मे आदृत रही है।

खेद है कि आज रंग बदल गया है, आज मुसलमान सज्जन हिन्दी सुमनोद्यान को आंख भर देख नही सकते, उनकी दृष्टि में उसमे न तो विकच कुसुमावलि है, न मनोमुग्धकर सुगंध और न मानसरंजन रमणीयता। उन्हें हरे भरे पौधे, लहलही लता, कोमल किसलय और लुभावने प्रसून भी उसमे नहीं मिलते। उन्हे करील का साम्राज्य ही सब ओर दिखलाई पड़ता है, यह विपरीत दृष्टि का ही फल है. चाहे यह विपरीत दृष्टि किसी कारण विशेष से ही क्यों न हो। एक हिन्दी का हिन्दी के साथ यह व्यवहार कहां तक संगत है,इसको समय ही बतलायेगा। मेरा तो विचार है कि "सत्य मेव जयते नानृतम्" जीत सत्य की ही होगी, असत्य की नही। हिन्दी सेवी के उदात्त करों में सदा की विजय वैजयन्ती है, कोई दिन होगा, कि उसके तले समस्त हिन्द निवासी एकत्रित होंगे, स्वाभाविक जल प्रवाह, सहज वायु संचार, और लोकआलोकितकर आलोक से कोई कब तक मुख मोडेगा?

मुसल्मान जाति का हिन्दी पर कितना प्रेम था, और हिन्दी की समुन्नति मे उनका कितना हाथ है, इसी बात के प्रकट करने के लिये, यह ग्रंथ संकलित हुआ है, साथ ही हिन्दी प्रेमिकों का मनोरंजन भी संकलनकार ने ग्रंथ के संकलन करने में

परिश्रम किया है, अधिकांश हिन्दी मुसलमान कवियों की सुन्दर कवितायें इस ग्रंथ में संकलित हैं। उनमें आप उन ललित और सुन्दर रचनाओं को भी पावेंगे, जिनका उल्लेख मैंने जहां-तहां किया है। प्रत्येक कवि की प्राय जीवनी भी दी गई है, कहीं कहीं उसमें अच्छा विश्लेषण भी है। ग्रंथ की भूमिका के लिखने में भी सहृदयता से काम लिया गया है, उसमें यत्र तत्र, मार्मिक, नूतन और हृदय ग्राहिणी बातें हैं। भूमिका में मौलिकता कम है, किन्तु संकलनकार की मधु प्रवृत्ति प्रशंसनीय है। मैं इस ग्रंथ का हिन्दी साहित्य संसार में अभिनन्दन करता हूं। आशा है, हिन्दी-संसार में इसका उचित आदर होगा। यदि मुसलमान सज्जनों की दृष्टि भी संग्रहकार के उद्देश्य की ओर समुचित आकर्षित हो गई, और उन्होंने उसका तत्व समझा, तो मैं समझूंगा उनका श्रम सफल हुआ। अपनी मातृ भाषा की सेवा का पुण्य तो उन्हें मिलेगा ही।

बनारस
२८-४-२६

हरिऔध

प्राक्कथन

सकलदेहभृताम्मतिरूपिणीम्, निखिललोकसमुन्नतिसाधिनीम् ।
सुजनमानसहंसनिवासिनीम्, अतितराम्प्रणमामि सरस्वतीम् ॥

(कवीन्द्र)

वाणी का विकास

'प्रकृति' शब्द बहुत सरल और बोधगम्य होने पर भी इसके भाव-विस्तार का क्षेत्र बहुत बड़ा है।

यह अनन्त प्राकृत जगत अथवा इस पर के विचरणशील प्राकृत जीव सभी उस प्रकृति के ही सँवारे हुए हैं जिसकी एक मात्र स्फूर्ति ही इस चैतन्यता की मूल कर्त्री है।

कहीं भी दृष्टि डालिए चाहे जड़ हो या चैतन्य उसके किसी भी वाह्य अथवा आभ्यन्तरिक अवयवों पर किसी भी प्रकार का आघात पहुंचने पर उससे एक स्फुट ध्वनि उत्पन्न हो जाती है जो इस बात की द्योतिका है कि कुछ प्रकृति-संघर्ष अवश्य हुआ। वायु का चलना, पेड़ों की हरहराहट, डालों का चरमर, किवाड़ की खटखटाहट, तृणों का उड़ना, धूल का उड़ कर अपने शरीर पर लगना, आदि किसी अलक्ष्य संघर्ष के ही कारण होता है।

चैतन्य जगत मे कष्ट पाने पर रोना, आनद में हंसना, उन्माद मे उपद्रव करना, ज्ञानावस्था मे साधु-आचरण होना, संग्रह, त्याग आदि ये सब भाव किसी न किसी प्रकार

के आभ्यन्तरिक क्रियाओं के ही परिणाम हैं। कारण के बिना कार्य हो ही नही सकता।

जड़ जगत से चैतन्य-जगत में कुछ न कुछ थोडा या बहुत अन्तर अवश्य है। अन्य अन्तरों के अतिरिक्त जड़-जगत में ध्वनि मात्र की उत्पत्ति हो कर रह गई परन्तु चैतन्य-जगत के दो प्रधान विभाग है; एक मनुष्य-जगत और द्वितीय पशु-जगत। पशु-जगत मे यह ध्वनि कुछ संकेतो के रूप में परिवछि त होकर रह गई। पर मनुष्य-जगत में जो ध्वनि उत्पन्न हुई उसको ही हम इस सार्थक अभिधान "वाणी" से सम्बोधित कर सकते हैं।

जड़, पशु, और मनुष्य प्रायः सबके जीवन मरण की समस्या एक ही प्रकार की है। किंतु जीवन मरण के अतिरिक्त अनेक प्राकृतिक चेष्टाओं में अन्तर भी पाये जाते हैं। वाणी इन्हीं चेष्टाओं को दूसरे व्यक्ति पर शाब्दिक संकेत के रूप में प्रकट करने मे सहायता देती है। उसकी इस क्रिया के प्रधानतः दो भेद हैं, गद्य और पद्य। बोल चाल अथवा साहित्य की साधारण भाषा को गद्य तथा लय-युक्त भाषा में अभिव्यक्त किये गये भावों को पद्य कहते हैं।

कविता क्या है ?

अब यह देखना होगा कि कविता क्या है। विभिन्न समय में विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने विचारानुसार कविता के लक्षण को भिन्न भिन्न रूप में स्थिर किया है परन्तु उनमें पूर्णता किसी एक में भी नहीं है। जॉनसन का मत है कि "कविता छन्दोबद्ध निबंध है।" मिल्टन के अनुसार " कविता

वह कला है जिसमें कल्पना विवेक की आश्रयिणी होकर सत्य और चिदानन्द को एक प्राण कर देती है।" कॉरलायल के कथनानुसार ' कविता गीतिमय मनोविकार है।" रस्किन का कहना है कि "कविता कल्पना शक्ति द्वारा विकसित मनोवृत्तियों के उच्चतम आलंबनों की व्यंजना है।"कारथाय कहता है कि "गीतिमय मानवी शब्दों में काल्पनिक विचारों और भावों की वास्तविक व्यंजना से आनंद का उल्लास उत्पन्न कराने वाली कला ही कविता है।" डण्टन का कहना है कि "कविता मनोवेगमय और गीतिमय भाषा में मानवी अन्तःकरण की प्रत्यक्ष और कलात्मक व्यंजना है।"संस्कृत साहित्यकारों ने कविता को"रमणीय अर्थ का प्रतिपादक' अथवा "रसात्मक वाक्य" कहा है। परन्तु हमारे विचार से सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि काव्य अन्तर्जगत के रहस्यागार का वाह्य जगत में एक नियमित रूप में प्रगट किया हुआ रूपान्तर मात्र है। मनुष्य के अन्तर्जगत मे जो घात प्रतिघात होते रहते है उन्ही का वाह्यिक, शाब्दिक चित्र कविता है।

कविता की उत्पत्ति और उसका महत्व।

संसार में काव्य की सृष्टि कब हुई? इस प्रश्न के उत्तर में प्राच्य विद्वानों का कथन है कि कविता की सृष्टि वालमीकि ने की और वे ही आदि कवि हैं और पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि होयर आदि कवि हैं और उन्ही के समय से कविता का आरम्भ हुआ; परन्तु वास्तव मे इन सब बातों का कहना अधिक युक्ति संगत नही है; यह कविता छन्दोवद्ध पद्य जगत पर लागू हो सकती है परन्तु कविता जिन अनिर्वचनीय तत्वों की जन्मदात्री है उनका ध्यान करते हुए वेदों के स्वर में स्वर मिला कर यही कहना उचित है कि परमात्मा ही

आदि कवि है * और यह अखिल सृष्टि ही उसका महाकाव्य है अन्यथा जिस भांति इसका अनुसंधान करना,कि मनुष्य की सृष्टि इस पृथ्वी पर कब हुई, निष्फल है उसी भांति इसके जानने का भी कोई मार्ग नहीं है कि मनुष्य समाज में काव्य की सृष्टि कब हुई ?

ज्योतिर्विद्या, विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, इतिहास, भूगोल, मनोऽविज्ञान वा दर्शन ने जब जन्म भी ग्रहण नहीं किया था उसी मानवी सभ्यता के अंकुर विकास के समय एक मात्र कविता की स्निग्ध आलोक च्छटा से मानव हृदयकी गह्वर गुहा आलोकित हुई थी। यदि आदि कालीन मानवों का हृदय क्षेत्र इस काव्यालोक से आलोकित न होता तो सम्भवतः आज इस उत्कृष्ट सभ्यता का बीज भी न पड़ा होता। ज्योतिष, विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, मनोविज्ञान और दर्शन—ये सब अपरिमेय अगाध काव्य रत्नाकर से उत्पन्न एक एक उज्वल रत्न मात्र है।

प्रमाण के लिये विशेष गंभीर गवेषणा की आवश्यकता नहीं है। सभ्यता की विद्युत से झुलसे हुए कोलाहलमय अपने इस चिर-परिचित प्रदेश को छोड़ प्रकृति की रंगस्थली पार्वत्य उपत्यकाओं मे पले भील गोंड़ संताल प्रभृति आदिम,अशिक्षित, असभ्य,जातियों की ओर एक बार सावधानता पूर्वक दृष्टिपात कीजिए तो आप देखियेगा कि इन वनचर मानव-जातियों में, ज्योतिष वा विज्ञान, इतिहास वा भूगोल, आयुर्वेद वा दर्शन का दर्शन तक न मिलने पर भी काव्य का अपरिस्फुट स्निग्ध आलोक उनके हृदयक्षेत्र को समय-समय पर आलोकित करता रहता है। पशु-पालन, सामान्य कृषिकर्म वा मृगया

* "कविः स्वयभू," इत्यमर.

के श्रम से थक कर जब वे एकत्र होते हैं। उस समय कोई सुमधुर गायक ढोल और झांझ के ताल सुर पर गाना प्रारंभ करता है—कभी वह किसी गांव के एक युवा के प्रणय से हताश एक विरह विधुरा रमणी का उन्मादिनी वेश मे देश-विदेश मे भ्रमण करने का वृतान्त गाता है, और कभी प्राचीन काल के किसी एक सर्दार का दूसरे सर्दार की कन्या का बलपूर्वक अपहरण और विवाह करने, फिर कन्या के पिता का कन्या के उद्धारार्थ दल बल सहित आकर रणक्षेत्र में प्राण विसर्जन करने तथा उसी शोक मे नववधू का उन्मत्त हो कर नव-परिणीत पति के वक्षस्थल मे छुरा भोकने तथा उसी छुरे से अपने वक्ष मे आघात कर प्राणत्याग करने की गाथा सुनाता है। इसी प्रकार अपनी चिर परिचित घटनाओं को गायक की ओजस्विनी भाषा मे सुनते सुनते जब वे स्वर्गीय भावो में लीन हो जाते है तो उनके कठोर हृदय भी द्रवित हो जाते हैं और उनके नयनों से अविरल अश्रुकण झरने लगते हैं। विचार कर देखिये इस समय उनके दिव्य हृदय सिहासन पर किसकी दिव्य प्रतिमा विराजती है? कविता की कल्पना-मयी स्वर्गीय प्रतिमा को छोड़ और किसकी प्रतिमा ऐसे कठोर-प्रकृति वन्यों के हृदय मे रसमय अमृत सागर की सृष्टि कर सकती है। इस रसमय सागर के जल से अभिषिक्त न होने से कदाचित मानव हृदय मे सभ्यता का बीज अकुरित भी न हो सकता।

सीरिया, बेबिलन, फारस, ग्रीस रोम आदि द्वारा स्थापित जो विश्व विस्मायक विशाल साम्राज्य एक दिन जगत के अलंकार स्वरूप समझे जाते थे, आज वे साम्राज्य कहां हैं? उनके कुछ भग्नप्राय स्तूप, कुछ जीर्ण पिरामिड

अथवा विध्वंसप्राय शिला लिपि के अतिरिक्त अब खोजने पर भी कोई दर्शनीय चिन्ह नहीं मिलता, किन्तु कविता ने मानव सभ्यता के आरंभ से ले कर आज पर्यन्त जिस शृंखलाबद्ध साम्राज्य की अन्तर्जगत मे स्थापना की है और करती रहेगी, उसका जब तक मनुष्य इस पृथ्वी पर रहेंगे, तब तक कभी विनाश नहीं होगा। वाल्मीक व्यास प्रभृति कवियों की अमूल्य कृतियें अभी तक जगत में पूर्ववत हो चिरस्थायी है और अपने अमृतमय उपदेशों द्वारा अब तक मानव जीवन का संस्कार करने में सम रूप से सहायक है।

कविता के गुण अपरिमेय हैं। इस के अनुशीलन से हृदय उदार होता है। उसमे पवित्र भावों को स्फूर्ति तथा अदम्य साहस और अपूर्व उत्साह की सृष्टि होती है। अनेकानेक अवगुणों का मार्जन हो कर मन तथा वाणी का सुचारू रूप से संस्कार होता है, संसार के संघर्षणों से त्रस्त हृदयों में भी यदा कदा आनन्द का स्रोत उमड़ आता है जिससे एक प्रकार के नवीन जीवन का निर्माण होता है तथा आशा के शान्तिमय मृदु भावों की उत्पत्ति होती है। यदि कविता न हो तो कदाचित इस संसार में रहना कठिन हो जाय। जिस समय मनुष्य कविता द्वारा शृंगार, हास्य, अद्भुत, वीर, रौद्र आदि रसों के स्रोत में वह निकलता है उस समय उसे वाह्य-जगत का एक प्रकार से विस्मरण सा हो जाता है और वह किसी दूसरे ही संसार में विचरण करने लगता है।

किसी संस्कृत कवि ने कहा है:—

अविदितगुणापि सत्कविभणितिः
कर्णेषु वमति मधुर-धाराम्।

अनधिगतपरिमलापिही,
हरति दृश मालतीमाला ॥

वास्तव में कविता का कमनीय कुसुम जिनके हृदय में विकसित नहीं हुआ वह मानवी हृदय ही नहीं है। इस ग्रन्थ में अनेक विकसित काव्य-कुसुमों का संग्रह किया गया है किन्तु जिन कवियों की एक ही दो काव्यकलिका प्राप्त हो सकी-इस पुस्तक का हिन्दी साहित्य के इतिहास से संबंध होने के कारण लाचार हो कर—उन्हें भी स्थान देना पड़ा है। उस समय उनके विकसित अथवा मुकुलित होने का ध्यान छोड़ दिया गया है। आशा है इस संग्रहीत काव्य-कुसुम और कलिकाओं के पराग आपको परितृप्त करने मे बहुत कुछ समर्थ होंगे।

"हिन्दी" शब्द की व्युत्पत्ति।

हिन्दी शब्द पर विचार करने के प्रथम हिन्दू शब्द पर विचार कर लेना उत्तम होगा, क्योंकि हिन्दुओ द्वारा बोली जाने वाली भाषा का ही नाम हिन्दी पड़ा। आर्य धर्म्मशास्त्रों में हिन्दू शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं मिलता। न तो श्रुति स्मृतियों में और न पुराण ग्रन्थों में। केवल मेरुतंत्र तथा शिवरहस्य में यह शब्द आया है। यथाः—

पंचखाना सप्तमीराः नवसाहा महाबलाः।
हिंदू धर्म्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्त्तिनाः ॥
हीनश्च दूषयेत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये !
पूर्वान्माये नवशत षड़शीति प्रकीर्तिता ॥

(मेरुतंत्र)

हिंदूधर्म्म प्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे।

(शिव रहस्य)

किंतु ये श्लोक प्रक्षिप्त माने जाते है। कारण, यदि हिंदू धर्म्म कोई वास्तविक धर्म्म होता तो उसका उल्लेख स्मृति और पुराणों मे अवश्य मिलता। यह किसी परवर्ती सुचतुर पंडित की करामात है। अस्तु, सर्वथा अप्रामाणिक है।

गयासुललोगात फारसी भाषा का एक वृहत् कोष ग्रन्थ है उसमें हिदू शब्द का अथ निम्न भांति दिया है:—

" हिंदू दर महाविरे फारसियां बमानी दुज़्द व राहज़न मी आयद।"

इसमे हिंदू शब्द का अर्थ काफिर और डाकू किया गया है।

हाफिज शीराज़ी जो आज से कोई साढे पांच सौ वर्ष पहले हो गए है, उनके एक शेर मे हिदू शब्द काले के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यथा:—

अगर आ तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद दिले मारा।
बखाले हिंदुवश बखशम समरकन्दो बुखारारा॥

प्राचीन फारसी साहित्य मे हिंदू शब्द कही भी अच्छे अर्थ मे प्रयुक्त नही हुआ है। कुछ लोगों ने गयासुललोगात का अर्थ विद्वेश वश लिखा गया बतलाया है किन्तु हमारा विचार इसके विपरीत है। बहुधा देखा गया है कि जो शब्द किसी समय अच्छे अर्थ मे व्यवहृत होते रहते है कालान्तर में वेही शब्द बुरे अर्थ मे प्रयुक्त होने लगते हैं। उदाहरण के लिए अंगरेजी के नेटिव (Native) शब्द को ही ले लीजिये साधारण रूप से किसी देश के मूल निवासी को नेटिव कहते हैं। इस भांति इसका अर्थ कोई बुरा नही है। किंतु अब यह शब्द भारतीयों के प्रति घृणा प्रदर्शित करने के लिये व्यवहृत

होता है अर्थात् बुरे अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिंदू शब्द के बुरे अर्थ मे प्रयुक्त होने का कारण भी पर्याप्त है। पूर्व युग मे अर्थात् पौराणिक काल मे जो आज से पांच सहस्र वर्ष पहले का कहा जा सकता है, हमारे पूर्वज भारी हिंसाप्रिय थे—बात बात मे बलि देना छोटे-मोटे राजाओं पर अत्याचार करना दिग्विजय करना, नाना प्रकार के यज्ञ आदि करना ही उनका उच्चतम लक्ष्य था—ये ही उनके चक्रवर्त्तित्व के प्रधान आयोजन थे। संभव है उनकी इसी हिंसाप्रियता के कारण ही हिंदू शब्द जो उनके लिये अनार्यों द्वारा व्यवहृत होता रहा हो। विद्वेषवश उसका अच्छा अर्थ बदल कर लुटेरा डाकू इत्यादि हो गया हो तथा गयासुललोगातकार ने उसे ही लिखा हो।

इसके अतिरिक्त शब्दकल्पद्रुम मे भी हिंदू (हिन्दुः) शब्द का अर्थ हीन जाति घातक अथवा हीन जाति का सताने वाला लिखा है। यह अर्थ भी समानता मे गयासुललोगातकार के दिये हुए अर्थ के बहुत निकट पड़ता है। अस्तु, इससे भी उक्त मत की पुष्टि होती है।

पारसियों की धर्म्म-पुस्तक दसातीर में हमारे देश का नाम हिंद लिखा है। यथाः—

अकनू बिरहमने व्यास नाम अज़ हिन्द आमद बसदाना के अकल चुनास्त। (जरतुश्त की ६५ वी आयत)

अर्थात व्यास नाम का एक ब्राह्मण 'हिंद' से आया है जिसके समान कोई पंडित नहीं।

चूँ व्यास हिंदी वलख़ आमद। गस्तास्प ज़रतुश्तरा बख़्वाँद। (१६२ वीं आयत)

जब हिंद का रहने वाला व्यास बलख़ आया तब गस्तास्प (ईरान के राजा) ने जरतुश्त को बुलाया।

आगे फिर लिखा है :—

"मन मरदे अम हिंदी निज़ादे।"

मै हिंद में पैदा हुआ एक पुरुष हूं।

"वे हिंद बाज़ गश्ते।"

फिर वह हिंद को लौट गया। इत्यादि।

उपरोक्त अवतरणों से सिद्ध है कि महर्षि व्यास के काल में भी ईरान वाले हमारे देश को हिंद कहते थे। व्यास ने भी अपना परिचय 'हिंद' निवासी ही कह कर दिया था। यह परिचय दान ठीक वैसा ही है जैसा आधुनिक काल मे हम लोग पाश्चात्य निवासियों को अपना परिचय देते समय अपने को इण्डियन (Indian) और अपने देश को इण्डिया(India) बतलाते है।

'हिन्दू" शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों का मत है कि हम लोगों को यह नाम विदेशियों द्वारा प्राप्त हुआ है। "हिंद" शब्द ईरानी भाषा का है और सिंधु का अपभ्रंश है। ईरानी भाषा मे 'स' का उच्चारण प्रायः 'ह' होता है। प्राचीन काल में सिंधुनद के इस पार के देश का नाम सिंध था और अब भी सिंधुनद के किनारे के कुछ प्रदेशों को सिंध ही कहते है। यही सिंध शब्द ईरानी भाषा मे बदलकर हिंद हो गया। इसी हिंद नाम से ईरानियों मे समग्र भारत परिचित था। हिंदू का प्राचीन रूप हिंदी था जो अपने प्राचीनतम रूप हैंदव (संस्कृत पर्याय सैंधव) का विकृत रूप था। हिंदी का अर्थ हिंद निवासी है अथवा वहां की बोली जाने वाली भाषा है। भारतीय सभी भाषाओं को हिंदी नाम से पुकारा जा सकता है। बंगला मराठी आदि भी वैसी ही हिंदी भाषाएं हैं जैसे हमारी हिन्दी! हिंदी शब्द अपने आधुनिक अर्थ में बहुत पीछे प्रयुक्त होने

लगा है। हिंदी का पुराना नाम हिंदवी या हिंदुई है।

अब विचारणीय बात यह है कि हमारे आर्ष ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग क्यों नही मिलता? इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि हिन्द शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है न यह हमने अपनी इच्छा से धारण किया है। यह नाम हमारा ईरानियों, विदेशियों का ही रक्खा हुआ है। प्राचीन काल में ईरानियो और भारतीयों में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। यहां तक कि पौराणिक ग्रन्थों में पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध तक की गाथा पाई जाती है। अतएव उसके नित्य सम्पर्क के कारण उनके दिये हुए नाम से बचना हमारे लिए कठिन हो गया। धीरे-धीरे इस नाम ने हमारे हृदय में इस प्रकार घर कर लिया कि अब उस का छोड़ना हमारे लिये असम्भव है। इस भांति हमारे देश का हिंद, यहां के निवासियों का नाम हिंदू और भाषा का नाम हिंदवी या हिंदी पड़ा।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और उसका आदि कवि।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कब हुई, इसका उत्तर देना इस समय असंभव सा हो रहा है, फिर भी जहां तक विदित हुआ है उससे यह निश्चय है, कि विक्रम सम्वत से दो-तीन शताब्दियां पूर्व भारतवर्ष के विन्ध्य से उत्तर भाग में एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जो वैदिक संस्कृत का अपभ्रंश थी तथा जो समय पा कर नित्य प्रति के व्यवहारगामी होने के कारण सर्वसाधारणों की भाषा हो गई अतः प्राकृत भाषा कहलाई। महामुनि पाणिनि के समय से अलकृत हो कर यही भाषा

सुसभ्य और शिक्षितों मे सस्कृत कहलाई तथा अब भी यह इसी नाम से परिचित है। व्याकरण के नियमों से जकड़ी जाने के कारण इसमे किसी प्रकार की नवीनता के समावेश का स्थान न रह गया और यह एक प्रकार से स्थिर हो गई, किन्तु प्राकृत अथवा बोल चाल की आर्य भाषा क्रमशः आधुनिक देशी भाषाओं के रूप में परिणत हो गई। पर बोल चाल की भाषा का कोई सृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता फिर भी ध्यान देने से स्पष्ट हो जायगा कि 'प्राकृत' की सृष्टि संस्कृत से नहीं हुई वरन् यह प्राचीन प्राकृत का ही विकसित रूप है।

प्राचीन प्राकृत के उदाहरण हमे प्राचीन बौद्ध और जैन सूत्र ग्रन्थों तथा शिलालेखों से मिलते हैं। जगत-विजयी सम्राट अशोक के आज्ञापत्र जो अब तक यत्र-तत्र शिला स्तम्भो पर खुदे हुए पाये जाते है,वे उसी पहली प्राकृत अथवा पाली भाषा मे लिखे हुए है। पाली के अनन्तर हमे साहित्यिक प्राकृत के दर्शन होते हैं जिसके चार मुख्य भेद है—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी तथा अर्ध मागधी। शौरसेनी मध्यदेश में बोली जाने वाली प्राकृत है।मध्यदेश ही मे संस्कृत का प्रादुर्भाव भी हुआ था इसीसे इसमें तथा संस्कृत में बहुत कुछ समानता दीख पड़ती है। इसी शौरसेनी से हमारी हिंदी भाषा ने भी जन्म ग्रहण किया।

हिन्दी का आदि कवि कौन है—इस पर विद्वानों के प्रायः तीन मत हैं। सरोजकार और मिश्रबन्धुओ के विचारानुकूल हिंदी का आदि कवि पुष्य है, परन्तु इस समय उसके किसी ग्रन्थ अथवा भाषा शैली का कोई अनुसंधान नहीं मिलता। दूसरा ग्रन्थ खुमान रासो है जो सम्वत ८८९ के लगभग लिखा गया था। कुछ विद्वानों के अनुसार इस ग्रन्थ की प्राप्त प्रतियां

सर्वथा अप्रामाणिक हैं। तीसरा सुप्रसिद्ध कवि जिसका वास्तविक अनुसंधान मिलता है, चन्दबरदाई है। इसकी भाषा प्राकृत के अवसान और ब्रज भाषा के सक्रमण काल का उदाहरण है। अधिकांश विद्वानो ने इसे ही हिंदी का आदि कवि माना है।

किन्तु हमें यहां पर एक बात पर और बिचार कर लेना चाहिये। अमीर खुसरो जो चंदबरदाई के लगभग साठ वर्ष बाद का कवि है उसकी भाषा में और चंद की भाषा में बहुत बड़ा अन्तर है। खुसरो की भाषा और आधुनिक हिंदी मे बहुत कम अन्तर है किंतु चंद की भाषा को इस समय साधारण हिंदी का ज्ञान रखने वालो के लिये समझना भी कठिन है। यहां पर दोनों ही कवियो की कविता के कुछ अश उद्धृत कर देने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। यथाः-

प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहन्नं। जिनै नाम एकं अनेकं कहन्नं।
द्विती लाभयं देवतं जीवतेसं। जिनै विश्व राख्यौ बली मंत्रसेसं।
चवं वेद बभं हरी किति भाखी। जिन धुम्र सा ध्रम्म संसार साखी।
तृती भारती व्यास भारत्थ भाख्यौ। जिनै उत्त पारत्थ सारत्थ साख्यौ।
चवं सुक्ख देवं परीखत्त पायं। जिनै उद्धस्यो श्रव्व कुर्वस राय।
नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं। नलै राय कंठं दिने पद्य हारं।
छटं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं। जिनै बागबानी सुबानी सुबद्धं।
कियो कालिका मुक्ख बास सुसुध। जिनै सेत बध्योति भोजप्रबध।
सत डंडमाली उलाली कवित्त। जिनै बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं।
जयद्देव अट्ठं कवी कव्वि राय। जिनै केवल किति गोविंदगायं।
गुरुं सब्ब कव्वी लहूं चंदकव्वी। जिनै दर्सियं देविसा अगहव्वी।
कवी किति किति उकत्ती सुदिक्खी। तिनकी उचिष्टी कवीचंदभक्खी।

पहेली

तरुवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी।
"अमीर खुसरो" यो कहे अपने नाम "न बोली" ॥
"निबोरी"।

बीसों का सिर काट लिया ना मारा ना खू.न किया।
"नाखून"।

गाना

अम्मा, मेरे बाबा को भेजो जी, कि सावन आया।
बेटी, तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया ॥
अम्मा, मेरे भाई को भेजो जी, कि सावन आया।
बेटी, तेरा भाई तो बाला री, कि सावन आया ॥
अम्मा, मेरे मामू को भेजो जी, कि सावन आया।
बेटी, तेरा मामू तो बाँका री, कि सावन आया ॥

खुसरो की कविता चंद वरदाई की अपेक्षा कितनी विकसित हिंदी में है ? क्या भाषा का यह विकास पचास-साठ वर्षों में कभी संभव है ? संसार के इतिहास में भाषा का इतना शीघ्र विकास कभी भी कही नही हुआ। अस्तु इससे यह सिद्ध होता है कि चंदवरदाई के समय में हिन्दी भाषा अपने विकसित रूप में थी। उस समय भी कारक, बचन, लिंग, पुरुष आदि का प्रयोग उसी भाति होता था जैसा आज कल है। परन्तु ब्रज भाषा में काव्य रचना संबंधी अनेक सुविधाओं के होने के कारण कवियों ने उसे ही अपनाया। यही कारण है कि खुसरो और चंद की कविता में इतना अन्तर है।

हमारा विचार है कि चन्द के सैकड़ों वर्ष पूर्व हिन्दी का कोई आदि कवि हुआ होगा पर जब तक हमें किसी ऐसे कवि का अनुसन्धान नहीं मिलता, हम चन्द को हिन्दी का आदि कवि मानने के लिये बाध्य हैं। किन्तु साहित्यिक हिंदी का आजकल दो रूप व्यवहार में है। एक ब्रज-भाषा दूसरी खड़ी बोली। ब्रज-भाषा की उत्पत्ति जैसा कि हम पहले कह आये हैं शौरसेनी से हुई है परन्तु इस खड़ी बोली की उत्पत्ति शौर-सेनी, अर्धमागधी और पञ्जाबी से मिलकर हुई है। ब्रजभाषा ब्रज के आसपास बोली जाती है और खड़ी बोली दिल्ली, आगरा, मेरठ आदि के आस-पास की बोली जानेवाली भाषा है परन्तु अब लोग इसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करना चाहते हैं और यह अधिकांश शिक्षितों की भाषा हो रही है। पहले इसे हिंदी, रेखता भाषा आदि के नाम से भी संबोधन करते थे आजकल इसी का दूसरा नाम उर्दू भी है। 'चन्द' जिस भांति हिंदी के प्रथम रूप ब्रज भाषा का आदि कवि है आज तक के अनुसन्धान से जहां तक पता चला है, "अमीर खुसरो" उसी भांति इस खड़ी बोल अथवा आधुनिक राष्ट्र-भाषा हिंदी का आदि कवि हैं। यह संभव है कि खुसरो से पहले भी किसी कवि ने खड़ी बोली में कविता की हो किंतु अभी तक उसका कोई अनुसंधान नहीं मिला है।

मुसलमानों के लिये खुसरो का हिंदी का आदि कवि होना क्या अत्यन्त गौरव की बात नहीं है?

हिंदू-मुसलमानों का साहित्यिक सम्मिलन

सभी देशो के इतिहास में भिन्न-भिन्न जातियों के पारस्परिक संघर्षण के उदाहरण मिलते हैं। भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न भिन्न अवस्थाओं के कारण विभिन्न जातियों के विभिन्न आदर्श होते हैं। जब एक जाति का दूसरी जाति से साथ मिलन होता है, तब उसका सामाजिक जीवन अत्यन्त जटिल हो जाता है, पर इसी जटिलता से सभ्यता का विकास होता है। दो जातियों में भिन्नता का रहना स्वाभाविक है, परन्तु जब उन्हे एकही स्थान मे रहना पडता है, तब विवश होकर उन्हें कोई एक ऐसा सम्बन्ध सूत्र खोजना पडता है, जिससे उस भिन्नता मे भी एकता स्थापित हो जाय। यही सत्य का अन्वेषण है, बहु में एक और व्यष्टि में समष्टि।

भारतवर्ष के इतिहास में भी विभिन्न जातियों का पारस्परिक सम्मिलन महत्व पूर्ण घटना है। योरप में जिन जातियों का सम्मिलन हुआ है उनमें इतनी विषमता नही थी, पर उनमें से अधिकांश की उत्पत्ति एक ही शाखा से हुई थी। इस में संदेह नही कि उनमें जातिगत विद्वेष और विरोध की मात्रा कम नही थी; तो भी कदाचित उन में वर्ण भेद नही था। यही कारण है कि इङ्गलेण्ड मे सेक्सन और नॉरमन जातियों में इतना शीघ्र मिलाप हो गया। सच तो यह है कि पाश्चात्य जातियों में वर्ण और शारीरिक गठन की समता है। यही नहीं किन्तु उनके आदर्शों में भी अधिक भेद नहीं है। इसीलिये पारस्परिक सम्मिलन में वाधा नही आती। परन्तु भारतवर्ष की यह दशा नही है। प्राचीनकाल में श्वेतांग आर्यों का

कृष्णकाय आदिम निवासियों से मिलाप हुआ। फिर द्रविड़ जाति से उनका संघर्षण हुआ। उस समय द्रविड़ जाति भी सभ्य थी और उनका आचार-व्यवहार आर्यों के आचार-व्यवहार से सर्वथा भिन्न था। यह विषमता दूर करने के लिये तीन ही उपाय थे। एक तो यह कि इन जातियों का नाश ही कर दिया जाय, दूसरे यह कि उन्हें वशीभूत कर उनपर अपनी सभ्यता का प्रभाव डाला जाय और तीसरा यह कि ऐसे महत सत्य का आविष्कार किया जाय जहां किसी भी प्रकार भिन्नता न रह सके। भारतीय आर्यों ने इसी तीसरे उपाय का अवलम्बन किया। इतिहास उसका साक्षी है। भगवान बुद्ध ने विश्व मैत्री की शिक्षा देकर भारत के राष्ट्रीय जीवन में एकता का प्रचार किया। जब भारत पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ तब देश मे एक नये आन्दोलन का जन्म हुआ। उस आन्दोलन का उद्देश्य था जातीय और धार्मिक विरोध को भूल कर नारायण के प्रेम में सभी नरों को भ्रातृ रूप में ग्रहण करना। हिंदी साहित्य पर इस आन्दोलन का जो प्रभाव पड़ा उसी की चर्चा यहां की जाती है।

भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य सहसा नहीं हो गया। समस्त हिन्दू जाति ने—विशेष कर राजपूतों और मरहठों ने—बड़ी दृढ़ता से उनका आक्रमण रोका था। पर अन्त में संवत १२५० वि० से भारत में मुसलमानों का शासन स्थापित हो ही गया; परन्तु उत्तर भारत में उनका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भी दक्षिण मे हिन्दू सम्राज्य बना रहा। विजय नगर का पतन होने पर कुछ समय के लिये समग्र भारत से हिन्दू साम्राज्य का लोप हो गया। किन्तु सत्रहवीं सदी में मरहठे प्रबल हुए और अन्त में उन्होंने पुनः हिन्दू

साम्राज्य की स्थापना की। इसी समय अङ्गरेज़ों का प्रभुत्व बढ़ा तथा कुछ ही समय में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही को उनका आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

यद्यपि भारत में मुसलमानों का साम्राज्य सम्वत १२५० वि० से प्रारम्भ होता है तथापि कितने ही मुसलमान साधक और फ़क़ीर आक्रमणकारियों के पहले ही यहां आ चुके थे। आठवीं सदी में जब मुसलमानों ने भारत का एक भाग विजय कर लिया, तब हिन्दूओं को लाचार होकर मुसलमानों से घनिष्ठता स्थापित करनी पड़ी। उस समय मुसलमानों का अभ्युदय बढ़ रहा था। बगदाद विद्या का केंद्र हो गया था। अस्तु, कितने ही भारतीय विद्वान भी खलीफ़ा के दरबार तक जा पहुंचे। वहां उन लोगों की बदोलत संस्कृत के कितने ही ग्रन्थ रत्नों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। भारतवर्ष में मुसलमानों ने केवल अपनी प्रभुता ही स्थापित नहीं की, किन्तु अपने धर्म का भी प्रचार किया। तभी हिन्दू और मुसलमान का विरोध आरंभ हुआ, जिसका अन्त अब तक न हो सका। इस विरोध को दूर करने के लिये स्वदेश की कल्याण कामना से प्रेरित होकर सब से अधिक प्रयास कबीर ने किया। यह बात इस पुस्तक मे दी हुई उनकी कविताओं के पढने पर और भी सुस्पष्ट हो जायगी। कबीर को यद्यपि पूर्ण सफ़लता नहीं प्राप्त हुई फिर भी उनका प्रयास बिल्कुल व्यर्थ नहीं हुआ। हिन्दू और मुसलमान सम्मिलन की ओर अग्रसर हुए। भाषा के क्षेत्र में इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था। अमीर खुसरो ने इस एकता की नीव को दृढ़ किया था। हिन्दी में कागज—पत्र, शादी-ब्याह, खत-पत्र, रीति-रस्म, आदि शब्द उसी सम्मिलन के सूचक हैं। कबीर के अतिरिक्त मालिक मोहम्मद जाय-

सी, रहीम, रसखान आदि अनेक मुसलमान और साधकों ने इस नव-आन्दोलन में भाग लिया।

भारत में राजकीय सत्ता स्थापित करने के लिये हिन्दू मुसलमान दोनों प्रयत्न करते रहे। परन्तु देश में दोनों का स्थान निर्दिष्ट हो चुका था। भारत से मुसलमानो का उतना ही संबंध हो गया था जितना हिन्दुओं का। प्रतिद्वन्दी होने पर भी दोनों धर्मों का प्रवेश भारतीय सभ्यता मे हो गया। हिन्दू—मुसलमान दोनों ही में एक दूसरे के गुणों को ग्रहण करने का भाव उत्पन्न हो गया था। देश मे शान्ति स्थापित हुई। नवीन भावों का प्रचार बढ़ा। अकबर के राजत्व काल में इसका पूरा भाव प्रकट हुआ। उसके शासन काल मे जिस जिस साहित्य और कला की सृष्टि हुई उसमें हिंदू और मुसलमान का व्यवधान नही था। अकबर के महा मन्त्री अबुल फजल ने एक हिन्दू मन्दिर के लिए जो लेख उत्कीर्ण कराया था उसका भावार्थ यह है:—"हे ईश्वर, सभी देव मन्दिरो मे मनुष्य तुम्ही को ढूढ़ते है सभी भाषाओं में मनुष्य तुम्ही को पुकारते हैं। विश्व—ब्रह्मवाद तुम्ही हो और मुसलमान धर्म्म भी तुम्ही हो। सभी एक ही बात कहते हैं कि तुम एक हो तुम अद्वितीय हो। मुसलमान मसजिदों में तुम्हारी प्रार्थना करते है और ईसाई गिर्जाघरों में तुम्हारे लिए घंटा बजाते हैं। एक दिन मै मसजिद जाता हूँ और एक दिन गिर्जा। पर मंदिर-मंदिर मे तुम्ही को खोजता हूँ। तुम्हारे शिष्यों के लिये सत्य न तो प्राचीन है और न नवीन।" अबुल फ़जल का यह उद्गार उस मध्ययुग का नवसंदेश था। हिंदी में सूरदास और तुलसीदास ने अपने युग की इसी भावना से प्रेरित होकर मनुष्य जीवन का श्रेष्ट आदर्श दिखलाया

था। उसी भाव को ग्रहण कर अनेक मुसलमान कवियों ने भी कविता लिखी थी।

उस समय वैष्णव धर्म के आचार्यों ने भी धार्मिक-विरोध के मिटाने की कम चेष्टा नहीं की। पर वैष्णवों की वार्ता में अनेक मुसलमान और साधक फ़कीरों का भी प्रसंग है। कितने ही मुसलमान श्रीकृष्ण के हिन्दुओं की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़े-चढ़े भक्त हुए। ताज ने तो स्पष्ट ही कहा है कि "नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै, ताण नाल प्यारे हिन्दुआनी हो रहूंगी मै।" मुसलमानों के लिये यह प्रेम कम साहस का काम नहीं है। इसी प्रेम से प्रेरित होकर कितने ही मुसलमान कवियों ने हिंदी-साहित्य को अपनी रचनाओं से अलंकृत किया है।

राजनीति के क्षेत्र में हिंदू और मुसलमान जाति का विरोध दूर नहीं हुआ। समाज के क्षेत्र में भी दोनों का संघर्षण बना रहा। किन्तु साहित्य के क्षेत्र में दोनों ने सत्य को ग्रहण करने में सकोच नहीं किया। इस बात का प्रमाणित करने के लिए विशेष गंभीर गवेषणा की आवश्यकता नहीं। तीन चार सौ मुसलमानों का हिंदी की सेवा करना, सभी मुसलमान सम्राट और प्रधानतः औरङ्गजेब ऐसे कट्टर मुसलमान सम्राट का हिंदी को आदर देना और उसे अपनी रचनाओं से अलंकृत करना इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। अस्तु, इस चिरंतन सत्य के आधार पर इसी एकय मूलक आध्यात्मिक आदर्श की भित्ति पर भारत ने अपनी जातीयता की स्थापना की है। इस जातीयता में सभी जातियां अपने को स्थिर रख सकती हैं। इसमें सम्मिलित होने के लिये न तो हिन्दुओं का अपना हिंदुत्व छोड़ना पड़ा और न मुसलमानों को अपना मुसलमानत्व। वरन दोनों

का मिलन अनन्त सत्य के मन्दिर में हुआ जहां कृतृमता का लेश भी नही था। सत्य की सीमा संकुचित कर देने से ही इनमे परस्पर विरोध होता है। इसी से उसी को अपना लक्ष्य मान कर भारत ने अपनी जातीयता की सृष्टि की है। यहां एक ओर समाज में आचार-विचार की रचना होती आई है और दूसरी ओर मनुष्य की एकता को स्वीकार करते आये हैं। यहां एक ओर भिन्न भिन्न वर्णों में एक ही पंक्ति मे बैठकर खाने पीने तक का निषेध किया गया है और दूसरी ओर "आत्मवत् सर्व भूतेषु" की शिक्षा दी गई है। फिर भी जाति विद्वेष का एक दम लोप हो जाना सहल नही है। आधुनिक युग में जाति भेद का जो समस्या उपस्थित हो गई है उसके संबन्ध में रवीन्द्रबाबू ने बिल्कुल यथार्थ लिखा है:—" आजकल जाति विद्वेष खूब बढ़ गया है। सभ्य जाति अपनी शक्ति के मद से उन्मत्त हो निर्बल जातियों पर अत्याचार करने में संकोच नही करती। अभी मनुष्यत्व का विचार उनके लिए उपहासास्पद है। परन्तु जब जातीय-स्वतंत्रता, पर जाति विद्वेष और स्वार्थ सिद्धि का वीभत्स रूप दृष्टि गोचर होने लगेगा तब मनुष्य यह समझेगा कि यथार्थ मुक्ति किसमें है। नर में नारायण को उपलब्ध करने में ही उसकी मुक्ति है। इसी में उसका कल्याण है। इसके लिए अधिक तर्क करने की आवश्यकता नहीं।"

बिंदु मों सिंधु समान, ये अचरज कासो कहों।
हेरनहार हेरान, 'रहिमन' अपने आप में॥

(रहीम)

मुसलमानी राजत्व काल में हिन्दी।

स्वर्गीय मु'० देवी प्रसाद जी (जोधपुरी) एक सुप्रसिद्ध इतिहास के विद्वान और लेखक थे। उन्होंने अपने अविश्रान्त अतुल परिश्रम से मुसलमानी राजत्व काल की अनेक बातों का अभूतपूर्व अनुसन्धान किया था। प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर उन्होंने "मुसलमानी राजत्व में हिंदी" शीर्षक एक गवेषणा पूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया था जिसमें मुसलमानी इतिहास के आधार पर यह सिद्ध कर दिखाया गया है कि मुसलमान जब से हिन्दुस्थान में आये तभी से उनका अनुराग हिन्दी के प्रति रहा और उनके शासन काल में हिन्दी अपने समुचित आसन पर आसीन थी। उसी निबन्ध के आधार पर यहां यह दिखलाने का प्रयत्न करना कि मुसलमानी राजत्व काल के हिन्दी की कैसी अवस्था थी तथा मुसलमान सम्राटों और अधिकारियों का हिन्दी के प्रति क्या भाव था, अनुचित नहीं होगा।

राज–कार्य्यालय में हिन्दी

मुसलमानों का शासन जब से इस देश में प्रारम्भ हुआ तभी से उनके राजकार्य्यों में हिन्दी को स्थान मिला था। इसके मुख्य दो कारण हैः—

प्रथम, मुसलमान सर्दार वीर और ऐश्वर्य्यवान थे, अस्तु वे अपनी वीरता तथा विजय प्राप्ति के सम्मुख हिसाब-किताब के कार्य को लघु समझते थे, द्वितीय उनके पास अपने देश के इतने यथेष्ट मनुष्य नहीं थे जिन्हें प्रत्येक पद पर नियुक्त करते।

अतएव, वे देश के जिस भाग को विजय करते थे वहां के कार्य्यालय और कर्म्मचारियों को यथा रीति बने रहने देते थे और उनपर शासन करने के लिये अपनी एक प्रधान कचहरी बना देते थे, जिसका कार्य्य या तो वे स्वयं करते थे अथवा उनके मुसलमान मन्त्री।

सं० ७६८ वि० में मोहम्मद कासिम ने सिन्धु देश को विजय किया। उसने पूर्व मन्त्री को राज्य का कार्य सौंप कार्यालय में ब्राह्मण कर्मचारी नियुक्त किये, जिससे कार्यालय का कार्य यथा रीति हिन्दी में होता रहा। सवत १०७० में महमूद गजनवी ने हिन्दुओं से पंजाब का राज्य लिया। उसने भी वहां का राज-कार्यालय हिन्दी में और हिन्दुओं के हाथों में रहने दिया। सं० १२५० वि० में जब सहाबुद्दीन गोरी ने दिल्ली का राज्य लिया तो उसने भी ऐसा ही किया। सुलतान सिकन्दर लोदी ने यद्यपि अपने धार्मिक पक्षपात के कारण हिन्दुओं को फारसी पढ़ने लिखने के लिये वाध्य किया था तथापि वह अपने कार्य्यालय को हिन्दी छोड़ फारसी मे नहीं कर सका था। सम्राट अकबर के शासन काल के पूर्व तक राज-कार्यालय में हिन्दी का आधिपत्य भली भांति बना रहा।

राज–कार्य्यालय से हिन्दी का निर्वासन

सम्वत १६३८ मे सम्राट अकबर के प्रधान मंत्री राजा टोडरमल ने अन्य अनेक सुधारों के अतिरिक्त हिंदी-राज-कार्यालय को इरानी परिपाटी के अनुसार फारसी भाषा और लिपि में परिवर्त्तित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता हिंदी भाषा की अपेक्षा फारसी और अरबी भाषा की ओर

अधिक आकृष्ट हुई। राजा टोडरमल ने आय व्यय आदि के लिखने की जो रीति परिचालित की थी वह आज तक मुसलमानी राज्यों मे चल रही है। राज्यों में ही नही प्रतिदिन के व्यवहार्य साधारण वहीखातों में भी उसी की छाप—विद्यमान हैं। इस भांति सैकड़ों वर्षों की जमी हुई हिन्दी राजा टोडरमल के कारण राज-कार्य्यालय से निर्वासित हो गई। फिर भी हसन गांगू ब्राह्मणी द्वारा स्थापिय दक्षिण के वहमनी राज्य में हिन्दी पूर्ववत बनी रही; किंतु वहां से भी वह धीरे-धीरे निर्वासित की गई अर्थात् संवत १६४० से १७४२ तक समग्र मुसलमानी राज्य से हिन्दी का निर्वासन हो गया। हमारे विचार से राजा टोडरमल के फ़ारसी प्रचार ने हिंदी की जड़ में घोर कुठाराघात किया है। यह आघात इतना कठोर हुआ कि जिस स्थान से हिंदी हटी, लाख चेष्टा करने पर भी अभी वह उस स्थान पर न पहुंच सकी।

अकबर का हिन्दी-प्रेम

परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि अकबर हिंदी का विद्वेषी था। उसने स्वयं हिंदी में कविता लिखी और हृदय से हिंदी कवियों का आदर करता था। हिंदी की वास्तविक उन्नति अकबर के ही समय में हुई। और इसका मुख्य कारण था उसका हिंदी—प्रेम। यह हिंदी—प्रेम ही था कि उसने अपने पोत खुसरो को ६ वर्ष की अवस्था में प्रथम हिंदी ही पढ़ने को बैठाया। अकबरनामें में लिखा है कि ७ आजर सन् ३८ जलूसी (अगहन सुदी ६ सम्वत १६५० वि) को सुलतान खुसरो हिंदी विद्या सीखने को बैठा। भूदत्त ब्राह्मण

जो भट्टाचार्य के नाम से सर्वसाधारण में प्रसिद्ध है तथा अनेक विद्याओं का सुपण्डित है उसको पढ़ानेको नियत हुआ।

अकबर ने राज्य-प्रबन्ध के जोर्णोद्धार और शासन-संस्कार में भी हिंदी का ही बहुत कुछ प्रचार किया था जिसका पता आईनअकबरी से लगता है। सिक्को, तोपो, बन्दूको, हाथो, घोड़ो तथा अन्य वस्तुओं के नाम जो उसने नये निकाले थे प्रायः हिंदी के ही रक्खे थे जिनके कुछ उदाहरण यहा लिखे जाते है।

सोने के सिक्का के नाम—(१)सहंसा (१०१ तोले ९ मासे अथवा ९१ तोले ८ मासे का होता था), (२) रहस्य (संहसे का आधा), (३) आत्म (सहंसे का चौथाई), (४) विशंति (सहंसे का दसवां और बीसवां भाग), (५) चुगल (सहसे का ५० वां भाग—२ मोहर का),(६) अदल (गुटका ११ मासे सोने का मोल ६)रु०)(७)धन(१ मोहर मोल ६)रु०)(८)रवि (आधी मोहर) (९) पाण्डव (मोहर का पांचसां भाग), (१०) अष्ट सिद्धि (मोहर का आठवां भाग), (११) कला (मोहर का सोलहवां भाग)।

चांदी के सिक्कों के नाम—(१) रुपया, (२) द्रव्य (अठन्नी) (३) चरण (चवन्नी,) (४) पाण्डव (१ रुपये का पांचवां भाग) (५) दशाह (दसवां भाग), (६) कला (एकन्नी), (७) सोकी (२० वा भाग)।

तांबे के सिक्कों के नाम—(१) दाम (पैसा—१ तोला ८ मासा ७रत्ती भर), (२) अधेला (आधा दाम), (३) पवला (चौथाई दाम), (४) दमड़ी (दाम का आठवाँ भाग)।

तोपों के नाम—(१) गजनाल, (२) हथनाल, (३) नरनाल

बंदूकों के नाम—(१)संग्राम), (२) रंगीन।

तलवारों के नाम—(१) जलधर, (२) खपवा, (३) जम खाग, (४) नरसिंह मूठ. (५) कटारा।

पहनने के कपड़ा के नाम—(१) सर्व गाती (जामा), (२) चित्रगुप्त (बुरका, घूघट), (३) शीश शोभा (टोपी, मुकुट) (४) केशधन (बालों के बांधने का मूवाफ); (५) कटिजेब (पटका), (६) तनजेब (आधे बदन के पहनने का नीया) (७) पटगत (कमरबन्द), (८) पारपेरान (इजार—पाजामा), (९) परम—नरम (शाल), (१०) चरन धरन, (११) कण्ठशोभा (१२) परम गरम (दुशाला), (१३) टकोचिया, (१४) केशधन।

कपड़ों के थानों के नाम—(१) गंगाजल (२) चोनार (३) भेरों (४) मिहरकुल (५) अटान (६) असावली (७) धूरकपूर (८) कपूरनूर।

हाथी के सामानों के नाम—(१) गजझांप (झूल), (२) मेघडंबर (छतरीदार हौदा), (३) रणपील (सिरी), (४) गज-बागा (अंकुश)।

सिपाहियों के नाम—(१) लकड़ैत (लकड़ी से लड़नेवाले) (२) पटैत (पटेबाज), (३) ढालैत (ढाल तलवार से लड़ने वाले), (४) बरछैत (बरछे से लड़ने वाले), (५) कमनैत (तीर कमान से लड़ने वाले), (६) बाग़ैत (दोनों हाथों से तलवार मारने वाले), (७) एक हाथ (एक हाथ से तलवार लड़ने वाले), (८) विनोटिया (तलवार छीन लेने वाले), (९) चड़वा (छोटी ढाल रखने वाले पुरबिये), (१०) तलवा (बड़ी ढाल रखने वाले दखिनी), (११) बनकोली (टेढ़ी तलवार वाले),

(१२) पहरायत (पहरा देनेवाले), (१३) खिदमतेये (सेवक), (१४) मेवड़े (डाक लेजानेवाले), (१५) चेले जो पहले गुलाम कहलाते थे), (१६) अहदी (अकेले लड़ने वाले) ।

डेरे वगैरा के नाम-(१)गुलालबाड(बड़ी कनात लाल रंग की जो सब डेरों के पास कोट के समान खड़ी होती थी),(२)रावटी (लम्बे चौड़े डेरे) (३) मण्डल (चार गज के चोखों पर खड़े होने वाले डेरे), (४) आकाश दिया (जो ४० गज ऊंचा होता था) (५) सूर्य्यकांति (जिसको दोपहर के समय सूर्य के सामने रख कर रुई में अग्नि उत्पन्न करते थे जिससे बादशाही बावरचीखानो और दीपकों के जलाने आदि का काम लिया जाता था)(६)चन्द्रकान्ति (जिससे चन्द्रमा के आगे करके पानी टपकाया जाता था), (७) संख (गाय के सींग जैसा तावे का बनाया जाता था और ऐसे-ऐसे संखों को मिला कर समय-समय पर दरवार में बजाते थे ।)

सिक्कों में हिन्दी

हम पहले कह आये हैं कि मुसलमानों ने यहां आने पर प्राचीन राजकार्य्यालयों में किसी प्रकार का परिपवर्तन नहीं किया । इसी भांति यहां के प्रचलित सिक्कों में भी केवल नाम आदि बदलने के अतिरिक्त और अन्य कोई परिवर्त्तन नहीं किया; जैसे सिक्के पहले चलते रहे वैसे ही मुसलमानों के समय के भी चलते रहे । मुसलमान—सम्राटों के सिक्कों में क्या लिखा रहता था इसका विवरण नीचे की तालिका में दिया जाता है-

नंबर	नाम बादशाह	हिंदी अक्षर
१	मोईज्जुद्दीन मोहम्मद शाम व शाहबुद्दीन गोरी	(क) स्री महमद बिन साम (ख) स्री मदहमीर स्री महमद साम
२	महमूद बिन साम	स्री हमीर
३	ताजुद्दीन यलदोज	स्री हमीर
४	शमसुद्दीन एलतमश	स्री हमीर स्री समसदिण
५	रुकनुद्दीन फीरोजशाह	स्री हमीर, सुरितां स्री रुकण दीण
६	रज़िया बेगम	स्री हमीर स्री सामन्तदेव
७	मुइज्जुद्दीन बहरामशाह	स्री मुइज़
८	अलाबुद्दीन मसऊद शाह	स्री हमीर, स्री अलावदिण
६	नासिरुद्दीन महमूद शाह	स्री हमीर
१०	गयासुद्दीन बलबन	स्री सुलतां गयासुदी
११	मुइज्जुद्दीन कैकुबाद	स्री सुलतां मुईज़ुदी
१२	जलालुद्दीन फ़ीरोज़ खिलजी	स्री सुलतां जलालुदी
१३	गयासुद्दीन तुगलक शाह	स्री सुलतां गयासदी
१४	शेरशाह सूर	स्री सेर साहि
१५	इसलाम शाह सूर (सलीम शाह)	स्री इसलाम साहि
१६	अकबर बादशाह	श्रीराम

उल्लिखित तालिका के देखने से पता चलता है कि शहाबुद्दीन गोरी से लेकर अकबर बादशाह के समय तक ४०० वर्ष के लगभग बादशाही सिक्कों में हिंदी अक्षर रहते आये थे, जिनमें बादशाहों के नाम तथा और भी कई विशेषण मुद्रित होते थे।

अकबर बादशाह ने सब बादशाहों से बढ़ कर यह काम किया कि अपने सिक्कों के साथ एक सिक्का ऐसा भी चलाया था कि जिसमें न तो अपना नाम था और न कोई राजचिन्ह था केवल एक ओर श्रीराम और सीता जी की मूर्ति थी जिस पर नागरी में राम नाम लिखा था और दूसरी ओर इलाही महीना और इलाही सन था।

उक्त विवरण से उस समय हिंदी कैसी लिखी जाती थी और मुसलमान बादशाह उसे किस दृष्टि से देखते थे जाना जाता है। १२ वीं सदी में जैसी हिन्दी लिखी जाती थी वैसी १६ वीं सदी के आरम्भ होने तक न रही, स्री के स्थान पर शुद्ध श्री शब्द हो गया।

सरकारी कागजों में हिन्दी

सरकारी कार्यालय से हिन्दी एक दम उठा दी गई थी फिर भी क़ाज़ी लोग जो मुक़दमों के फैसले लिखते थे अथवा कानूनगो सरकारी कागज और परवाने निकालते थे उनमें कभी-कभी हिन्दी लिखा जाती थी। भूमि संबधी फैसलों में ऐसे वादी-प्रतिवादी हिन्दुओं के समझने के लिए जो फारसी पढ़े नहीं होते थे फारसी का नीचे कुछ सारांश हिन्दी में भी लिख दिया जाता था। गांव वालों के नाम के परवाने दस्तक और इत्तलाकनामे आदि प्रायः हिन्दी में ही होते थे। इस हिन्दी की रोक किसी ने नही की थी। औरंगजेब के समय में भी इस

हिन्दी की रोक नहीं थी। ऐसे कई कागज़ात देखने में आये हैं।

हिन्दी कवियों का सम्मान

हिंदी ने अपनी मनोहरता के कारण आरम्भ से ही मुसल-मान सम्राटों को विमुग्ध कर लिया था। जिससे मुसलमानी राजत्व काल में हिंदी कवियों का सम्मान भी खूब हुआ। मुसलमानी राजत्व-काल के इतिहास और हिंदी-साहित्य के इतिहास को मिलान कर के देखने पर इस बात का स्पष्ट पता चलता है कि मुसलमानों की उन्नति के साथ-साथ हिंदी की उन्नति हुई है और उनके अधःपतन के साथ एक बार हिंदी का भी रंग उड़ गया है। जब मुसलमानी शासन का सूर्य उन्नति पर था हिंदी के बड़े बड़े प्रतिभाशाली कवि उस समय उत्पन्न हुए मुसलमानों की उन्नति के समय हिंदी इस भांति फूली फली कि आज भी उसके सुमधुर सुगंध और स्वाद से लोग स्वर्गीत सुख का अनुभव करते हैं। मुसलमानी राजत्व में हिंदी की इस उन्नति का मूल कारण है मुसलमान सम्राटों का हिंदी के कवियों को आदर प्रदान करके हिंदी का वास्तविक सम्मान करना। हिंदी के इस नाते से मुसलमानों के प्रति हमारा प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है। मुसलमानों को इस पर गर्व होना चाहिए। मुसलमान सम्राटों ने हिंदी कवियों का किस उदारता पूर्वक सम्मान बढ़ाया था इस के कुछ उदाहरणों का देना यहां पर अनुचित न होगा।

सुलतान महमूद गजनवी ने सवत १०८० वि० में जब कालंजर पर चढ़ाई की थी तो वहां के राजा नन्दा ने उसकी प्रशंसा में एक हिंदी दोहा लिख कर भेजा था जिसे देखकर हिंद, अरब और आजम सभी स्थानों के विद्वान रीझ उठे। सुलतान ने यह देख कि एक स्वतंत्र राजा ने उसकी प्रशंसा

की है, १५ किलों की हुकूमत का फरमान जिन में एक कालंजर भी था बहुमूल्य पदार्थों सहित उस दोहे के पारितोषिक में राजा के निकट भेज दी और अपनी सेना लेकर गज़नी लौट गया।

तुजुक जहाँगीरी के संवत १६६५ के वैशाख बदी ११ के वृत्तान्तों मे सम्राट जहाँगीर ने लिखा है कि मारवाड़ के राजा सूरजसिंह ने सम्राट अकबर की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए उनकी प्रशंसा में एक कवित्त लिखा, जिस पर उसने उसे एक हाथी उपहार में दिया। इसी ग्रन्थ के वैशाख बदी ३० मंगलवार सं० १६७५ के वृत्तान्त में उसने लिखा है कि अहमदाबाद (गुजराती) के किसी बृखराय नामक भाट की एक उक्ति पर रीझ कर उसने १०००) रु० दिये।

रहीम खानखाना ने गंगा भाट को निम्नलिखित छप्पय पर मुग्ध होकर छत्तीस लाख रुपये का पुरस्कार दिया था।

छप्पय

चकित भंवर रहि गयो गवन नहि करत कमल बन।
अहि फनि मनि नहि लेत तेज नहि बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलैं अति।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहै न करैं रति॥
खल भणित शेष कवि गंग भनि रमित तेग रविरथ खस्यो।
खानान खान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तंग कस्यो॥

राजा इन्द्रजीत ओड़छा के राजा थे उनकी परम प्यारी वेश्या प्रवीण राय थी। उसका ज्ञान काव्य कला मे बहुत बढ़ा चढ़ा था। उसके रूप और गुण की प्रशंसा सुन सम्राट अकबर ने एक बार उसे अपने दरबार मे बुला भेजा। प्रवीण राय सम्राट की इच्छा समझ गई। जब उसने दरबार में पहुँच कर अपना गुण प्रदर्शित किया तो कहते हैं सम्राट उसपर मुग्ध हो गए।

अवसर पाकर प्रवीण राय ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—

बिनती राय प्रवीण की, सुनिये शाह सुजान ॥
जूठा पतरी भखत है, बारी बायस स्वान ॥

अकबर ने इसपर प्रसन्न होकर उसे बहुत कुछ इनाम देकर निहाल किया।

धन के द्वारा कवियों का सम्मान बढ़ाने के अतिरिक्त सम्राट अकबर ने कविराय नाम की एक पदवी नियत कर दी थी, जो उच्चकोटि के कवियों को मिला करती थी। इस पदवी के सर्व प्रथम अधिकारी राजा बीरबल हुए थे। शाहजहां ने कविराय से भिन्न एक 'महापात्र' नाम की भी पदवी नियत की जो ऊंचे दर्जे के कवियों को दी जाती थी; इस पदवी के प्रथम अधिकारी नरहर और हरनाथ हुए थे।

हिंदी के प्रति मुसलमान सम्राटों का कार्य्य यहीं से नहीं समाप्त हो जाता है। हिंदी भाषा और कविता पर ये इस भांति मुग्ध हो रहे थे कि उनकी मातृ-भाषा तुर्की या फारसी होने पर भी वे हिंदी-कविता अच्छी तरह समझते तो थे ही उनमें से अनेक स्वयं भी रचनाएं करते थे। सम्राट अकबर की स्फुट कवितायें तो बहुधा कवियों को स्मरण है ही; जहांगीर, शाह-जहाँ औरंगजेब, मोअज्जम शाह, आज़मशाह, बहादुर शाह आदि अनेक मुसलमान सम्राटों और नवाबों की रचनाएं आप इस ग्रन्थ में देखेंगे। हिंदी के लिए यह कम गौरव की बात नहीं है।

कितने ही मुसलमान सम्राट और नवाबों ने हिंदी कविता के सुनने के लोभ को संवरण न कर सकने के कारण अनेक हिंदी कवियों को अपने यहां नौकर रख लिया था। ऐसे मुसल-मान सम्राट नवाब तथा कवियों की एक छोटी सी तालिका अगले पृष्ठ पर दी जाती है:—

नंबर	आश्रयदाता	आश्रयी कवि
१	अलाउद्दीनमंस्ती खिलजी	केदार कवि
२	हुमायूं	क्षेम बन्दीजन
३	सम्राट अकबर	गंग, नरहरि, करण, होल ब्रह्म (बीरबर), रहीम, फैज़ी अमृत, मनोहर आदि
४	दाराशिकोह	बनमाली दास गोसाईं
५	शाहजहां	कवीन्द्र सुन्दर
६	औरंगजेब	ईश्वर
७	मोअज्जम शाह	अब्दुल रहमान
८	पठान सुलतान	चन्द्र कवि
९	फाजिल अली खां	सुखदेव मिश्र
१०	आसिफुद्दौला	गिरधरराय
११	मुहम्मद शाह	गुमान
१२	अली अकबर खां	निधान, प्रेम नाथ
१३	मुहम्मद शाह	युगलकिशोर भट्ट
१४	मुहम्मद अली	जीवन
१५	क़ायम खां	रामभट्ट

पिछली तालिका में दो तीन आश्रयदाताओं के अतिरिक्त प्रायः सभी हिंदी कविता करते थे जैसा कि इस ग्रन्थ को आगे देखने पर आपको मालूम होगा।

हिंदी के अतिरिक्त मुसलमानों में संस्कृत का भी समुचित प्रचार था। अनेक मुसलमानों ने संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में किया था जिसकी एक छोटी सी तालिका नीचे दी जाती है।

संख्या	संस्कृत के ग्रन्थ	अनुवादक (फारसी में)
१	अथर्व-वेद	हाजी इब्राहिम (सरहिंद निवासी)
२	महाभारत	नकीबखां, अब्दुरकादिर (बदायूनी) शेख सुलतान
३	रामायण	उक्त तीनों सज्जन
४	लीलावती	शेख अब्दुल फैज (फैज़ी)
५	ताजक	मुकम्मिल खां (गुजरात निवासी)
६	राजतरंगिणी	मौलाना शाह मुहम्मद (शाहाबादी)
७	हरिवंश	मौलाना शेरी
८	नल दमयन्ती	फैज़ी

उक्त तालिका से यह स्पष्ट पता चलता है कि मुसलमान कितने गुण ग्राहक थे तथा हिंदुओं की भाषा और उनके धार्मिक ग्रन्थों पर उनका कैसा प्रगाढ़-प्रेम था।

संगीत

काव्य को छोड़ हिंदी-संगीत का भी मुसलमान बादशाहों में बहुत प्रचार था। कारण, मुसलमान बादशाह राग रंग के रसिक थे। नाच और गाने के बिना वे और उनके साथी अपने जीवन को नीरस समझते थे। गोपाल नायक, बख़्शू नायक, चिरजू नायक, तानसेन, रामदास और सूरदास आदि बड़े-बड़े गवैये इन बादशाहों के ही समय में हुए हैं जो विशेषतः हिन्दी भाषा के गाने गाते थे। उनकी संगत से मुसलमान गवैये भी उत्पन्न हो गए थे जिनकी संतान आज भी इस विद्या की धनी है। भांति-भांति के हिन्दी-गीत बनाने वाले तथा राग-रागिनियों के जोड़ने वाले भी अनेक कवि अमीर खुसरो से लेकर लखनऊ के अन्तिम बादशाह वाजिद अलीशाह तक हो गए हैं, जिनका नाम हिन्दी संगीत में सदा अमर रहेगा। हिंदू गवैयों का मुसलमान बादशाहों ने मान-सम्मान भी राजाओं से बढ़ कर किया है। गोपाल नायक को आलाउद्दीन खिलजी जैसे कट्टर और अभिमानी बादशाह ने तख़्त पर अपने बराबर बैठा कर उसका गाना सुना था। अकबर ने तानसेन को बड़े आदर सत्कार से बुला कर पहिले ही मुजरे में १ करोड दाम का इनाम दिया था। बाबा रामदास को बैरमख़ां खानखाना ने एक दिन में एक लाख टके चांदी के दे डाले थे। महापात्र जगन्नाथ राय त्रिशूली के बराबर शाहजहां ने रुपये तौल दिये थे और महा कविराय की पदवी देने के अतिरिक्त गान विद्या में

भी उसका पद दरबार के सब गवैयों से ऊंचा रखा था। शाहजहांनामें में जहां बड़े कलावत लाल खां को गुणसमुद्र की उपाधि मिलने का उल्लेख है वहां कई कलातों के गुण-वर्णन करके अन्त में यही लिखा है कि इस आनन्द मङ्गल के समग्र सब राग रागनियां बनाने और गाने वालों का अग्रगण्य जगन्नाथ राय महा कविराय ही है।

सभी गवैये हिंदी भाषा की चीजें गा-गा कर मुसलमान बादशाहों को रिझाया करते थे और उनसे लाखों रुपये के इनाम और जागीरें पाते थे। बादशाहों के हिन्दी-प्रेम ही से इन हिंदी गवैयों का कल्याण और लाभ होता था।

हिन्दी और उर्दू

एक राष्ट्र भाषा और राष्ट्र लिपि का होना कितना हितकर और आवश्यक है इसका लिखना व्यर्थ है। राष्ट्र का प्रत्येक शिक्षित मनुष्य इसके महत्व को भली भांति समझता है। संसार में कोई भी राष्ट्र बिना एक राष्ट्र-भाषा के पूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक जीवित राष्ट्र की एक राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र लिपि है। इंगलैण्ड की इंगलिश, फ्रांस की फरांसीसी, जर्मन की जर्मनी, रूस की रूसी, फारस की फारसी, चीन की चीनी, जापान की जापानी आदि राष्ट्र भाषाएं हैं। किंतु हमारे दुर्भाग्य से अथवा दैवदुर्विपाक से भारत की कोई भी राष्ट्र-भाषा अब तक स्थिर नहीं की जा सकी। भारत की राष्ट्र-भाषा तथा राष्ट्र-लिपि होने की योग्यता किस भाषा तथा लिपि में है—अभी यह प्रश्न भी विचारणीय, विवेचनीय और विवदनीय है। कालांतर से स्वदेश भक्त विद्वान और मनीषी इस

विषय पर अपने-अपने विचार प्रकट करते आये हैं किन्तु फिर भी हमारी गति डावांडोल ही रही। कुछ विचारशील देश हितैषियों का मत है कि यहां की राष्ट्र-भाषा सरल संस्कृत और राष्ट्र लिपि नागरी होनी चाहिए किन्तु अधिकांश विद्वानों के मत से हिंदी में ही राष्ट्र-भाषा तथा नागरी में ही राष्ट्र लिपि के होने की योग्यता है।

श्रीमती एनीबेसेन्ट हिंदी में राष्ट्र-भाषा होने की योग्यता तो बताती ही है साथ ही वे भारत की अन्य अनेक भाषाओं को हिंदी का ही रूपान्तर समझती है। उनका कहना है कि "भारत की प्रचलित अनेक भाषाओं मे जो सब से जबरदस्त है वह बहुव्यापिनी हिंदी है। जो मनुष्य हिंदी जानता है वह भारत के प्रत्येक भाग में सुगमता पूर्वक यात्रा कर सकता है तथा सर्वत्र उसे हिंदी-भाषा-भाषी मनुष्य मिलेंगे। भारत के उत्तर तथा उसके आसपास में यह बहुसंख्यक मनुष्यों की मातृ-भाषा है और जो हिन्दी नहीं बोलते वे हिंदी से ऐसी मिलती-जुलती भाषा बोलते है कि हिंदी का अर्थ बिना किसी कठिनाई के ग्रहण कर सकते हैं। उर्दू केवल फारसी मिश्रित हिंदी है, पंजाबी और गुरुमुखी हिंदी की बोल-चाल की भाषा हैं,पुनः गुजराती और मराठी भी हिंदी की बोल चाल की भाषा है; बंगाली सरस मधुर और काव्य की हिंदी है। भारत में राष्ट्रीयता स्थापित करने के लिये केवल दक्षिण भारत को हिंदी पढना पड़ेगा जो वह भली भांति कर सकता है।" (Nation Building)

इसी भांति जस्टिस सारदा चरण मित्र ने भी कहा है "यदि कोई भारतीय भाषा समग्र भारतवर्ष की भाषा होने के योग्य है.. .... तो वह हिंदी है। इसमें कुछ-कुछ अरबी का

मिश्रण अवश्य है पर उस पर ध्यान नहीं देना चाहिए। हिंदी को यथा रीति न पढ़ने पर भी लोग उसे सहज ही समझ लेते हैं तथा प्राच्य बंगाल से ले कर सिंधु देश, पंजाब, राजपुताना, मध्यदेश बम्बई और गुजरात पर्यन्त बिना प्रयास यह समझी जाती है, इसकी लिपि और वर्णमाला देवनागरी है तथा इसका अवलम्बन करने पर लिपि परिवर्तन की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। दक्षिण में हिंदी का चलना थोड़ा कठिन है कारण द्रावणी भाषा समूह अनार्य हैं, आर्य भाषाओं से इनमें बहुत अधिक पार्थक्य है किंतु हमारा विश्वास है कि दक्षिण के थोड़ा कष्ट स्वीकार करने पर हिंदी अच्छी तरह चल सकती है।

दक्षिण के सुपंडित अध्यापक रंगाचार्य एम० ए० ने अपने एक विचारपूर्ण लेख में लिखा है कि "देश भर में एक ही व्यापक भाषा के होने की बड़ी आवश्यकता है और हिंदी ही ऐसी भाषा है जो देश-व्यापक भाषा होने की योग्यता रखती है।"

(इंडियन रेव्यू)

स्व० आर० सी० दत्त ने बड़ोदे के हिंदी परिषद् के वक्तव्य में कहा था—"यदि कोई भाषा है जो अधिकांश भाग में स्वीकृत हो सकेगी तो वह हिंदी है।"

हिंदी परिषद् के सभापति बम्बई के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व० डा० भाण्डारकर ने कहा था—"भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों की आपस में बातचीत करने के लिये साधारण भाषा होने का गौरव हिंदी को अवश्य ही मिलना चाहिए। भारतवर्ष में सर्वत्र हिंदी का प्रचार करने में मुझे अधिक कठिनता दिखलाई नहीं पड़ती।"

ग्वालियर के भूतपूर्व न्यायाधीश (Chief Justice)

राय बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम०ए० एल०एल०बी० ने कहा था—"हिंदी ही सब प्रकार से भारत की राष्ट्र-भाषा होने के योग्य है।"

बंग भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय राय बंकिम चंद्र चटर्जी बहादुर ने अपने "बंग-दर्शन" नामक मासिक पत्र में बंगालियों को संबोधन कर के लिखा था—अंगरेजी भाषा द्वारा जो कुछ भी क्यों न हो किन्तु हिंदी के बिना कोई काम ही नहीं चल सकता। हिंदी भाषा की पुस्तक और वक्तृता द्वारा भारत के अधिकांश भाग को लाभ पहुँचाया जा सकता है, जो केवल बंगला वा अंगरेजी की चर्चा से नहीं हो सकता। भारत के अधिवासियों की संख्या की तुलना में कितने लोग बंगला वा अंगरेजी बोल और समझ सकते हैं? बंगला के समान जो हिंदी की उन्नति नहीं हो रही है यह देश के दुर्भाग्य की बात है। हिंदी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में जो एकता स्थापित कर सकेंगे वास्तव में वे ही भारतबन्धु कहलाने के योग्य है। सब मिलकर चेष्टा करो, यत्न करो, चाहे जितने दिन में हो मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा।"

सुप्रसिद्ध विद्वान और स्वदेशभक्त श्री अरबिन्द घोष अपने 'धर्म' नामक साप्ताहिक पत्र में कहते हैं—"भाषा-भेद से कोई बाधा नहीं पहुंचेगी, सब लोग अपनी-अपनी मातृ-भाषा की रक्षा करें किन्तु साधारण भाषा के रूप में हिंदी-भाषा को ग्रहण कर उस अन्तराय को विनष्ट करें।"

केवल हिंदू ही नहीं परलोकवासी सय्यद अली बिग्रामी जैसे विचारशील विद्वान मुसलमानों ने भी हिंदी ही को राष्ट्र भाषा होने के योग्य बताया है। सय्यद अमीरअली ने तो अपने एक हिंदी निबंध में मुसलमानों को सम्बोधन कर स्पष्ट

कहा है—"हमलोग अरबी से फारसी और फारसी से उर्दू सीखने पर लाचार हुए थे। अब हिंदी की तरफ भी झुकना हमारा काम है। विलायत जा कर ग्रेजुएट होने पर भी घर की प्रारम्भिक शिक्षा और घर में बर्ते जाने वाले आचरण का असर लोगों में रहता ही है। इससे यदि राष्ट्र-भाषा हम लोग हिंदी मान लेंगे तो लाभ के सिवाय कुछ हानि नही। हमारा उर्दू-साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। जिस तरह हमलोगों में से अनेकों ने अंग्रेजी राज-भाषा समझ कर सीखी है और उससे उर्दू को कुछ बट्टा नही लगा, उसी तरह हिंदी को राष्ट्र-भाषा मान लेना अच्छा है। वह हमें कुछ बाधा नही पहुँचा सकती, वरंच लाभ होगा। मुसलमानों का जो भाग उर्दू से वंचित है उसे हम लोग हिंदी द्वारा अपने मन्तव्य बतला सकेंगे, नही तो परिणाम यह होगा कि हिंदी जानने वाले मुसलमान धीरे धीरे-अपने धर्म सिद्धान्त से कोसों दूर हो जावेंगे।...... मुल्की लिहाज से भी हमें हिन्दी को जगह देनी ही होगी। यह उसका घर है, उसे हम कैसे दुरदुरा सकते है ? जब हमारा सितारा प्रकाशमान था तब इसी दोष ने प्रजामत पर विजय पाई थी। सम्राट अकबर के ध्यान में यह बात आई थी। इसी से उसके समय में एतद्देशीय साहित्य की चर्चा उसके दर्बार मे बड़े जोर शोर से होती थी। इसी से हिंदू मुसलमानों में विशेष मेल हो गया था। अंगरेजी राम राज्य के रहते, छापाखाना, रेल, तार और जहाज आदि के होते हुए यदि हम लोग परस्पर में मिल कर न रहें तो लज्जा की बात है। मिल कर रहना भाषा के बिना हो नही सकता। इससे मिलने के लिए हम दोनों (हिन्दू मुसलमानों) को थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ना होगा, अर्थात संस्कृत और फारसी

का मोह छोड़ हिंदी और उर्दू का मिश्रित सुन्दर सरल रूप बनाना होगा। समाचार पत्रों अथवा नाविलों में उन शब्दों को भी लिखना हम लोगों को छोड़ देना पड़ेगा जो इतिहास लिखने के बहाने हमारी तंग दिली या गन्दगी जाहिर करते हों, क्योंकि दूर भागनेवाले को गाली दे कर हम पास नहीं बुला सकते।"

उक्त सभी उद्धरण अन्य भाषा भाषी विद्वानों के विचारों से दिये गए हैं। उन पर किसी भी प्रकार पक्षपात का दोष नही लगाया जा सकता। महात्मा गान्धी जी, मालवीय जी सरीखे स्वदेश भक्तों के वाक्य भी उद्धृत किये जा सकते थे किंतु ये लोग तो हिंद और हिंदी के लिये अपना सर्वस्व निछावर किये बैठे हे जो सब पर प्रकट है। अस्तु, यह निश्चित है कि भारत की राष्ट्र-भाषा के होने की योग्यता हिन्दी में ही है है अन्य मे नही। धर्मान्धता तथा प्रादेशिक प्रेम के कारण कुछ लोग भले ही हिन्दी का विरोध करें पर सत्य सदा सत्य है। भारत की प्रायः सभी जातियों ने हिंदी को राष्ट्र-भाषा मान लिया है केवल मुसलमानों की ओर से समय-समय पर इसका विरोध किया जाता है। जिन मुसलमानों के ही आदर सत्कार से हिन्दी इस तरह फूली फली उन्ही के द्वारा हिन्दी की उन्नति में यह कुठाराघात देख कर दुःख होता है, तथा यह विचार कर और भी दुःख होता है जिस उर्दू का पक्ष ले कर हिन्दी के विरुद्ध मुसलमानों ने तुमुल आन्दोलन मचा रक्खा है वह अरबी लिपि में लिखी जाने वाली फारसी मिश्रित हिंदी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

यहां पर संक्षेप में यह विचार कर लेना उचित है कि हिंदी उर्दू में वास्तविक क्या अंतर है। विद्वानों का मत है कि ये

दोनों एक ही भाषा हैं। उनका कहना है कि हिन्दी और उर्दू भाषा सम्बन्ध से एक ही है अर्थात् उत्तर हिन्दुस्तान या भारतवर्ष में सर्वत्र बोली जाने अथवा समझी जाने वाली भाषा समस्त हिन्दू मुसलमानों की एक ही भाषा है। इस भाषा में जब तुर्की और अरबी शब्दो का बाहुल्य होता है तो वह उर्दू कहलाती है और संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होने से हिन्दी।

उर्दू और हिंदी में सब से भारी एक यह भेद है कि उर्दू अरबी तथा हिंदी नागरी अक्षरो द्वारा लिखी जाती है। यदि यह लिपि भेद न होता तो कदाचित यह झगडा ही न खड़ा होता। परन्तु केवल लिपि भेद भाषा के मूल को नही बदल सकता यदि कोई विद्यार्थी सुविधा के लिये अंग्रेजी उच्चारणों या भाषा को नागरी लिपि में लिख ले तो क्या अंग्रेजी भाषा हिंदी हो जायगी और यदि यह तर्क मान भी लिया जाय तो हिंदी और उर्दू का कोई अस्तित्व ही नही रह जाता। क्योंकि उर्दू अरबी लिपि में लिखी जाने के कारण अरबी है तथा हिंदी नागरी अक्षरों में लिखी जाने के कारण संस्कृत है।

दूसरी बात यह देखने में आती है कि उर्दू केवल हिंद में ही बोली जाती है। हिंद से सम्बन्ध सूचक तद्धित हिंदी बनता है न कि उर्दू। अस्तु, यह हिंद की भाषा है और हिंदी ही कही जानी चाहिये।

अब प्रश्न यह है कि यदि हिंदी और उर्दू में कोई भेद नही है तो उर्दू शब्द हिंदी भाषा के लिये कब से और कैसे प्रयोग में आया। स्व० राजा शिव प्रसाद जी सितारेहिंद इस विषय पर अपना मत बहुत पहिले प्रगट कर चुके हैं जिसका युक्तियुक्त खण्डन आज तक किसी ने नही किया है। उनका

मत है कि उर्दू तुर्की भाषा में सेना को कहते हैं और जब भारत में मुसलमानों का राज स्थापित हुआ तो हिंदू मुसलमानों को स्वाभाविक प्रेम बढ़ने लगा और ये लोग मिल कर रहने के लिये सहज बाध्य हुए। सेना मे रसद देने हिंदू वणिज जाते थे और राजाज्ञा से हिंदुओं की दूकानें भी रहती थी। यह उर्दू बाजार या कन्टूनमेंट सबसे पहिले दिल्ली मेहुआ। अस्तु, कुछ काल के अनन्तर हिंदू मुसलमानों के सम्पर्क जनिक परिवर्तन युक्त हिंदी का नाम सब से पहिले उर्दू अर्थात सेना की बोली पड़ा। ऐसे अवसर पर हिंदू मुसलमान अपना-अपना मन्तव्य प्रगट करने के लिये और एक दूसरे की भाषा से बहुत कम अवगत होने के कारण हिंदी, अरबी फारसी मिश्रित भाषा बोलते थे जो बहुत स्वाभाविक था। आज दिन भी तकिया और तौलिया बेचने वाला अंग्रेजी फौज़ों में जा कर इस भांति आवाज़ लगाता है—"साहेब पिलुआ (pillow) गुदड़ी तौल (towel) बाई (buy)!" उत्तर में साहब धमकाता है—"वेल; चला जाओ अदरवाइज (otherwise) आम तुमको पुलिस को हैंडओवर(hand over)कर देगा।" तरह इसी धीरे धीरे हमारी हिन्दी में अरबी फारसी और तुर्की आदि भाषाओं के शब्द मिल गये। और इस तरह मिले कि समय पा कर उनका प्रयोग हिन्दी की कविताओं में भी होने लगा। अन्य कवियों की कौन कहे जिनके सैकड़ों उदाहरण सूर और तुलसी की कविता से भी पाये जा सकते हैं।

कुछ लोगों का अनुमान है कि जिस प्रकार बुंदेलखण्डी हिन्दी, बैसवाड़ी हिन्दी वा अंग्रेजी हिंदी आदि कहा जाता है। इस मिश्रित हिन्दी का नाम उस समय उर्दू-हिन्दी अर्थात् फौजी हिन्दी पड़ा। अब जिस भांति बैसवाड़ी हिन्दी अथवा

बुन्देलखन्डी हिन्दी न कह कर लोग बैसवाडी बुन्देलखण्ड आदि कहते हैं उसी भांति उर्दू हिन्दी से भी हिन्दी लुप्त होकर उर्दू ही रह गया। मुसलमान विजेताओं को जब राज-कार्य में न्याय करने, हिसाब किताब रखने आदि में हिन्दी लिखने की आवश्यकता पड़ी तो वे इसी रूपान्तरगता हिन्दी को अपनी सुविधा के लिये अरबी अक्षरों में लिखने लगे और इसी कारण अब तक मुसलमान हिन्दी को अरबी अक्षरों में लिखते आते हैं। इसी तरह मुसलमान लेखक अपने शब्दों की कमी अरबी फारसी से और हिन्द संस्कृत प्राकृत से पूरी करते थे। किन्तु भाषा साधारणतः दोनों ही एक लिखते थे। जब कविता की चर्चा बढ़ी भाव की आवश्यकता हुई, कवि समय की जरूरत हुई, आख्यानो की खोज पड़ी तो हिन्दुओं ने पुराणों की सहायता ली तथा पुराणों से अनभिज्ञ मुसलमानों ने अरब तथा फारिस के कवि समय का अव-लम्बन किया, वहीं के कवियों की शैली का अनुकरण किया। यही उर्दू भाषा की जन्म कथा है।

हिंदी तथा उर्दू के अंगों पर विचार करने से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों भाषाओं के मौलिक शब्द एक ही हैं, जैसे! घर, पानी, आग, चाचा, मामा, नाना, गांव, बेटा बेटी दूध, दही, रोटी. आटा, छप्पर, घोड़ा, गाय भैंस, खेत आदि। हां दोनों भाषाओं के विद्वान इस भाषा में जानबूझ कर अरबी तुर्की अथवा कठिन संस्कृत शब्दों की भरमार कर दें जैसा कि आज कल देखा जाता है—तो दूसरी बात है।

शब्द रचना की ओर ध्यान देने से भी लिंगभेद, वचनों की बनावट और कारकों का व्यवहार हिन्दी उर्दू में एक ही सा प्रतीत होता है। 'आग' को चाहे संस्कृतज्ञ पुल्लिंगवत व्यवहार

करें पर हिन्दी में वह स्त्रीलिंग ही बोली जाती है। घोड़ा, घर, हाथी मकान, रेल, जहाज इत्यादि शब्दों के लिंग व बहुवचन बनाने की रीतियां जो हिन्दी मे हैं वही उर्दू मे भी दिखाई देती है।

क्रियाओं का रूप भी उर्दू हिन्दी में एक ही सा है। 'खड़ा हुआ होता' 'दंडायमान हुआ होता' आदि 'हुआ होता' कहे बिना तो काम चल नही सकता। कठिन अरबी या संस्कृत शब्दों में भी बिना 'करना' या 'होना' लगाये उन शब्दों को हिन्दी अर्थात् उर्दू अपने घर में घुसने नही देती।

वाक्य विन्यास भी दोनों का एक ही सा है और केवल शब्दों के अदल बदल के अतिरिक्त वाक्य रचना में कोई भी अन्तर नही दिखाई देता। उर्दू में अरबी शब्दों की भरमार रहती है और हिंदी मे संस्कृत शब्दों की। उदाहरण देखिये :—

(उर्दू)—"मुन्दरजा बालानज़ीर मेरी रास्तगोई की शहादत के लिये काफ़ी है।

(हिंदी)—उल्लिखित प्रमाण, मेरे सत्य भाषण की साक्षी के लिये अलम है।

(सरलहिंदी)—ऊपर लिखा हुआ सुबूत मेरी सचाई की गवाही के लिये बस है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उर्दू हिंदी में शब्दभेद के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं है। हां, उर्दू वाले फारसी का अनुकरण कर इजाफत काम में लाते हैं तथा फारसी हरफजार का प्रयोग जो विभक्ति के रूप में है शब्द के पूर्व लगाते हैं जैसे आबेदरिया यहां विभक्ति "का" उड़ा दी गई है। पर हिंदी में भी यह प्रथा है, उसमें भी 'नदीजल' 'कूपजल' कहते हैं; विभक्ति "का" का लोप रहता है।"

अस्तु, सिद्ध है कि हिंदी उर्दू दोनों एक ही भाषा है। इन दोनों मे अन्तर डालनेवाले कठिन हिंदी उर्दू के पक्षपाती लेखक तथा कुछ थोड़े से धर्मान्ध व्यक्ति हैं। एक ओर जैसे हमारे मुसलमान भाई एनुलयकनि, हत्तुलइमकान, भातगुर फुल खयाल आदि शब्दों का प्रयोग कर हिन्दी का रूप बिगाड़ कर रहे हैं और दूसरी ओर वैसे ही हिंदी लेखक "ताम्बूलकर करण्डवाहिनी" "मुखमार्जन वस्त्रखण्ड" आदि शब्दों का प्रयोग कर हिंदी का सौन्दर्य नष्ट कर रहे है। यदि हम राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की उन्नति तथा हिंदू मुसलिम एकता के प्रेमी है तो हम दोनों को अपने-अपने हठधर्म का त्याग कर गले-गले मिलना चाहिए और हिन्दी के शुद्ध सरल रूप को व्यवहार में लाना चाहिये। यदि किसी विशेष आशय को प्रकट करने के लिए हमें सरल हिन्दी के शब्द न मिलते हों तो बोलचाल में अथवा हिंदी उर्दू साहित्य में प्रचलित सभी देशी विदेशी शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। विदेशी भावों को प्रकट करने के लिये विदेशी शब्दों की आवश्यकता पड़ती ही है। बिना विदेशी शब्दो को ग्रहण भाषा की उन्नति हो ही नहीं सकती। आशा है हिन्दू मुसलमान दोनों ही हमारे विनीत निवेदन पर विचार कर सत्य की ओर अग्रसर होंगे।

"राष्ट्र भाषा भवेद्देव 'हिंदी' सर्वाङ्गसुन्दरी।"

मुसलमानों में हिन्दी—प्रेम उत्पन्न करने के उपाय

यह प्रश्न बड़े ही महत्व का है कि मुसलमानों अथवा अन्य धर्म के लोगों में हिन्दी का क्योंकर प्रचार किया जा

सकता है। इस समय दो धर्मों के लोगों के साथ हम लोगों का उठना बठना, रोति, रस्म विशेष है, एक मुसलमान और दूसरे ईसाई। अस्तु इन दोनो में हिन्दी-प्रेम क्यों कर हो इस का उपाय करना महत् आवश्यक है। ईसाई तो हिन्दी को बहुत कुछ अपनाये हुए है पर जैसा कि हम पहिले कह आये हैं मुसलमान अभी तक हिन्दी के कट्टर विरोधी हैं। अतएव हिन्दी के उद्धार के लिये इससे बढ़कर आवश्यक और कोई बात नहीं कि इस देश के छः करोड़ मुसलमानों का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित किया जाय। पर बड़े ही खेद का विषय है कि विद्वानों का ध्यान अभी इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुआ है। हाँ, कुछ लोगों ने इधर ध्यान देना आरम्भ अवश्य कर दिया है। नवम् हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में अध्यापक जहूर बख्श जी ने इसके उपायों के विषय में जो अपनी सम्मति प्रकट की थी वह विशेष विचारणीय है। उसीका सारांश यहां दिया जाता है। उनका विचार है कि मुसलमनों में हिन्दी प्रेम उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि,

(१) उनके धार्म्मिक, सामाजिक तथा साहित्यिक ग्रंथ हिन्दी भाषा मे प्रकाशित किये जायं। यदि ये ग्रंथ मूल सहित प्रकाशित किये जायं नो और भी उत्तम है। उससे मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम तो उत्पन्न होगा ही साथ ही हिन्दी साहित्य की भन्डार-वृद्धि भी होगी तथा हिन्दू भी मुसलमानों के धर्म समाज तथा साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। ये ग्रंथ सस्ते मूल्य में बेचने पड़ेंगे।

(२) मुसलमान धर्म्माचार्यों, सम्राटों, साहित्यिकों और नेताओं के आदर्श चरित्र प्रकाशित किये जायं इससे हिन्दी-

साहित्य के बढ़ने के साथ-साथ हिन्दू मुसलमान दोनों का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।

(३) हिन्दी पत्रों के सम्पादक अपने पत्र के प्रत्येक अंक में एक मुसलमान लेखक का लेख देने का अवश्य प्रयत्न करें इससे मुसलमानो में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न होगा और बहुत से मुसलमान हिन्दी-लेखक उत्पन्न हो जायंगे। मुसलमान लेखकों को पुरस्कार भी मिलना चाहिये और मुसलमान धर्माचार्यों कवियों सम्राटों आदि के लेख भी समय-समय पर प्रकाशित होने चाहयें।

(४) कुछ ऐसे सामयिक पत्र भी निकाले जाने चाहियें जो हिन्दी और उर्दू दोनों ही में रहें इससे हिन्दू उर्दू और मुसलमान हिन्दी सीखने का प्रयत्न करेंगे।

(५) हिन्दी बहुत सरल लिखी जानी चाहिये और उसमें उर्दू फारसी आदि के शब्द स्वतंत्रता पूर्वक लिये जाने चाहिये इसके बिना मुसलमानों में हिन्दी प्रेम होना कठिन है।

(६) नगर में मुसलमानों को हिन्दी की शिक्षा देने के लिये ऐसी पाठशालायें खोली जानी चाहिये जिसमें उन्हें मुफ्त शिक्षा दी जा सके। इससे गरीब मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम उत्पन्न होने में बहुत सहायता मिलेगी।

इसके अतिरिक्त मुसलमान नेताओं से मिलकर तथा उनको समझा कर मुसलमानों मे हिन्दी प्रचार करने के लिये तैयार करना चाहिये। समय समय पर मुसलमानों में हिन्दी प्रचार विषयक पुस्तकें प्रकाशित कर मुफ्त बाटी जानी चाहियें। मुसलमानों में हिन्दी प्रेम उत्पन्न करने के लिये स्थान स्थान पर संस्थाएं स्थापित करनीं चाहियें आदि।

अध्यापक जी ने इस विषय में अपने जो विचार प्रकट किये

हैं वे कितने संगत और आवश्यक हैं यह कहने की आवश्यकता नही। इस समय हिन्दी के उन्नति की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। अस्तु, यह आवश्यक है कि मुसलमानों में भी हिन्दी प्रेम का बीज सुचारु रूप से बोया जाय। जब तक ऐसा न होगा हिन्दी की वास्तविक उन्नति का स्वप्न 'आकाश कुसुम' की भांति ही है।

अन्तिम निवेदन

इस ग्रन्थ के प्रणयन का मुख्य कारण तो है श्रद्धेय गुरु-वर्य श्रीमान पं० राम नारायण मिश्र जी बी० ए० हेड मास्टर हिन्दू स्कूल काशी की आज्ञा का पालन; दूसरे असहयोग आन्दोलन जब देश में आरंभ हुआ, चारो ओर हिन्दू मुसलमानों के एकता की धूम मची, तो हमने भी उस एकता के बंधन में इस ग्रन्थ के द्वारा पूर्व तथा वर्त्तमानकालीन हिंदू मुसलमानों की साहित्यिक एकता का दिग्दर्शन करा कर एक ग्रन्थि दे देना उचित समझा। किन्तु इस ग्रन्थ का हिन्दी साहित्य के इतिहास से संबंध होने के कारण कवियों और उनकी कविताओं के छान बीन मे हमारा अनुमान से बहुत अधिक समय लगा और उससे भी अधिक समय प्रकाशक की उदासीनता से इस पुस्तक के प्रकाशित होने में लगा। इसी भांति देखते-देखते पाच छः वर्ष का समय बीत गया। और अब समय भी कुछ का कुछ हो गया। जहां हिन्दू-मुसलिम एकता की धूम थी वहां हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य की दुन्दुभी बज रही है। खैर, अब भी यह ग्रन्थ समय से बहुत पीछे नही है। यदि इसके द्वारा हिंन्दू मुसलमानों के भाषा सम्बन्धी

वैमनस्य को मिटाने में कुछ भी सहायता मिली तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे ।

प्रूफ रीडरों की असावधानी व प्रेस के भूतों की करतूत से इस ग्रन्थ में एक दो नहीं अनेकानेक अशुद्धियां रह गई हैं जिसके लिए हमें बहुत खेद है, पर लाचारी है। हम विश्वास दिलाते हैं कि दूसरे संस्करण में ये अशुद्धियां दूर कर दी जायंगी ।

अन्त में हम अपने उन सभी मित्रों की कृतज्ञता स्वीकार करते हैं जिन्होंने हमें इस ग्रन्थ के प्रणयन में सहायता दी है अथवा जिनकी कृतियों से हमें सहायता मिली है। श्रीमान पं० अयोध्यासिंहउपाध्याय के हम विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने कृपापूर्वक इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखी है। श्रीमान् पं० रामनारायण मिश्र जी को उनके दो शब्द के लिये धन्यवाद तो सर्वथा अनुचित ही है; कारण उनके गुरोचित उपकारों के लिए हमारा रोम-रोम ऋणी है।

मध्यमेश्वर, काशी ।
सौर २८ फाल्गुन १९८२

विनीत—
अखौरी गंगा प्रसाद सिंह

हिंदी के
मुसलमान कवि

अमीर खुसरो

(संवत् १२६२-१३३१ वि०)

तेरहवीं शताब्दि के आरंभ में अमीर सैफुद्दीन नामक एक सर्दार बलख हजारा से मुगलों के अत्याचार से पीड़ित होकर भारत में भाग आए और एटा के पटियाली नामक गांव में रहने लगे। उस समय दिल्ली का राज-सिंहासन गुलाम वंश के सुलतानों के आधीन था। सौभाग्य से सुलतान शम-शुद्दीन अल्तमश के दर्बार में सैफुद्दीन की पहुंच होगई और वे वहां के एक सर्दार बन गए। यहां इन्होंने नवाब एमादुलमुल्क की पुत्री से विवाह किया जिससे प्रथम पुत्र कुतुबुद्दीन अली शाह, द्वितीय पुत्र हिसामुद्दीन अहमद और तृतीय पुत्र अमीर खुसरो का जन्म सं० १२६२ वि० में पटियाली गांव मे हुआ। इनके पिता ने इनका नाम अबुलहसन रक्खा था, पर खुसरो ही नाम से ये संसार में प्रसिद्ध हैं।

संवत् १२६६ वि० मे अमीर खुसरो अपने मां बाप के साथ दिल्ली गए और आठ वर्ष तक वहां शिक्षा ग्रहण करते रहे। संवत् १३७१ वि० मे इनके पिता की मृत्यु होगई तब ये अपने

नाना एमादुलमुल्क के यहां चले आए। यहां थोड़े दिनों में इन्होंने अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली। खुसरो ने स्वयं अपनी एक पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि वे १२ वर्ष की अवस्था में रुबाइयां कहने लगे थे। वे अपने ही अध्ययन से कवि हुए थे; उनका कोई काव्यगुरु नहीं था। ख्वाजः शम्सुद्दीन ख्वारिज़्मी इनके काव्यगुरु इस कारण कहे जाते हैं कि उन्होंने इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ पंजगज को शुद्ध किया था। इनके धर्मगुरु निज़ामुद्दीन मुहम्मद बदायूनी सुलतानुलमशायख औलिया थे। वे इनके आचार विचार से बड़े प्रसन्न थे और इन्हें 'तुर्क-अल्लाह' के नाम से पुकारते थे।

खुसरो ने पहले पहल मुलतान के सूबेदार मुहम्मद सुलतान की नौकरी की। सं० १२८४ वि० के एक युद्ध में मुग़ल इन्हें पकड़ कर हिरात और बलख़ ले गए। यहां से दो वर्ष के बाद छुटकारा पाकर ये सुलतान के पिता 'ग़यासुद्दीन बलबन' के दरबार में आए और वे शैर पढ़ कर सुनाए जो सुलतान के शोक में बनाए गए थे। बलबन पर इसका बड़ा गहरा असर पड़ा और वे तीन दिन के भीतर ही मर गए, इसके बाद खुसरो दो वर्ष तक अली मिर्ज़ामार के साथ रहे। मिर्ज़ा के लिए इन्होंने 'अस्पनामा' नामक एक ग्रन्थ लिखा सं० १२६५ वि० में ये दिल्ली आए और कैक़ुबाद के दर्बार में रहने लगे। यहां इन्होंने किरानुस्सादैन नामक एक काव्य लिखा। सं० १२६७ में गुलाम वंश का अंत हो जानेपर जलालुद्दीन खिलजी दिल्ली के तख्त का अधिकारी हुआ। इसने इन्हें अमीर की पदवी दी और १२०० तन * वेतन नियत कर दिया।

---

* मुसलमान बादशाहों के समय का एक सिक्का।

संवत् १३०३ वि० में अपने चाचा को मार कर अला-उद्दीन सुल्तान हुआ और उसने इन्हें खुसरुए-शाअरां की पदवी दी और इनका [illegible] १००० तन कर दिया। खुसरो ने इसके नाम पर कई एक पुस्तकें लिखी हैं। संवत् १३२४ वि० में कुतुबुद्दीन मुबारक शाह सुलतान हुआ और उसने खुसरो के कसीदे पर प्रसन्न होकर हाथी के तौल इतना सोना और रत्न पुरस्कार दिया।

संवत् १३२७ वि० में खिलजी वंश का अन्त हो जाने पर पंजाब के गाजी खां दिल्ली के सिंहासन पर गयासुद्दीन तुगलक के नाम से बैठा। खुसरो ने इसके लिए अपनी अंतिम पुस्तक तुगलकनामा लिखा था। इसी के साथ ये बंगाल गए और लखनौती में ठहर गए। संवत् १३३१ वि० में निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु का समाचार पाकर ये उनकी कब्र पर गए और उसी वर्ष कुछही दिनों में उस मजार पर ही इनकी मृत्यु हो गई।

अमीर खुसरो के एक पुत्री और तीन पुत्र थे। इन लोगों के संबंध में कोई वृत्तांत नहीं मिलता।

अमीर खुसरो का स्वभाव बड़ा ही नम्र और मिलनसार था। ये सत्य के पक्ष के लिए अपना प्राण देने तक को तैयार रहते थे। ये अरबी, फारसी, तुर्की, हिंदी और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। इन्होंने कविता की ९९ पुस्तकें लिखी हैं पर कुल २०—२२ पुस्तकें प्राप्य हैं।

(१) मसनवी किरानुस्सादैन (२) मसनवी मतलउलअनवार (३) मसनवी शीरीं व खुसरू (४) मसनवी हश्त बिहिश्त (५) मसनवी खिज्रनामः (६) मसनवी नेह सिपह्र- (७) मसनवी आईने इस्कंदरी (८) मसनवी लैला व

मजनू (९) मसनवी तुग़लक नामा (१०) खज़ायनुलफ़ुतूह (११) इंशाए खुसरो (१२) रसायलुल एजाज़ (१३) अफ़-ज़लु फ़वायद (१४) राहतुलमुज़ाँ (१५) खालिकबारी (१६) जवाहिरुलबह्र (१७) मुकालः (१८) किस्सा चहार दर्वेश (१९) दीवान तुहफतुस्सग्र (२०) दीवान वस्तुल-हयात (२१) दीवान गर्रतुलकमाल (२२) दीवान बकीयः नकीयः।

खुसरो की कविता बडी ही सरस और मनोमुग्धकारिणी है। इनकी कविता को देखकर इन्हें विवश हो कर कवि सिर-मौर कहना पडता है। हिंदी मे इनकी पहेलियां बहुत प्रच-लित हैं। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

पहेलियां

(बूझ)

✓इधर को आवे उधर को जावे। हर हर फेर काट कर खावे।
ठहर रहे जिस दम वह नारी। खुसरो कहे बरे को आरी॥ आरी

पवन चलत वह देह बढ़ावे। जल पीवत वह जीव गंवावे।
है वह प्यारी सुन्दर नार। नार नहीं पर है वह नार॥ आग

✓एक नार जब बन कर आवे। मालिक अपने ऊपर बुलावे।
है वह नारी सबके गौं की। खुसरो नाम लिए तो चौकी॥चौकी

✓आता था जब सबका भाया। बढ़ा हुआ कुछ काम न आया।
खुसरो कह दिया उसका नांव। अर्थ करो नहिं छोड़ो गांव॥दीया

बीसों का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया॥ नाखून

✓नर नारी की जोड़ी दीठी। जब बोले तब लागै मीठी।
एक नहाय एक तापनहारा। चल खुसरो कर कूच नकारा॥नक्कारः

जल जल चलता बसता गांव। बस्ती में ना वाको ठांव।
खुसरू ने दिया वाको नाव। बूझ अरथ नहिं छोड़ो गांव॥ नाव

(२–बिनबूझ)

आना जाना उसका भाए। जिस घर जाए लकड़ी खाए॥आरी
एक पुरुष जब मद पर आय। लाखों नारी संग लपटाय।
जब वह नारी मद पर आय। तब वह नारी नर कहलाय॥आम
एक राजा की अनोखी रानी। नीचे से वह पीवे पानी॥दीयाकी बत्ती
एक नार वह औषध खाए। जिस पर थूके वह मर जाए।
उसका पी जब छाती लाय। अंधा नहि काना हो जाय॥ बंदूक
एक नार कर्तार बनाई। सूहा जोड़ा पहिन के आई।
हाथ लगाए वह शर्माय। या नारी को चतुर बताय ॥बीरबहूटी
एक नार अति चतुर कहावे। मूरख को ना पास बुलावे।
चतुर मरद जो हाथ लगावे। खोल सतर वह आप दिखावे॥पुस्तक
गोरी सुंदर पातली, केसर काले रंग।
ग्यारह देवर छोड़के, चली जेठ के सग॥ अरहर

मुकरियाँ

अति सुन्दर जग चाहै जाको। मै भी देख भुलानी वाको॥
देख रूप भाया जो टोना। ऐ सखि साजन ना सखि सोना॥

हुमक हुमक पकड़े मेरी छाती। हंस हंस कर मै खेल खेलाती॥
चौंक पड़ी जो पायो खड़का। ऐ सखि साजन ना सखि लड़का॥

तन मन धन का है वह मालक। वाने दिया मेरे गोद में बालक॥
वासे निकसत जी को काम। ऐ सखि साजन ना सखि राम॥

नंगे पांव फिरन नहि देत। पांव से मिट्टी लगन नहिं देत॥
पांव का चूमा लेत निपूता। ऐ सखि साजन ना सखि जूता॥

ऊंची अटारी पलंग बिछाया। मैं सोई मेरे ऊपर आया॥
खुल गईं अंखियां भई अनंद। ऐ सखि साजन ना सखि चंद॥

सेज पड़ी मेरी आंखों आया। डाल सेज मोहिं मजा दिखाया॥
किससे कहूँ मजा मैं अपना। ऐ सखि साजन ना सखि सपना॥

अंगों मेरे लिपटा आवे। वाको खेल मोरे मन भावे॥
कर गहि कुच गहि गहे मोरि माला। ऐ सखि साजन ना सखि बाला॥

दो सखुना हिंदी

रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों?	उत्तर–फेरा न था।
अनार क्यों न चक्खा, वजीर क्यों न रक्खा?	,, दाना न था।
गढ़ी क्यों छिनी, रोटी क्यों मांगी?	,, खाई न थी।
राजा क्यों प्यासा, गदहा क्यों उदासा?	,, लोटा न था।
सितार क्यों न बाजा, औरत क्यों न न्हाई?	,, परदा न था।

निसबतें

गोटे और आफताब में क्या निसबत है?		उत्तर—किरन
घोड़े और हरफों में	,,	,,—नुकता
आदमी और गेहूं में	,,	,,— बाल
गहने और दरख्त में	,,	,,— पत्ता
बादशाह और मुर्ग में	,,	,,— ताज

दो सखुना फारसी और हिंदी

१—माशूक रा चे मी बायद कर्द }
हिंदुओं का रब कौन है ? } उत्तर राम ॥१॥

२—कूवते रूह चीस्त, प्यारी को कब देखिए ? सदा ॥२॥

३—दर जहन्नुम चीस्त, कामी को क्या चाहिए ? नार ॥३॥

४—कोह चे मी दारद, मुसाफिर को क्या चाहिए ? संग ॥४॥

५—शिकार बेह चे मी बायद कर्द, }
कूवते मग़ज़ को क्या चाहिए } बादाम ॥ ५ ॥

खालिक बारी से

खालिक बारी सिरजन हार। वाहिद एक बिदा कर्तार ॥
रसूल पैगंबर जान बशिष्ठ। यार दोस्त बोलै जो इष्ट ॥
इस्म अल्लाह खुदा का नांव। गर्मा धूप साया है छांव ॥
राह तरीक़ सबील पहचान। अर्थ तहू का मारग जान ॥
ससि है मह नैयर खुरशैद। काला उजला सियह सफेद ॥
नीला पीला जरद कबूद। ताना बाना तनस्त पूद ॥

---

(१) माशूक़ को क्या करना चाहिए। राम शब्द का फारसी में वशीभूत अर्थ है।

(२) प्राण का क्या बल है ? फारसी में सदा का अर्थ आवाज शब्द है और हिंदी में सर्वदा।

(३) नर्क में क्या है ? नार का अर्थ आग और स्त्री दोनों है।

(४) पर्वत में क्या है ? संग का अर्थ पत्थर और साथ है।

(५) अच्छा शिकार कैसे करना चाहिए ? बदाम का अर्थ फारसी में 'जाल से' है और बादाम एक मेवा है जो दिमाग़ के लिए बड़ा लाभदायक है।

कूवत नैरू जोर बल आन। सारिक दुज़्द चोर है जान॥
मरद मनुस ज़न है इसतिरी। कहत अकाल वबा है मरी॥
दोश काल रात जो गई। इम शब आज रात जो भई॥
तुरा बगुफ्तम मैं तुझ कहिया। कुजाबमां दी तू कत रहिया॥
बेया बेरादर आव रे भाई। बेनशीं मादर बैठ री माई॥

आँख का नुसखा

लोध फिटकिरी मुर्दासंख। हल्दी जीरा एक एक टंक॥
अफ्यून चना भर मिर्चें चार। उरद बराबर थोथा डार॥
पोस्त के पानी पुटलो करे। तुरत पीरा नैनो की हरे॥

सोहाग रात

खुसरो रैन सोहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भए एक रंग॥

गज़ल

जे हाल मिसकी मकुन तग़ाफ़ुल[1] दुराय नैना बनाय बतियां।
कि ताबे हिज्रां न दारम ऐ जां[2] न लेहु काहे लगाय छतियां॥
शबान हिज्रां दराज़ चूं ज़ुल्फ़ बरोज़े वसलत चूं उम्र कोतह[3]
सखी पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां॥
यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम ब बुर्द तसकीं।

---

[१] इस गरीब की दशा को मत भुलाओ।

[२] ऐ प्यारे अब विरह नही सह सकती।

[३] तेरे बालों के समान विरह की रातें बडी और अवस्था के सामान मिलने के दिन छोटे हैं।

[४] एकाएक दोनों जादू भरी आखों ने सैकड़ों बहाने से मेरे धैर्य को छुड़ा दिया।

किसे पड़ी है जो जा सुनावे पिआरे पी को हमारी बतियां ॥
चुशमअः सोजां चु जर्रः हैरां हमेशः गिरियां बइश्क आं मह ।
न नींद नैना न अंग चैना न आप आवें न भेजें पतियां ॥
बहक रोजे वसाल दिलबर कि याद कारा फरेब खुसरो ।
सपीत मन की दुराए राखूं जो जाने पाऊँ पिया की घतियां ।

विहाग यत

बहुत रही बाबुल घर दुलहन चल तोरे पीने बुलाई ।
बहुत खेल खेली सखियन सो अत करी लरकाई ॥
न्हाय धोय के बस्तर पहिरे सभही सिगार बनाई ।
बिदा करन को कुटुम्ब सब आये सगरे लोग लुगाई ।
चार कहार मिल डोली उठाये संग पुरोहित औ चले नाई ।
चले ही बनेगी होत कहा है नैनन नीर बहाई ॥
अन्त बिदा होय चलि हैं दुलहन काहू की कुछ न बसाई ।
मौज खुसी सब देखत रहि गये माता पिता औ भाई ॥
मोरि कौन सग लगन धराई धन धन तोरि है खुदाई ।
बिन मांगे मेरि मगनी जो दीन्ही सजनी पर घर की जो ठहराई ॥
अंगुरी पकरि मोरा पहुँचा भो पकरे कंगना अगूठी पहराई ।
नौशा के सग कर मोहि दीन्ही लाज सकोच मिटाई ।
सोना भो दीन्हा रूपा भी दीन्हा बाबुल दिल दरियाई ।
गहेल गहली डालति आंगन में अचानक पकर बैठाई ॥
बैठत मल मल कपरे पहनाए केसर तिलक लगाई ।

---

[५] उस प्यारे के प्रेम मे दीप की तरह जलती हुई । जर्रे (धूल के कण जो सूर्य की किरण मे चमकते और घूमते फिरते दिखलाते हैं) की तरह से घबड़ाती हुई सर्वदा रोती हुई ।

(६) ऐ खुसरो, प्यारे से मिलने के दिन मुझे धोखा दिया गया ।

गुन नहिं एक औगुन बहुतेरे कैसे नौशा रिझाई ।
खुसरो चले ससुरारी सजनी संग नहीं कोई जाई ॥

मंझन

(संवत् १६५०-१७२० वि०)

कवि मंझन के जन्मकाल, मरण काल, वंश आदि का कुछ पता नहीं चलता। हमने इन का केवल मधुमालती नामक एक ग्रंथ देखा है। इसकी हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है। बाबू जगन्मोहन वर्मा के मतानुसार इस ग्रन्थ का निर्माण काल लगभग संवत १६७५ के है। इसका वे कोई विशेष कारण नहीं बताते केवल कविता की भाषा और ढंग को ही देखकर वे ऐसा अनुमान करते हैं। इस निर्णय के अनुसार यदि २५ वर्ष पहले उनका जन्म काल (क्योंकि प्रौढ़ावस्था में ही उन्होंने कविता शुरू की होगी) और ४०-५० वर्ष बाद मरण काल मान लिया जाय, तो अनुमानतः सं० १६५० से १७२० वि० तक उनका जीवन काल कहा जा सकता है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं। ये साधारण श्रेणी के कवि जान पड़ते हैं।

*नख शिख

निहकलंक ससि दुइज लिलारा। नव खंड तीन भुवन उजियारा॥
बदन पसेव बूंद चहुँपासा। कचपचियैं जनु चांद गिरासा॥
मृगमद तिलक ताहि पर धरा। जानहि चांद राहु बस परा॥
गयो मयंक स्वर्ग मह लाजा। सो लिलार कामिनि पहं छाजा॥
सहस कला देखा उजियारा। जग ऊपर जगमगत लिलारा॥

* मंझन की कविता जैसी मूल पुस्तक में थी वैसोही उतार ली गई है उसका संशोधन नहीं किया गया है।

त्रिमयंक ऊपर निसिरती, बनो अहे किस रीति।
जानहि ससि औ निसिसेवन, भई सुरत बिपरीत ॥१॥
काम कमान रहस कर लहै। बरस्यो तोर नोक दुइ कहै॥
बि.ग रम्म सेवन घर मज़ उदारी। सो बनाय मद भौंह सवांरी॥
भौंह निवास सोह कस नारी। मदन धनुष दे पंच उतारी॥
जो कछु चरहि भौंह बरनारी। अंदर धनुष के पंच उतारी॥
तेहिं धनु मदन त्रिभुवन जीती। बहुरि उतारि नारि कर देती॥
जीति तिलोक निवासी भौंह यह, रहा न जगत जुझार॥
देखत जाइ हइ सिर भरो, तिन्ह को जीते पार॥ २॥
सूती सेज स्याम औ राती। जागत हती बहुरि नहिं जाती॥
चपल बिसाल तरकहि अति बांकी। खजन पलक पंख से ढांकी॥
जन पारद अगनित जिव हरई। बुधही ढांक सीस तर धरई॥
दोऊ नैन जिन जी की व्याधा। देखत उतहि मरे की साधा॥
संमुख में केलि जिन करही। की जन दुई खंजन उड़ि लरही॥
आजज एक का बरनौ, बरनत बरन न जाय।
सारंग सारंग की नर वर, भई पौदही आय॥ ३॥
अति सुरंग रस भरे अमोला।कपोल सोभित मुख मध्य कपोला॥
अति नीकी कछु उक्ति न आई। मध्य कपाल बरनो केहि लाई॥
नहिं जानो धन कोन तप सारा। जो बरसहिं यहि बिधि ससारा॥
अस कपोल विधि (श्री) सिरी सोहई। कहि न जाय कछु उपमा लाई॥
मानुष देहि बपुरा केहि माही। देवना देख कपाल लजाहीं॥
सुर नर नाग मुनि गन्धर्ब, काहू रह्यो न ज्ञान।
देख करोज़ सोहागिन, खस्यो महेश को ध्यान॥ ४॥
तिल जो परा मुख ऊपर आई। बरनउ कौन सा उपमा लाई॥
जाय कुंअर चख रूप लोभानी। हलकी भरि नहि आई, आनी॥
तिल न होय यह नैन की छाया। जासो साम रूप मुख पाया॥

अति निरमल मुख मुकुर सुरेखा। चख छाया तामहं तिल देखा ॥
श्याम कुंअर लौ ऐन पौरै मुख निरमल पर तिल होय परै ॥
अति सरूप मुख निर्मल, मुकुर समान परान।
तामह चख तिल की छाया दीसै तिल अनुमान ॥

ऋतु बर्णन

कुआर

नवरत पाख कुआर जनावा। रुबे सदेस समीर सुनावा ॥
सरद रैन ससि सीर अकासा। सबकहं परब मोहि बनवासा ॥
नसहै निसि सारस सिर बोली। सुरंग आय संसार मगोली ॥
दरसों खज घटा जग पानी। भयो थाह जल धरा तवानी ॥
अउर अपर पख परब उछाहा। तरुनी जग जाने रितु लाहा ॥
सखी करत मोहि बिरह दुःख, बकत न आवे मुख्ख।
और तेहि पर लहै जो वहि, काहि कहूं सो दुःख ॥

कार्तिक

कातिक सरद सतावै वारा। स्वाती बुन्द बरखौ विख धारा।
बिकसहि कमल पात ते वाला। जेहि कुमुदिनि सिर ससि उजियाला॥
सरद रैन सीतल तेहि भावै। जो प्रीतम कंठ लागि बिहावै ॥
मोहि तन बिरह अगिन परचारा। सरद चांद मोहि सेज अंगारा ॥
ते बरसहि एहि दिवस अमोला। जेहि सखि सेज रमन मिठ बोला॥
सरद रैन तेहि सीतल, जेहि प्रिय कंठ निवास।
सब कह परब देवाली, मोकह सखि बनवास ॥

कबीर साहेब

(सं० १४५५-१५५२ वि०)

महात्मा कबीरदास का नाम शायद ही कोई युक्तप्रांतीय हो जो न जानता हो। उनके भजन मंदिरों और सत्संग के अवसरों पर गाये जाते हैं और साखियां प्रायः कहावतों का काम देती हैं।

कबीर साहैब एक पंथ के प्रवर्तक थे। जिसे कबीरपंथ कहते हैं। कबीरपंथ में अधिकांश नीच जाति के हिंदू हैं। उच्च वंश के हिंदू नाम मात्र को हैं। इनकी संख्या मध्य प्रदेश, बिहार, युक्तप्रान्त, गुजरात और काठियावाड़ में अधिक है। पंजाब, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास आदि प्रान्तों में भी थोड़ी बहुत संख्या में ये लोग पाए जाते हैं। कबीर साहैब के बारह शिष्य थे, अस्तु, इन्हीं शिष्यों के नाम से इस पंथ की १२ शाखाएं हो गई हैं जिनके नाम ये हैं:—(१) श्रुत गोपाल-दास, (२) भाड़गूदास, (३) नारायनदास, (४) चूड़ामणि दास, (५) जग्गूदास, (६) जीवनदास (७) कमाल (८) टाकशाली (९) ज्ञानी (१०) साहेब दास (११) नित्यानन्द और (१२) कमालदास। यद्यपि कबीर पंथ की १२ शाखाएं हैं पर इसके मानने वाले कुल लगभग साढ़े आठ लाख हैं। कबीरपंथी गृहस्थों की रहन सहन हिंदुओं के समान ही है, पर कबीरपंथी साधु अपने को सब प्रकार से हिंदू समाज से पृथक रखने की चेष्टा करते हैं, यद्यपि सभी प्रकार से वे अपने को अलग नहीं रख सके हैं। इनका अपर हिंदू सम्प्रदायों से कुछ वैमनस्य और द्वेष रहता है।

कबीर साहेब कौन थे, उनका जन्मस्थान कहां था, वे किस समय उत्पन्न हुए, उनका नाम क्या था, बचपन में वे कौन धर्मावलम्बी थे, किस दशा में थे, उनका विवाह हुआ था या वे अविवाहित थे, और कितने समय तक कहां रहे आदि बातों में बड़ा मतभेद है। कबीर साहेब की जीवनी लिखने वाले अपना भिन्न भिन्न मत देते हैं उनमें से कौन सच्च है कौन गलत है इसका निर्णय करना सहज नहीं है। अस्तु, बहुसंख्यक विद्वानों ने जिन बातों को कबीर साहेब के विषय में प्रामाणिक माना है उन्हें ही हम नीचे देते हैं।

कबीर साहेब का जन्म पवित्र काशीपुरी में हुआ था और यहीं रह कर उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी बिताई थी। यह बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की है—

"काशी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चेताये।"

(कबीर शब्दावली द्वितीय भाग)

"सकल जनम शिवपुरी गवांया, मरत बार मगहर उठि धाया।"

(आदि ग्रंथ)

कबीर साहेब ने अपने को जोलाहा कहा है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

तू बाम्हन मै काशी का जुलहा, बूझहु मोर गियाना।

(आदि ग्रंथ)

इससे अब उनके जाति निर्णय में कोई संदेह नहीं रह जाता। परंतु वे जन्म के जुलाहे नहीं थे यह कहावतों से मालूम होता है।

कबीर साहेब के जन्म के विषय में कहा जाता है कि

१४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को एक ब्राह्मण की विधवा कन्या के पेट से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे उसने लोक लज्जा और भय के कारण लहरतारा तालाब (काशी) के किनारे फेंक दिया। संयोग से उसी दिन नीरू जुलाहा अपनी स्त्री का गौना कर घर को लौट रहा था। उसने तालाब पर से उस अनाथ बच्चे को उठा लाकर पाला। पीछे यही बालक कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कबीर साहेब बाल्यकाल से बड़े धर्मपरायण और उपदेश निरत थे। जब उनको कुछ सुध बुध हो गई तो वे तिलक इत्यादि लगा कर राम नाम जपने लगे। एक दिन किसी हिंदू ने इनसे कहा कि "तुम निगुरे हो, इसलिए जब तक तुम कोई गुरु न कर लोगे, उस समय तक तिलक मुद्रा देने अथवा राम नाम जपने से पूरे फल की प्राप्ति न होगी।" कबीर साहेब पर इस कहने का बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्हें गुरु करने की आवश्यकता समझ पड़ी। उन दिनों काशी में स्वामी रामानंद की बड़ी प्रसिद्धि थी। कबीर साहेब ने उन्हें ही गुरु करने का निश्चय किया। एक दिन अवसर पाकर उन्होंने उनसे अपना यह मन्तव्य प्रकट किया किंतु उन्होंने मुसलमान होने के कारण उन्हें अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। स्वामी रामानंद शेष रात्रि में गंगा स्नान के लिए मणिकर्णिका घाट पर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहेब घाट की सीढ़ियों पर जाकर पड़ रहे। जब स्वामी जी आए तो सीढ़ियों पर से उतरते समय उनका पांव कबीर साहेब पर पड़ा, वे कुलबुलाए, स्वामी जी ने जाना मनुष्य के ऊपर पांव पड़ा, इसलिए वे बोल उठे 'राम! राम।' कबीर साहेब ने इसी 'राम' शब्द को मंत्र स्वरूप ग्रहण किया,

और उसी दिन से काशी में अपने को स्वामी रामानन्द का शिष्य प्रकट किया।

कहा जाता है कि उनके माता पिता और कुछ लोगों को वंश मर्यादा प्रतिकूल कबीर साहेब की यह क्रिया अच्छी नही लगी इसलिए उन लोगो ने जाकर स्वामी जी को उलाहना दिया। स्वामी जी ने उनको बुलवा कर पूछा—"कबीर, हमने तुझे मंत्र कब दिया? कबीर साहेब ने कहा—"और लोग तो कान मे मंत्र देते हैं परंतु आपने तो सरपर पांव रखकर मुझे रामनाम का उपदेश दिया।" स्वामी जी को बात याद आगई, उठकर हृदय से लगा लिया और कहा, निःसंदेह तू इसका पात्र है। गुरु शिष्य का यह भाव देखकर लोगों को फिर और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

कबीर साहेब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की है—

"हम घर सूतत नहीं नित ताना।"

कबीर साहब ने विवाह किया था या नहीं इस विषय में भी बड़ा मत भेद है। कबीर पंथ के विद्वान कहते हैं कि लोई नाम की एक स्त्री उनके साथ आजन्म रही परंतु उससे उन्होंने विवाह नही किया था। इसी प्रकार कमाल उनके पुत्र और कमाली उनकी पुत्री के विषय में भी वे लोग विचित्र बातें कहते हैं। उनका कहना है कि ये दोनों दूसरे की संतानें थीं जो मृत्यु के कारण फेंक दी गई थीं, किंतु कबीर साहेब ने उनको पुनः जिलाया और पाला, इसी लिए दोनों उनकी संतानें कहलाईं। ये बातें कदाचित लोग इस कारण कहते हैं कि कबीर

साहेब ने स्त्री संग को बुरा कहा है, किन्तु एक स्थान पर स्वयं अपना विवाह होना स्वीकार करते हैं, यथा—

"नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं विचार।
जबजाना तब परिहरी, नारी बड़ा बिकार॥"

कबीर साहेब के विबाह के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक दिन कबीर साहेब घूमते घामते गंगा के तीर पर एक वैरागी के स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक २० वर्ष की युवती ने आप का स्वागत किया। यह निर्जन स्थान था, परन्तु कुछ काल ही में वहां कुछ साधु और आए। युवती ने साधुओं को अतिथि समझा और उनका शिष्टाचार करना चाहा। अतएव वह एक पात्र में दूध लाई, साधुओं ने इस दूध को सात पनवाड़ों में बांटा, पांच उन लोगों ने स्वयं लिया, एक कबीर साहेब को और एक युवती को दिया। कबीर साहेब ने अपना भाग लेकर पृथ्वी पर रख दिया, इसलिए युवती ने कुछ संकोच के साथ पूछा, " क्यों, आप ने अपना दूध धरती पर क्यों रख दिया, आप भी और साधुओं की भांति उसे कृपा करके अंगीकार कीजिए।" कबीर साहेब ने कहा-"देखो गंगा पारसे एक साधु और आ रहा है, मैंने उसी के लिए इस दूध को रख छोड़ा है। युवती कबीर साहेब की यह सज्जनता देख कर मुग्ध हो गई और उसी समय उनके साथ उनके घर चली आई। बाद में इसी के साथ कबीर साहब का विवाह हुआ। इसका नाम लोई था यह उस स्थान के बनखंडी वैरागी की प्रतिपालिता कन्या थी। इसे वैरागी ने अचानक,एक दिन गंगा के तीर पर पड़ा पाया था। कमाली और कमाल इसी की संतान थीं।

कबीर साहेब बड़े ही सुशील और सदाचारी थे। एक

दिन की बात है कि उनके यहां बीस पचीस भूखे फकीर आये उस दिन उनके पास कुछ खाने को नहीं था इसलिए वे बहुत घबराये। लोई ने कहा–यदि आज्ञा हो तो मै एक साहूकार से कुछ रुपये ले ऊं। उन्होंने कहा–"कैसे !" स्त्री ने कहा "वह मुझ पर मोहित है, मैं पहुंची नहीं कि उसने रुपया दिया नहीं !" कबीर साहेब ने कहा–"किसी तरह काम चलना चाहिए।" लोई साहूकार के बेटे के पास पहुँची, रुपया लाई, और रात में मिलने का वादा कर आई। दिन खाने खिलाने में बीता, रात हुई; सब ओर अँधेरा छा गया, झड़ बांध कर मेह बरसने लगा, रह रह कर हवा के झोंके जी कंपाने लगे। किन्तु कबीर साहब को चैन न थी, लोई ने उनसे पहले ही सब बातें कह दी थीं। वे सोचते थे कि जिसकी बात गई उसका सब गया, इसलिये पानी और हवा से न डरे, कम्मल ओढ़कर उन्होने स्त्री को कन्धे पर बिठा लिया और वे साहूकार के घर पहुँचे। साहूकारका लड़का तड़प रहा था। उसको आया देख वह खिल उठा, किंतु उसने देखा कि न तो उसके पांव कीचड़ से भरे हैं और न कपड़ा भींगा है, तो वह चकित हो गया और बोला–"तुम कैसे आई हो ?" लोई ने कहा–"मेरे पति मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर लाए हैं।" यह सुन साहूकार के लड़के के जी में बिजली कौंध गई, अंधियारा उजाले के सामने न ठहर सका, वह लोई के पावों पर गिर पड़ा और बोला, "आप मेरी मां हैं। कबीर साहब ने मेरी आंख खोलने के लिए ही इस कठिनाई का सामना किया है। इतना कह कर वह घर के बाहर आया और कबीर साहब के पावों से लिपट गया और उसी दिन से उनका सच्चा सेवक बन गया।

एक दिन कबीर साहब ने अपनी स्त्री के साथ एक थान

कपड़ा बिन कर तैयार किया और बेचने के लिए उसे लेकर घर से बाहर निकले। कुछ ही दूर आगे बढ़े थे कि एक साधू ने कहा—बाबा कुछ दे। कबीर साहेब ने आधा थान फाड़ दिया। उसने कहा बाबा इतने में मेरा काम न चलेगा। कबीर साहेब ने दूसरा आधा भी उसे दे दिया और आप प्रसन्न बदन घर लौट आये।

कबीर साहेब के जीवन चरित्र में ऐसी बहुत सी कथाएं हैं जिनसे उनकी सच्चरित्रता प्रकट होती है।

कबीर साहेब पढ़े लिखे नहीं थे। वे सत्संगी थे। सत्संग से ही इन्होने हिंदू धर्म की गूढ़ गूढ़ बातें जान ली थीं उनके हृदय में हिंदू मुसलमान किसी के लिए द्वेष न था वे सत्य के बड़े पक्षपाती थे जहां उन्हें सत्य के विरुद्ध कुछ दिखाई पड़ा, वहां उन्होने उसका खंडन करने में जरा भी हिचकिचाहट नही दिखाई।

कबीर साहेब ने अपना अधिकार हिंदू मुसलमान दोनों पर जमाया। आज कल भी हिंदू मुसलमान दोनों प्रकार के कबीर पंथी मिलते हैं। परन्तु सर्व साधारण हिंदू और मुसलमान दोनों ही का कबीर मत से वैर होगया। हिंदू धर्म के नेता एक अहिंदू के मुख से हिंदू धर्म का प्रचार देख कर भड़के और मुसलमान कबीर साहब के हिंदू आचार्य का शिष्य होने तथा हिंदू धर्म का प्रचार करने के कारण कई विरोधी हो गये। इस विरोध के कारण उनको बड़ी बड़ी कठिनाइयां भोगनी पड़ीं। परन्तु उनके हृदय में जो सत्य का दीपक जल रहा था वह किसी के बुझाये न बुझा।

कबीर साहेब ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। वे साखी और भजन बनाकर कहा करते थे और उनके चेले

उसे कंठस्थ कर लेते थे, पीछे से वह सब सग्रह कर लिया गया। कबीर पंथ के अधिकांश उत्तम उत्तम ग्रन्थ उनके शिष्यों के रचे हुए कहे जाते हैं।

"खास ग्रंथ" में निम्न लिखित पुस्तकें हैं।

(१) सुख निधान (२) गोरखनाथ की गोष्ठी (३) कबीर पांजी (४) बलख की रमैनी (५) आनंद राम सागर (६) रामानंद की गोष्ठी (७) शब्दावली (८) मंगल (९) बसंत (१०) होली (११) रेखता (१२) झूलन (१३) कहरा (१४) हिंदोल (१५) बारहमासा (१६) चांचर (१७) चौतीसी (१८) अलिफनामा (१९) रमैनी (२०) साखी (२१) बीजक।

कबीर पथियों में बीजक का बड़ा आदर है। बीजक दो हैं—एक तो बड़ा, जो स्वयं कबीर साहेब का काशीराज से कहा हुआ बतलाया जाता है और दूसरे बीजक को कबीर के एक शिष्य भग्गूदास ने संग्रह किया है, दोनों में बहुत कम अंतर है।

कबीर साहेब एकेश्वरवादी थे। बहुदेव वाद, कर्म्मकाण्ड, व्रत उपवास, तीर्थ यात्रा, मूर्तिपूजन आदि के कट्टर विरोधी थे। कबीर साहेबकी हिंदू मुसलमानों को एक करने की चेष्टा बराबर रही है। ऐसा करने के लिए उन्हें एक ऐसे धर्म की नीव डालने की आवश्यकता जान पड़ी जिसे दोनों धर्म के लोग असंकुचित भावसे स्वीकार कर सकें। इसके लिये उन्हें दो बातों की आवश्यकता दिखलाई पड़ी एक तो इस बात की कि सब लोग उनको एक बहुत बड़ा पैगंबर या अवतार समझें जिससे उनकी बातों का प्रभाव पड़े। दूसरे इस बात

की कि वे उन धर्म्मपुस्तकों, धर्मनेताओं और धर्म्म याचक की ओरसे उन लोगो के हृदये में अश्रद्धा, अविश्वास और घृणा उत्पन्न करें जिनके शासन में उस काल के लोग थे, क्योंकि बिना ऐसा हुए उनके उद्देश्य के सफल होने की संभावना नहीं थी।

अस्तु, प्रथम बात पर दृष्टि रख कर अवतार वाद का विरोधी होने पर भी कबीर साहेब ने अपने को अवतार और सत्यलोक बासी प्रभु का दूत बतलाया है और कहा है कि जिस पद पर मैं पहुँचा हूं आज तक कोई वहां नहीं पहुंचा। उन्होंने यह दावा भीं किया है कि केवल हमारी बात मानने से मनुष्य इस भव फंद से छूट सकता है और मुक्ति पा सकता है, अन्यथा नहीं।

यथा—

काशी में हम प्रकट भये हैं रामानंद चेताये।
समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आये।

बीजक

जो कोई होई सत्यका किनका सो हमको पतियाई।
और न मिलै कोटिकर थाकै बहुरि काल घर जाई॥

बीजक

कहत कबीर पुकारिकै सबका उहै हवाल।
कहा हमर मानै नहीं किमि छूटै भ्रमजाल॥

दुसरी बात पर दृष्टि रख कर उन्होंने मुसलमान और हिंदू धर्मके ग्रन्थोकी निंदा की, उन्हें धोखा देने वाला बतलाया और कहा कि माया अथवा निरंजन ने उनकी रचना केवल संसार के लोगोंको भ्रममें डालने के लिये कराई। यथा—

योग यज्ञ जप संजमा तीरथ व्रत दाना।
नवधा वेद किताब है झूठे का बाना॥

बीजक—

हिंदू मुसलमान दो दीन सरहद बने वेद कत्तेब परपंचग जी।

ज्ञान गुदड़ी।

चार वेद षट शास्त्रऊ औदश अष्ट पुरान।
आशा दै जग बाँधिया तीनों लोक भुलान॥

बीजक॥

ब्रह्मा विष्णु महेसर कहिए इन सिर लागी काई।
इनही भरोसे मत कोउ रहियो इनहू मुक्ति न पाई।

चार वेद ब्रह्मा निज ठाना। युक्ति क मर्म उनहु नहिं जाना॥
हबीबी और नबी के काया। जितने अमल सो सबै हराया॥

लोगों का विचार है कि मगहर* में प्राण त्याग करने से मुक्ति नहीं मिलती। भला सत्यान्वेषक कबीर इस बात को कैसे मान सकते थे। वे संवत् १५४९ में मगहर चले गए और वहीं संवत् १५५२ की अगहन सुदी एकादशी को परमधाम पहुँचे।

कबीर साहेब की कविता में बड़ी शिक्षा भरी है। एक एक पद से उनकी सत्य निष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने जो कुछ कहा है प्रायः सभी एक से एक बढ़ कर है। उनकी कुछ साखियां और भजन हम नीचे देते हैं।

---

* मगहर गोरखपुर जिले में एक छोटा सा ग्राम है जिसमें अब तक कबीर साहेब की समाधि है। कबीर पंथके अनुयायी यदि कुछ मुसलमान मिलते हैं तो यहीं मिलते हैं। यहां वर्षमें एक बार साधारण मेला होता है।

साखी

अछै पुरुष इक पेड़ है निरँजन वाकी डार।
तिर देवा साखा भये पात भया संसार॥ १॥

देही माहिं बिदेह है, साहेब सुरति स्वरूप।
अनँत लोक में रमि रहा जाके रंग न रूप॥ २॥

चार भुजा के भजन में भूलि परे सब संत।
कविरा सुमिरै तासुको जाके भुजा अनंत॥ ३॥

सोई मेरा एक तू और न दूजा कोइ।
जो साहेब दूजा कहै दूजा कुलका होइ॥ ४॥

साहेब सो सब होत है बंदे से कछु नाहिं।
राई सो पर्बत करे पर्वत राई माहिं॥ ५॥

जो कुछ किया सो तुम किया मैं कछु कीया नाहिं।
कहो कहीं जौ मैं किया तुम ही थे मुझ माहिं॥ ६॥

जा कारन जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहिं।
परदा दीया भरम का ताते सूझै नाहिं॥ ७॥

ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक मे आगि।
तेरा साईं तुज्झ में जागि सकै तो जागि॥ ८॥

जंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो जगकोय।
सार शब्द जाने बिना कागा हंस न होय॥ ९॥

आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह।
परसत हो कंचन भया छूटा बंधन मोह॥ १०॥

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी है गई लाल॥ ११॥

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात।
सो गूँगा गुड़ खाइके कहै कौन मुख स्वाद ॥ १२ ॥

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गाहि रहे थोथा देइ उड़ाय ॥ १३ ॥

साधु कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥ १४ ॥

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारनै साधुन धरा सरीर ॥ १५ ॥

संतन छोड़ै संतई कोटिक मिलै असंत।
मलया भुवँगहि बेधिया सीतलता न तजंत ॥ १६ ॥

चादन की कुटकी भली नहि बबूल लखराव।
साधन की झुमड़ी भली ना साकट को गांव ॥ १७ ॥

जब लगि नाता जगत का तब लगि भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजै भक्त कहावै सोय ॥ १८ ॥

कामी क्रोधी लालची इनते भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय ॥ १९ ॥

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले निःकामी निज देव ॥ २० ॥

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुई धरै तब पैठे घर माहिं ॥ २१ ॥

लगी लगन छूटे नहीं जीभ चोच जरि जाय।
मीठा कहा अंगार में जाहि चकोर चबाय ॥ २२ ॥

कबिरा प्याला प्रेम का अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रम रहा और अमल क्या खाय ॥ २३ ॥

नैनो की कर कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के पियको लिया रिझाय॥ २४॥

अगिन आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस महा कठिन व्योहार॥ २५॥

दुख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे दुख काहे को होय॥ २६॥

माला फेरत जुग गया, फिरा न मनका फेर।
करका मनका डारि दे मनका मनका फेर॥ २७॥

बिरह कमण्डल कर लिये बैरागी दो नैन।
मागैं दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन॥ २८॥

बिरह बान जिन लागिया औषध लगत न ताहि।
सुसुक सुसुक मरि मरि जिये उठै कराहि कराहि॥२९॥

क्या मुख लै बिनती करौं लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करौं कैसे भावों तोहि॥ ३०॥

अवगुन मेरे बाप जी बकस गरीब नेवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिता को लाज॥ ३१॥

साहेब तुम न बिसारियो लाख लोग लगि जाहि।
हमसे तुमरे बहुत हैं तुम से हमरे नाहि॥ ३२॥

अमृत केरी पूरिया बहु विधि लीन्हे छोरि।
आप सरीखा जो मिला ताहि पियाऊँ घोरि॥ ३३॥

ऐसा कोई ना मिला जासे रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आग॥ ३४॥

जिन ढूंढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा रहा किनारे बैठि॥ ३५॥

एक सामाना सकल में सकल सामाना ताहिं।
कविर समाना बूझ में तहां दूसरा नाहिं॥ ३६॥

सत्त नाम कड़ुआ लगै मीठा लागै दाम।
दुविधा में दोऊ गए माया मिली न राम॥ ३७॥

कथनी मीठी खांड़ सी करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करै विष से अमृत होय॥ ३८॥

कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल उतरै भव जल पार॥ ३९॥

तीर तुवक से जो लड़ै सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै सूर कहावै सोय॥ ४०॥

पतिबरता पति को भजै पति पर धर विश्वास।
आन दिशा चितवै नहीं सदा पीव की आस॥ ४१॥

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय॥ ४२॥

यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै तौ भी सस्ता जान॥ ४३।

बहे बहाये जात थे लोक वेद के साथ।
पैड़ा में सत गुरु मिले दीपक दीन्हा हाथ॥ ४४॥

ऐसा कोई ना मिला सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपे मिरग ज्यों सुने बधिक का गीत॥ ४५॥

सत गुरु साँचा सूरमा नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई भीतर चकनाचूर॥ ४६॥

सुख के माथे सिल परै (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की पल पल नाम रटाय॥ ४७॥

लेने को सत नाम है देने को अनदान।
तरने को आधीनता बूड़न को अभिमान॥ ४८

कबिरा संगत साधु की हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की आठो पहर उपाधि॥ ४९॥

कबिरा गर्व न कीजिये काल गहे कर केस।
ना जानौ कित मारिहै क्या घर क्या परदेस॥ ५०॥

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देख कर भये कबीर उदास॥ ५१॥

झूठे सुख को सुख कहै मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद॥ ५२॥

पानी केरा बुद बुदा अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगी ज्यों तारा परभात॥ ५३॥

रात गवांई सोय कर दिवस गवांयो खाय।
हीरा जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय॥ ५४॥

आछे दिन पाछे गए गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै चिड़िया चुग गई खेत॥ ५५॥

काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी बहुरि करोगे कब्ब॥ ५६॥

कबीर नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखौ आय॥ ५७॥

माली आवत देखि कै कलियां करै पुकार।
फूली फूली चुन लिए कालिह हमारी वार॥ ५८॥

दसों द्वार का पीजरा तामें पंछी पौन।
रहिबे को आश्चर्य है गए अचंभा कौन॥ ५९॥

जो तो को कांटा बुवै ताहि बोव तू फूल ।
तोहिं फूल को फूल है वाको है तिरसूल ॥ ६० ॥

दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वास सो लोह भस्म हो जाय ॥ ६१ ॥

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिइये कोय ।
आप ठगा सुख होत है और ठगे दुख होय ॥ ६२ ॥

या दुनिया में आइ के छाड़ि देइ तू ऐंठ ।
लेना होइ सो लेइ ले उठी जात है पैंठ ॥ ६३ ॥

ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै आपौ सीतल होय ॥ ६४ ॥

हस्ती चढ़िये ज्ञान की सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है भूसन दे झख मारि ॥ ६५ ॥

मांगन मरन समान है मति कोई मांगो भीख ।
मांगन ते मरना भला यह सतगुरु की सीख ॥ ६६ ॥

सकल दुरमती दूर करि आछो जन्म बनाव ।
काग गमन गति छांड़ि दे हंस गमन गति आव ॥६७॥

करता था तो क्यों रहा अब करि क्यों पछताय ।
बोवे पेड़ बबूल का आम कहां ते खाय ॥ ६८ ॥

मन मथुरा दिल द्वारका काया कासी जान ।
दस द्वारेका पीजरा तामें जोति पिछान ॥ ६९ ॥

पूजा सेवा नेम व्रत गुड़ियन का सा खेल ।
जब लग पिउ परसै नहीं तब लग संसय मेल ॥७०॥

तीरथ चाले दुइ जना चित चचल मन चोर ।
एको पार न उतरिया मन दस लाये और ॥ ७१ ॥

न्हाये धोये क्या भया जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जलमे रहै धोये बास न जाय ॥ ७२ ॥
पंडित और मसालची दोनो सूझे नाहिं।
औरन को करे चाँदना आप अँधेरे माहि ॥ ७३ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोइ।
एकै अच्छर प्रेमका पढ़ै सो पंडित होय ॥ ७४ ॥
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहि जाय।
मान बढ़े मुनिवर गये मान सबन को खाय ॥ ७५ ॥
प्रभुता को सब कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजैप्रभुता चेरी होय ॥ ७६ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहं संसय तह सोग।
कह कबार कैसे मिटै चारो दीरघ रोग ॥ ७७ ॥
कबिरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करैं जगत गुरू वह दास ॥ ७८ ॥
निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय ॥ ७९ ॥
छाया माया एकसी बिरला जानै कोय।
भगता के पाछे फिरै सनमुख भागै सोय ॥ ८० ॥
सील छिमा जब ऊपजै अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं लाख कथै जो कोय ॥ ८१ ॥
छिमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो जो भृगु मारी लात ॥ ८२ ॥
जहाँ दया तहं धर्म है जहाँ लोभ तहं पाप।
जहाँ क्रोध तँह काल है जहाँ छिमा तहँ आप ॥ ८३ ॥

ऋतु बसंत जाचक भयो हरषि दियो द्रुम पात ।
ताते नव पल्लव भयो दियो वृथा नहिं जात ॥८४॥

जो जल बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम ।
दोऊ हाथ उलीचिये यहि सज्जन को काम ॥ ८५ ॥

सब ते लघुताई भली लघुता ते सब होय ।
जस दुतिया को चंद्रमा सीस नवै सब कोय ॥८६॥

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजौ आपना, मुझसा बुरा न होय ॥८७॥

मेरा मुझसे कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मोर ॥ ८८ ॥

दया कौन पर कीजिए का पर निर्दय होय ।
साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय ॥ ८९ ॥

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे सांच है ताके हिरदे आप ॥ ९० ॥

बिना वसीले चाकरी बिना बुद्धि की देह ।
बिना ज्ञानका जोगना फिरै लगाये खेह ॥९१॥

मन के मते न चालिये मनके मते अनेक ।
जो मन पर असवार है सो साधू कोइ एक ॥९२॥

मन गयंद मानै नहीं चलै सुरति के साथ ।
दीन महावत क्या करे अंकुस नाहीं हाथ ॥९३॥

तरवर तासु विलंबिये बारह मास फलंत ।
सीतल छाया सघन फल पंछी केल करंत ॥९४॥

तरवर सरवर संतजन चौथे बरसै मेह ।
परमारथ के कारनै चारो धारैं देह ॥९५॥

ऊंची जाति पपीहरा पिये न नीचा नीर।
कै सुरपति को जाचई कै दुःख सहै सरीर ॥ ९६ ॥

हेरत हेरत हे सखी हेरत गया हेराय।
बुंद समानी समुद में सो कित हेरी जाय ॥ ९७ ॥

जूआ, चोरी, मुखबिरी, व्याज, घूस, परनार।
जो चाहै दीदार को एती वस्तु निवार ॥ ९८ ॥

पाहन पूजै हरि मिलै तौ मैं पुजूं पहार।
ताते ये चाकी भली पीसि खाय संसार ॥ ९९ ॥

काँकर पाथर जोरि कै मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे (क्या) बहिरा हुआ खुदाय ॥१००॥

पानी मिलै न आपको औरन बकसत छीर।
आपन मन निश्चित नहीं और बंधावत धीर ॥१०१॥

चात्रिक सुतहि पढ़ावहीं, आन नीर मति लेय।
ममकुल यही सुभाव है, स्वाति बूंद चित देय॥१०२॥

साफ पड़े दिन बीतगै चकवी दीन्हा रोय।
चल चकवा वादेस को जहां रैन ना होय ॥ १०३ ॥

सपने में साईं मिलै सोवत लिया जगाय।
आंखि न खोलूं डरपता मत सपना ह्वै जाय ॥१०४॥

नाम रतन धन संत वह खान खुली घट माहिं।
सेंत मेत ही देत हौ गाहक कोई नाहि ॥१०५॥

शब्दावली।

बरनहु कौन रूप औ रेखा। दूसर कौन आय जो देखा।
औ ओंकार आदि नहि वेदा। ताकर कहों कौन कुल भेदा ॥

नहि तारागन नहिं रवि चंदा। नहिं कछु होत पिता के विंदा॥
नहि जल नहि थल नहि थिर पवना। कोधर नाहिं मुहुकुमको बरना॥
नहिं कछु होत दिवस औ राती। ताकर कहहु कौन कुल जाती॥

शन्य सहज मन सुरति ते प्रगट भई एक ज्योति।
वलिहारी ता पुरुष छवि निरालंब जो होति॥१०६॥

एकै काल सकल संहारा। एक नाम है जपत संसारा॥
तिया पुरुख कछु कथो न जाई। सर्व रूप जग रहा समाई॥
रूप अरूप जाय नहि वोली। हलुका गरुआ जाय न तोली॥
भूख न तृखा धूप नहि छाहीं। दुख सुख रहित रहै तेहि माहीं॥

अपरम परम रूप मगु, नहि तेहि सख्या आहि।
कहहिं कवीर पुकारि कै अद्भुत कहिए ताहि॥ १०७॥

माया महा ठगिन हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोले वोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी॥
पंडा के मूरत ह्वै वैठी तीरथ में भई पानी॥
योगी के योगिन ह्वै वैठी राजा के घर रानी॥
काहूके हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी॥
कहै कवीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी॥१०८॥

पानी विच मीन पियासी, मोहिं सुन सुन आवत हांसी।
आतम ज्ञान विना सब सूना क्या मथुरा क्या कासी॥
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै वाहर खोजन जासी॥
मृग की नाभि माहि कस्तूरी, बन बन खोजत वासी॥
कहै कवीर सुनो भाई साधो सहज मिलै अविनासी॥१०९॥

जो तोहि कर्ता वर्ग विचारा। जन्मत तीन दण्ड अनुसारा ॥
जन्मैत शुद्र भये पुनि शूद्रा। कृत्रिम जनेऊ घालि जगदुंद्रा ॥
जो तुम ब्राह्मन ब्राह्मनि जाये। और राह तुम काहे न आये ॥
जो तू तुरुक तुरुकिनी जाया। पेटे काहे न सुनति कराया ॥
कारी पीरी दूहौ गाई। ताकर दूध देहु बिलगाई ॥
छाड़ु कबार नर अधिक सयानी। कह कबीर भजु सारँगपानी ॥११०॥

दुई जगदीश कहा ते आये कहु कौने भरमाया।
अल्ला राम करीम केशव हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक कनक ते गहना तामे भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापे एक नेवाज एक पूजा ॥
वही महादेव वही मोहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए।
कोई हिन्दू कोइ तुरुक कहावै एक जमी पर रहिए ॥
बेद किताब पढ़ै वे कुतबा वे मोलना वे पाड़े।
बिगत बिगत कै नाम धरायो यक माटी के भांड़े ॥
कह कबीर वे दोनो भूले रामहि किनहू न पाया।
वे खसिया वे गाय कटावै बादे जन्म गवांया ॥ १११ ॥

यह जग अन्धा मैं केहि समझाओं।
इक दुइ होइ उन्हे समझाओ सबहि भुलाने पेट के धन्धा।
पानी के घोड़ा पवन असवरवा ढरकि परै जस ओस के बुन्दा ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा खेवन हारा पड़िगा फन्दा।
घरकी वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारि के ढूंढ़त अंधा ॥
लागी आग सकल वन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकि गा बंदा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो इक दिन जाय लगोटी झार बंदा ॥११२॥

चली है कुलबोरनी गंगा नहाय।
सतुआ कराइन वहुरी भुजाइन घूंघट ओटै भसकत जाय।
गठरी बाधिन मोटरी बांधिन खसम के मूड़े दिहिन धराय ॥

बिछुआ पहिरिन औंठा पहिरिन लात खसम के मारिन धाय।
गगा नहाइन जमुना नहाइन नौ मन मैल है लीहिन चढ़ाय॥
पांच पचीस के धक्का खाइन घरहु की पूंजी आइन गवांय॥
कहत कबीर हेत करु गुरु सों नहिं तोर मुकुता जाय नसाय॥११३॥

ना जानै तेरा साहेब कैसा है !

मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै क्या साहेब तेरा बहिरा है।
चिउंटी के पग नेवर बाजै सो भी साहेब सुनता है॥
पंडित होय के आसन मारै लंबी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट कतरनी सो भी साहेब लखता है॥
ऊंचा नीचा महल बनाया गहरी नेव जमाता है।
चलने को मनसूबा नाहीं रहने को मन करता है॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी जोड़ जमीं मे धरता है।
जेहि लहना है सो लै जैहै पापी बहि बहि मरता है॥
सतवंती को गजी मिलै नहिं वेश्या पहिरै खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै भडुआ खात बतासा है।
हीरा पाय परख नहिं जानै कौड़ी परखन करता है॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है॥११४॥

मन न रगाये रँगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मन्दिर मे बैठे नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले दाढ़ी बढ़ाय जोगी ह्वै गैले बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले काम जराय जोगी ह्वै गैले हिजरा॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रगौलै गीता बाच के ह्वै गैले लबरा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो जम दरवजवा बांधल जैबे पकरा॥११५॥

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुवाई॥

मुसलमान के पीर औलिया मुरगा मुरगी खाई।
खाला केरी बेटी व्याहे घरहि मे करे सगाई॥
बाहर से एक मुरदा लाये धोय धाय चढ़वाई।
सब सखिया मिल जेवन बैठी घर भर करे बड़ाई॥
हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई॥११६॥

संतो राह दोऊ हम दीठा।
हिंदू तुरुक हटा नहिं माने स्वाद सबन को मीठा॥
हिंदू बरत एकादसि साधे दूध सिंघाड़ा सेती।
अन को त्यागे मन नहि हटके पारन करे सगोती।
रोजा तुरुक नमाज गुजारै बिसमिल बाँग पुकारै॥
उनकी भिस्त कहांते होई सांझै मुरगी मारै।
हिंदू दया मेहर को तुरकन दोनो घट सो त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारै आगि दुहौ घर लागी॥
हिंदु तुरुक की एक राह है सदगुरु इहै बताई।
कहहि कबीर सुनो हो संतो राम न कहेउ खोदाई॥११७॥

साधो भजन भेद है न्यारा।
कर माला मुद्रा के पहिरे चंदन घसे लिलारा।
मूंड़ मुड़ाये जटा रखाये अङ्ग लगाये छारा॥
का पानी पाहन के पूजे कंद मूल फरहारा।
कहा नेम तीरथ व्रत कीन्हें जो नहि तत्त विचारा॥
का गाये का पढ़ि दिखलाये का भरमे संसारा।
का संध्या तरपन के कीन्हे का षटकर्म अचारा॥
जैसे वधिक ओट टाटी के हाथ लिये विषचारा।
ज्यों बक ध्यान धरै घट भीतर अपने अङ्ग विकारा॥
दै परचौ स्वामी होइ बैठै करै विषय व्यवहारा।

ज्ञान ध्यान को भरम न जानै बाद करै निःकारा ॥
फूके कान कुमति अपने से बोझ लियो शिर भारा।
बिन सतगुरु गुरु केतिक बहिगे लोभ लहर की धारा॥
गहिर गंभीर पार नहिं पावै खंड अखंड से न्यारा।
दृष्टि अपार चलन को सहजै करै भरम कै जारा॥
निर्मल दृष्टि आतमा जाकी साहेब नाम अधारा।
कहत कबीर वही जन आवै तै मैं तजे विकारा ॥११८॥

रमैया के दुलहिन ने लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मच हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारदमुनि के परी पिछार॥
सिङ्गी की मिङ्गी करि डारी पारासर के उदर विदार।
कन फूका चिर कासी लूटा लूटा जोगेसर करत विचार।
हमतो बचिगे साहेब दया से सब्द गाइ जो उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भाई साधो इस ठगिनी से रहो हुसियार॥११०॥

आई गवना की सारी उमिरि अबहीं मोरी बारी॥ टेक॥
साज समाज पिया लै आये और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि जोरत गठिया हमारी॥
सखी सब गावत गारी॥

विधि गति वाम कछु समझ परत ना बैरी यह महतारी।
रोय रोय अंखिया मोर पोछत घरवां से देत निकारी॥
भई सबको हम भारी॥

गवना कराय पिया ले चाले इत उत बाट निहारी।
छूटत गांव नगर से नाता छूटै महल अटारी।
करम गति टरे न टारी॥

नदिया किनारे बलम मोर रसिया दीन्ह घूंघट पट टारी।

थर , थराय तन कांपन लागे काहू न देख हमारी ।
पिया लै आये गोहारी ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो यह पद लेहु विचारी ।
अबके गौना बहुरि ना औना करिले भेट अकवारी ॥
एक बेर मिलिले प्यारी ॥१२०॥

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होसियारी क्या ।
रहैं आज़ाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या ॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते ॥
हमारा यार है हममें हमन को इंतजारी क्या ।
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है ।
हमन गुरु नाम सांचा है हमन दुनिया से यारी क्या॥
न पल बिछुड़े पिया हमसे न हम बिछुड़े पियारे से ॥
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ॥
कबीरा इश्क का माता दुई को दूर कर दिलसे ।
जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या ॥१२१॥

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दण्ड कर
खेल चौगान मैदान माही ।
जगत का भरमना छोड़दे बालके
आयजा भेष भगवंत पाहीं ॥
भेख भगवंत की सेस महिमा करें ।
सेसके सीस पर चरन डारें ॥
कामदल जीतिके कवल दल सोधि के
ब्रह्मको बेधिके क्रोध मारे ॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै
गगन के महल पर मदन जारै ॥

कहत कब्बीर कोई संत जन जौहरी
करम के रेख पर मेख मारै ॥ १२२ ॥

भजु मन जीवन नाम सबेरा ।
सुन्दर देह देख जिन भूलो, झपट लेत जस बाज बटेरा ।
या देही को गरब न कीजै उड़ पंछी जस लेत बसेरा ।
या नगरी मेरहन न पहौ कोइ रहिजाय न दुःख घनेरा ॥
कह कबीर सुनौ भाई साधौ मानुख जनम न पैहो फेरा ॥१२३॥

करो जतन सखि साईं मिलन की ।
गुड़िया गुड़वा सूप सुपेलिया तज दे बुध लरकैया खेलनकी ।
देवता पित्तर भुइयां भवानी यह मारग चौरासी चलन की ।
ऊँचा महल अजब रँग बँगला, साईं सेज वहा लागी फुलन की
तन मन धन सब अरपन कर वह सुरत सम्हारू परु पैया सजनकी
कह कबीर निरभय ह्वै हंसा कुंजी बता देहु ताला खुलन की ॥१२४॥

सुगवा पिंजरवां छोरि भागा ।
इस पिंजरे में दस दरवाजा दस दरवाजे में किवरवा लागा ।
अंखियन सेती नीर बहन लग्यो अब कसना हि तू बोलत अभागा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो उड़िगो हंस टूटि गयो तागा ॥१२५॥

कमाल

(१६२२)

कमाल कबीर साहब के पुत्र थे। कोई कोई विद्वान इन्हें कबीर साहेब का शिष्य कहते हैं। परन्तु एक कहावत प्रसिद्ध है "डूबे वंस कबीर के उपजे पूत कमाल।" इससे इनका कबीर साहेब का पुत्र होना ही सिद्ध होता है। इन्होंने अपनी

सारी उम्र कबीर साहेब के सिद्धान्तों के खण्डन में ही बिताई संभवतः यही उक्त कहावत के प्रचलित होने का कारण है। इनकी जीवनी के विषय में विशेष बातें ज्ञात नहीं हैं। कविता इनकी कालीदास हजारा में संगृहीत है। शिवसिंह सरोज में इनका कविता काल संम्वत् १६२२ वि० दिया हुआ है।

राम के नाम सो काम पूरन भयो।
लक्ष्मण नाम ते लक्ष पायो
कृष्ण के नाम सों वा.रि से पारभे
विष्णु के नाम विश्राम आयो ॥
आइ जग बीच भगवंत की कर
और सब छांड़ि जंजाल छायो ॥
कहत कम्माल कबीर का बालका।
निरखि नरसिंह प्रहलाद गायो ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

[१५७५]

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्मस्थान गाजीपुर कहा जाता है। इनका वास्तविक नाम मुहम्मद था मलिक इनकी उपाधि थी और जायस [जि० रायबरेली, अवध] के रहनेके कारण लोग इन्हें जायसी कहते थे। जायसी के जन्म और मरण की तिथि का ठीक ठीक पता नहीं चलता। अमेठी के महल के सामने इनकी कब्र अभी तक मौजूद है। सैय्यद अशरफ इनके गुरु [पीर] थे। अशरफ़ खानदान के लोग अभी तक मौजूद हैं; जिनमें मौलवी "महम्मद" अशरफ़ नाम के

सज्जन अभी तक जायस में रहते है। वे फारसी और उर्दू के अच्छे विद्वान है और मिर्जापुर तथा प्रयाग गवर्नमेंट हाई स्कूलों के बहुत दिनों तक हेड मौलवी रह चुके है। आपसे मालूम हुआ है कि जायसी के अखरावट और पद्मावत नामक ग्रन्थों के अतिरिक्त दो और अप्रकाशित ग्रन्थ आपके पास हैं जिनमें एक ग्रन्थ ज्योतिष विषय का है।

हमारे देखने में इनकी दो पुस्तकें आई है एक पद्मावत और दूसरी अखरावट। पद्मावत में रानी पद्मावती की कहानी बड़ी योग्यता से लिखी गई है। यद्यपि उसकी भाषा जायस के आस पास की ग्रामीण है परन्तु उसमें रूपक उत्प्रेक्षा और उपमा आदिका बहुत सुन्दर समावेश है। सारीकथा दोहे चौपाई में है। जायसी की हिंदू मुसलमानों को एक करने की बराबर-चेष्टा रही है अस्तु प्रसंग के अनुसार जहां कहीं भी हिंदू देवताओं के प्रति भक्ति औरश्रद्धा के दिखलाने का अवसर आया है वहां उन्होंने बड़ी स हृदयंता का परिचय दिया है। एक मुसलमान के द्वारा ऐसी शुभ सेवा का होना बड़े अभिमान और हर्ष की बात है।

संवत् १५९५ वि० मे पद्मावत लिखी गई। अखरावट पद्मावत के बाद बना। अखरावट मे क से लेकर प्रायः सभी अक्षरोंपर कविता की गई है इसमें ईश्वर की स्तुति और संसार की असारता बतलाई गई है।

इनकी कविता का कुछ नमूना दोनों ग्रंथों से नीचे दिया जाता है।

अखरावट से

ठा-ठाकुर बड़ आप गोसाई। जेहि सिरजा जग अपनेहि नाई॥
आपुहि आपु जु देखन चहा। आपन प्रभुता आप से कहा॥

सबई जगत दरपन कई लेखा। आपुहि दरपन आपुहि देखा ॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सरजा आपु अहेरू ॥
आपुहि पुहुप फूल बन फूले। आपुहि भवर वास रस भूले ॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस चाखन हारा ॥
आपुहि घट घट मँह मुख चाहइ। आपुहि आपन रूप सराहइ ॥

आपुहि कागद आपु मसि, आपुहि लिखने हार।
आपुहि लिखनी आखर, आपुहि पंडित अपार।
साईं के भंण्डार, बहु मानिक मुकुता भरे।
मनहि चोर पइसार, महमद तउ किछु पाइये ॥

ता तप साधि एक पथ लागे। करु ऐसा किन राति सुभागे ॥
ओहि मन लावहु रहइ न रूठा। छाड़हु झगरा यहि जग झूठा ॥
जब हंकार ठाकुर कर आई। एक घडी जिव रह इन पाई ॥
रितु बसंत सब खेल धमारी। दगला अस तन चलब अटारी ॥
सोई सोहागिन जाहि सोहागू। कंत मिलाइ जो खेलइ फागू ॥
कह सिगर शिर सिंदुर मेलहु। सबई आइ मिलि चांचर खेलहु ॥
अउ जो रहहि गरब करि गोरी। चढ़इ सोहाग चरइ जस होरी ॥

खेल लेहु जस खेलना, ऊख आगि देइ लाइ ॥
झूमर खेलहु झूम कर. पूजि मनोरा भाई ॥

कहां ते उमगे आइ, सुधि बुधि हिरदय उपजाए ॥
पुनि वह जाय समाइ. महमद सो खंड खोजिए ॥
था-थायहु बहु ज्ञान बिचारू। जेहि मह सब सांई संसारू ॥
जैसे अहइ पिरिथिमी सगरी। तइसेहि जानहु काया नगरी ॥
तन मह पीर अउ वेदन पूरी। तन मह वैद औ ओषध मूरी ॥
तन मह विष अउ आलस बसई। जानइ सो जो कसउटी कसई ॥
कामी पढ़ै गुनै औ लीखे। करनी साथ किये औ सीखे ॥

आपुहि खो उइइ जो पावा। सोइ बीरउ मन लाइ जनावा॥
जो ओहि हेरत जाय हेराई। सो पावई अमृत फल खाई॥

आपुहि खोवत पिउ मिलइ, पिउ खोवत सब जाइ।
देखहु बूझि विचार मन, लीन्हें हेरि हेराइ॥
कटु हई पिउ कर खोज जो पावा सो मर जिया।
तहँ नहिं हँसी न रोग, महमद ऐसो ठांव वह॥

पद्मावत से

स्तुति

संवरउ आदि एक करतारू। जेइ जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥
कीन्हेसि प्रथम ज्योति परगासू। कीन्हेसि तेहि परवत कविलासू॥
कीन्हेसि अगिन पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा॥
कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अवतारू॥
कीन्हेसि सपत दीप ब्रह्मण्डा। कीन्हेसि भुवन चऊदह खंडा॥
कीन्हेसि दिन दिआ ससि राती। कीन्हेसि नखत तारागन पाती॥
कीन्हेसि सीउ धूप अरु छाहां। कीन्हेसि मेघ बीज तेहि माहां॥

कीन सबई अस जाकर, दोसर काज न काहि।
पहिलहि ताकर नाम लेइ कथा कहहु अवगाहि॥

कीन्हेसि सातउ समुद्र अपारा। कीन्हेसि मेरु खिखिन्द पहारा॥
कीन्हेसि नदी नार अउ झरना। कीन्हेसि मगर मच्छ बहु बरना॥
कीन्हेसि सीप मोति तेहि भरे। कीन्हेसि बहुतइ नग निरभरे॥
कीन्हेसि बनखंड अउ जरि मूरी। कीन्हेसि तरवर तारि खजूरी॥
कीन्हेसि साउज आरन रहहीं। कीन्हेसि पंखि उड़हि जंह चहहीं॥
कीन्हेसि बरन सेत अउ सामा। कीन्हेसि नींद भूख बिसरामा॥
कीन्हेसि पान फूल रस भोगू। कीन्हेसि बहु ओषध बहु रोगू॥

निमिख न लाग करत ओहि, सबहि कीन्ह पल एक।
गगन अन्तरिख राखा, बाजु खंभ बिनु टेक॥

कीन्हेसि मानुस दीन्ह बड़ाई। कीन्हेसि अन्न भुगुति तेइ पाई॥
कीन्हेसि राजा भोजई राजू। कीन्हेसि हसति घोर तेहि साजू॥
कीन्हेसि तेहिकर बहुत बिरासू। कीन्हेसि कोई ठाकुर कोई दासू॥
कीन्हेसि दरब गरब जेहि कोई। कीन्हेसि लोभ अघाइ न कोई॥
कीन्हेसि जिअन सदा सब चहा। कीन्हेसि मीचु न कोई रहा॥
कीन्हेसि सुख अरु क्रोध अनंदू। कीन्हेसि दुख चिंता अरु दंदू॥
कीन्हेसि कोइ भिखारि कोइ धनी। कीन्हेसि संपति बिपत बहु घनी॥

कीन्हेसि कोई निभरोसी, कीन्हेसि कोइ बरियार।
छारइ तेंइ सब कीन्हेसि, पुनि कीन्हेसि सब छार॥

कीन्हेसि अगर कस्तूरी बेना। कीन्हेसि भीमसेन अउ चेना॥
कीन्हेसि नाग मुखइ बिख बसा। कीन्हेसि मंत्र हरइ जो डसा॥
कीन्हेसि अमी जिअइ जेहि पाई। कीन्हेसि बिख जो मिचु तेहि खाई॥
कीन्हेसि ऊख मीठ रस भरी। कीन्हेसि करुई बेलि बहु फरी॥
कीन्हेसि मधु लावइ लेइ माखी। कीन्हेसि भंवर पंख अउ पांखी॥
कीन्हेसि लेखा उन्दुर चाटी। कीन्हेसि बहुत रहहि खनि माटी॥
कीन्हेसि राक्षस भूत परेता। कीन्हेसि भोकस देव दएता॥

कीन्हेसि सहस अठारह बरन बरन उपराजि।
भुगुति दीन्ह पुन सब कह सकल साजने साजि॥

पद्मावत का सती होना

नागमती पद्मावत रानी। दोउ महा सत सती बखानी॥
दोउ सौत चढ़ि खाट जु बैठी। अउ सिव लोक परा तहं दीठी॥
बैठो कोई राज अउ पाटा। अंत समय बैठे सब खाटा॥

चंदन अगर काढ़सर साजा। अउगति देव चले ले राजा ॥
बाजन बाजहिं होय अगोता। दोउ कंत ले चाहै सोता ॥
एक जो राजा भायो विवाहू। अब दूसरे है और निवाहू ॥
जियत जलै जो कंत की आसा। मुये रहस बैठे इक पासा ॥

आज सुर दिन अथयो, आज रयनि शशि बूड़।
आज नाथ जिय दीजिए, आज अगिन हम जूड ॥

सर रच दान पुन्य बहु कीन्हा। सात बार फिर भांवर लीन्हा ॥
एक जो भांवर भयो बियाही। अब दूसर ह्वै गोहन जाही ॥
जियत कंठ तुम हम गल लाई। मुये कंठ नहिं छाड़हु साईं ॥
लै सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ी दोउ कंत गल लाई ॥
और जो गांठ कंत तुम जोरी। आदि अंत लहि जाय न छोरी ॥
यह जग काह जो अथहि न याथी। हम तुम नाह दोउ जग साथी ॥
लागी कंठ अंग दै होरी। छार भई जर अंग न मोरी ॥

राती प्रिय के नेह की स्वग भयो रतनार।
जोरे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार ॥

वै सह गवन भई जिय आई। बादशाह गढ़ छेंका आई ॥
तब लग सो अवसर ह्वै बीता। भये अलोप राम अरु सीता ॥
आय शाह जो सुना अखारा। ह्वै गइ रात दिवस उजियारा ॥
छार उठाइ लीन्ह इक मूठी। दीन्ह उड़ाय पिरिथिवी झूठी ॥
सगरे कटक उठाई भारी। पुल बांधा जहँ जहँ गढ़ घांटी ॥
जौ लहि उपर छार नहि परै। तौ लहि यह तृष्णा नहिं मरै ॥
भा दहवा भा जूझ असूझा। बादल आइ पवर पर जूझा ॥

जूहर भई सब इस्त्री पुरुष भये संग्राम।
बादशाह गढ़ चूरा, चितौर भा इसलाम ॥

मैं यह अरथ न पंडित बूझा। कहा कि हम कछु और न सूझा ॥

चौदह भुवन जो हत उपराही । सो सब मानुष के घट मांही ॥
तन चितौर मन राजा कीन्हा । हिय सिंहल बुधि पद्मिनी चीन्हा॥
गुरू सुवा जेहि पंथ देखावा । बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा । बाचा सोइ न यह चित बंधा ॥
राघव दूत सोइ शैतानू । माया अलाउदी सुलतानू ॥
प्रेम कथा यहि भांति विचारू । बूझि लेहु जो बूझहि पारू ॥

तुरकी अरबी हिंदवी, भाषा जेती आहि ।
जामें मारग प्रेमका सबै सराहै ताहि ॥

मोहमद कवि यह जोर सुनावा । सुना सो प्रेम पीरका पावा ॥
जोरे लाय रक्त ले गए । प्रेम प्रीत नयनहि जल भये ॥
औ मैं जान गीत अस कीन्हा । की यह रीति जगत मह चीन्हा ॥
कहा सो रतनसेब अब राजा । कहा सुवा अस बुध उपराजा ॥
कहा अलाउदीन सुलतानू । कंह राघव जेहि कीन्ह बखानू ॥
कह सुरूप पद्मावत रानी । कुछ न रही जग रही कहानी ॥
धन्न सोइ यह कीरति तासू । फूल मरै पर मरे न बासू ॥

कौन जगत यश बेचा, कौन लीन्ह यश मोल ॥
जो यह पढ़े कहानी, हम सबर दोउ बोल ॥

मुहमद वृद्ध वयस जो भई । यौवन इन सो अवस्था नई ।
बल जो गयो कै खीन शरीरू । दृष्टि गई नयनहि दै नी ॥
दशन गये कै बचा कपोला । वैन गए अनुरुच पै बोला ॥
बुद्धि जो गई दे हिअ बौराई । गव गयो तरिहत शिर नाई ॥
श्रवण गये ऊंच जो सूना । स्याही गये सीस मा धूना ॥
भवर गये केसहि दे भूवा । यौवन गयो जीत लै गुवा ॥
जो लहि जीवन जौवन साथा । पुनि सो मीच पराये हाथा ॥

भौं वर्णन

भउंहइ साध धनुष जनु ताना । जा सउ हेर मार विखबाना ॥
ओही धनुख ओहि भउहहि चढ़ा । केह हथियार काल असगढ़ा ॥
ओही धनुष किसुन पर अहा । ओही अनुप राघव कर गहा ॥
ओहि धनुख रावन संघारा । ओही धनुख केंसासुर मारा ॥
ओही धनुख मईं ता पह चीन्हा । धनुख आपु बोझ जग कीन्हा ॥
ओही धनुखहि कोई न जीता । अछइछपी छपी गोपीता ॥

भउंह धनुख धन धानुख दोसर सरि न कराइ ।
गगन धनुख जो उग्गई लाजइ सो छपि जाइ ॥

रज्जब जी

(१५६५—१६५५)

रज्जवजी के विषय में अभी कुछ अधिक माल्रूम नहीं हुआ है। ये प्रसिद्ध महात्मा दादूराम जी के शिष्य थे। मुसलमान थे या नहीं इसमे संदेह है। केवल दो बातों से इनके मुसलमान होने की सम्भाना दृढ़ होती है। एक तो इनका नाम मुसलमानों की तरह है, दूसरे इनकी कविता में फारसी और उर्दू शब्द अधिक आये है। इनकी एक पुस्तक "रज्जब जी की बानी" नाम की हमने देखी है। जिसका रचनाकाल विक्रमीय संवत् १६२५ से संवत १६५० के भीतर ही जान पड़ता है। इनकी कविता प्रौढ़ है। गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति, नीति, सदुपदेश और आत्म ज्ञान पर इन्होंने अच्छी रचनाएं की हैं। यदि इस ग्रन्थ रचना काल के तीस वर्ष पूर्व इनका जन्मकाल माना

जाय क्योंकि पौढ़ावस्था में ही इन्हें वैराग्य हुआ होगा और पांच वर्ष बाद मृत्यु मानी जाय तो इनका समय विक्रमीय संवत १५६५ से लेकर १६५५ के लगभग होना चाहिये। इनकी कविता का कुछ अंश नमूने के तौर पर नीचे उद्धृत किया जाता है।

साखियां

रज्जब रहिए राम मे, गुरु दादू के प्रसाद।
नातर जाता देख तू, जनम अमोलक बादि॥ १॥

रज्जब रजा खुदाय की, पाया दादू पीर।
कुल मंजिल महरम किया, दिल नाही दिलगीर॥ २॥

तलब तसल्ली है तालिबां, दादू की दरगाह।
रज्जब रजमां पाइये, हाफू कुली गुनाह॥ ३॥

गुरू दादू देखत कटे, जीव के कोटि जंजीर।
जन रज्जब मुकते किये, पाया पूरा पीर॥ ४॥

फाटे परबत पाप के, गुरु दादू की हांक।
रज्जब निकसा राह उस, प्राण मुक्त बेबाक॥ ५॥

गुरु गोविंदहि सेव तू, सब अगहु सिख पूरि।
जन रज्जब उणती उठै दुख दारिद्र सुदूरि॥ ६॥

सतगुरु शुन्य समान है, सिख आयें तिन माहि।
अकिल अम्बु तिनमें अमित, रज्जब टोटा नाहि॥ ७॥

दरद बिना क्यों देखिए, दरसन दीन दयाल।
रज्जब विरह वियोग बिन, कहां मिले सो लाल॥ ८॥

नैतो नेह न नाह का, वहि दिशि दृष्टि न जाय।
रज्जब रामहि क्यों मिलै, तालीब नाहीं माहि॥ ९॥

गृह दारा सुत वित्तसूं, यह मन भया उदास।
जन रज्जब रामहि रच्या, छूटा जगत निवास ॥ १० ॥

रज्जब रूठा रिद्धिसो, सिद्धो सुहावै नाहिं।
इन आगे इनका धना, सो बेठा मन माहिं ॥ ११ ॥

रज्जन त्यागी घर घरनि, पर नारी न सुहाय।
अहि अपनी तज केचुली, काकी पहिरे जाय ॥ १२ ॥

सबही माता सब बहिन, सबही पुत्री जानि।
रज्जब कै रमणी नही, समझा सतगुरू ज्ञान ॥ १३ ॥

नारी नैन न बिलसिये, सुन्दर स्वपनै त्यागि।
जन रज्जब जग वह जती, बंदनीय वैराग ॥ १४ ॥

मनसा पचा भरतार तजि,जो वैरागिन होय।
रज्जब पावैं परम घर, जहां न सुख दुख होय ॥ १५ ॥

रज्जन भजन भंडार में, दीरघ दौलति होय।
इहां सुखी संसार मधि, आगे आनंद होय ॥ १६ ॥

षट दरशन नामै कहैं, नामे वेद पुरान।
तो रज्जब नामे गहहु, माया भेद वितान ॥ १७ ॥

नाम लागि नर निसतरहि, हिंदू मूसलमान।
उभय ठौर एकै कही, रज्जब बेद कुरान ॥ १८ ॥

रज्जब राम रहीम कहि, आदि पुरुष करि याद।
सदा सनेही सुमिरिये, जनम न जावे बाद ॥ १९ ॥

अरध नाम सम कछु नहो, जप तप तीरथ दान।
रज्जब साधन कष्ट सब, सुमिरन सम न बखान ॥२० ॥

जाति पांति कुल सब गए, राम नाम के रंग।
रज्जब लागा लाह ज्यो, पारस का परसग ॥ २१ ॥

दुर्बल देही दीन मति, रहै राम के संग ।
जन रज्जब जगसूँ जुदै, ये संतनि के अंग ॥ २२ ॥

आतम कही न बांधई, बिन साई अरु साधु ।
जन रज्जब ता संत की, पूरन बुद्धि अगाध ॥ २३ ॥

तन त्यागी त्रिभुवन भरे, मन त्यागी कोइ एक ।
रज्जब रैने सुपनि मे, लहिए विगति विवेक ॥ २४ ॥

संसारी राकेश उर, सांई दरसे मांहि ।
साधू दिल सूरज भई, प्रतिबिंब पड़ै सुमांहि ॥ २५ ॥

भवसागर संसार यह, साधू शुद्ध जहाज ।
रज्जब परसे पार ह्वै, कठिन सरै यहु काज ॥ २६ ॥

आदि अंत मधि हम बुरे, हमसों भला न होय ।
रज्जब ज्यों साहिब खुशा, सो लच्छन नहि कोय॥२७॥

रज्जब सम अधर्म नही, तुम प्रभु अधम उधार ।
उभै अंग मे फेर क्या, कीजै कृपा विचार ॥२८॥

सकल पतित पावन किये, अधम उधारन हार ।
विरद विचारो बापजी, जन रज्जब की बार ॥ २९ ॥

रज्जब साईं शून्य में, अभावो ऊंकार ।
सो माया उपजै खपे, पाया भेद विचार ॥ ३० ॥

सरगुण सब कुछ देखिये, निरगुण सुनि अस्थान ।
रज्जब दोनौ अगम तत, समझो संत सुजान ॥ ३१ ॥

पतिव्रता कै पीव बिन, पुरुष न जन्मा कोय ।
त्यूं रज्जब रामहि रचै, तिनके दिल नहि दोय ॥ ३२ ॥

एक आतमा राम इक, एकै हित चित होय ।
दूजा दो सत क्यूं करे, दिल दीये नहिं दोय ॥ ३३ ॥

एक शब्द माया मई, एक ब्रह्म उनहार।
रज्जब उभै पिछाणि उर, करहु वैन व्यवहार ॥ ३४ ॥
जो प्राणी माया मिलै सो माया का रूप।
रज्जब राता राम सों, सो निज तत्व अनूप ॥ ३५ ॥
अति गति आतुर देखिए नॉव विमुख बहु दौर।
रज्जब भरम्या चाक ज्यूं, अंत ठौर को ठौर ॥ ३६ ॥
खालिक खिदत खूब खित, वैरागर की खानि।
रामरतन तहँ नीकसै, सो ठाहर उर आनि ॥ ३७ ॥
परमारथ पारस परस, हंस लोह ह्वै हेम।
जन रज्जब जाती जु कहि, मनसा वाचा नेम ॥ ३८ ॥
सुमति पंथ सो स्वर्ग का, उत्तम ऊंचे जाहि।
दुरमति मारग दूरमति, रज्जब नर किस मांहि ॥३९ ॥
कठिन कुमति की गांठि है, दई मुगध मन घोलि।
जन रज्जब सो सुमति बिन, कोई सकै न खोलि ॥४०॥
तीन लोक मनहूं मिले, तृष्णा तृप्त न होय।
रज्जब भूखे देखिये, सुरपति नरपति जोय ॥ ४१ ॥
तृष्णा तरल तरंगिनी, जहां बहै जगजेर।
जन रज्जब निर्भय भये, चढ़ि संतोष सुमेर ॥ ४२ ॥
जन रज्जब कलियुग तहां, जहां कपट का साज।
मुख औरे माहैं अवर, सो कुसंग तजि आज ॥ ४३ ॥
सकल बुरे का मूल है एक कुसंगति मांहि।
ज्यों रज्जब सागर मिल्यूं, तीरथ दीसै नाहिं ॥ ४४ ॥
रज्जब रहै कुसंग में, कुमति उदै ह्वै आय।
सुरा पान के कुंभ में, खीर खवार ह्वै जाय ॥ ४५ ॥

परदारा रत पारधी, जूवारी अरु चोर।
मद्य मांस वेश्या गमन, सातौ नरक अघोर ॥ ४६ ॥

सज्जन सुधा सुसंपती, सकल सुखों की राशि।
दुर्जन दुख दारुण दुसह, पीड़ा प्राणहु पासि ॥ ४७ ॥

साधू घट अमृत टई संसारी विष वेलि।
जन रज्जब गुण समझि करि, पीछे मुख में मेलि ॥ ४८ ॥

तन धोया फिरि तीरथौं, मैल रह्या मन माहि।
रज्जब पातक प्राण मै, क्यूं उर के अघ जाहि ॥४९ ॥

जल अँचवै आठौ पहर अट सठ तीरथ न्हाहि।
रज्जब रज नहि ऊतरै. मैली मनसा मांहि ॥ ५० ॥

हाथ गढ़े कूं पूजिए. मोल लिएको मान।
रज्जब अगढ़ अमोल की, खलक खबर नहिं जान ॥ ५१ ॥

पानी पाहन पूजतौ, कहु पहुंचा को पार।
रज्जब बूड़े धार में, यहि खोटे व्यवहार ॥ ५२ ॥

जड की पूजा जड़ करै, शठ हठ समझै नाहि।
रज्जब कूटै रोस चढ़ि, कन नाही तू समाहि ॥ ५३ ॥

अमर आत्मा अमर की, ताकी कीजे आस।
मिरतक तनि मिरतक घड़ी, तापरि कावै सांस ॥ ५४ ॥

हंस अंश ले छीरका, नीरहि निकसे नाहिं।
जन रज्जब यूँ ज्ञान गहि, ले अमृत विष माहिं ॥ ५५ ॥

विद्या मोहें दुरजनहुँ, विद्या बस सुलतान।
रज्जब विद्या परम धन, सीखहु चातुर सुजान ॥ ५६ ॥

रज्जब आतम राम बिचा, दीसै अकिल दलाल।
कूंची कुमति कपाट की, खोलै ताला साल ॥ ५७ ॥

काम काल गरजै सदा, काया नगरी माहिं।
जन रज्जब हाला जगत्, सुरनर छूटै नाहिं ॥ ५८ ॥

मदन भुवंगम सब डसे, नारी अरु भरतार।
रज्जब रहसी एक को, जो राख्या करतार ॥ ५९ ॥

क्रोध काल कहिए सदा, अत कहै अहंकार।
जन रज्जब जोरे जुलुम, पाया भेद विचार ॥ ६० ॥

अकबर

(१५९९—१६६२)

अकबर मुगल बादशाहों में दिल्ली के सुप्रसिद्ध सम्राट हो गए है। इनके पिता का नाम हुमायूँ था। इनका जन्म सं० १५९९ वि० में अमरकोट में हुआ था। ये सं० १६१३ वि० में राजसिंहासन पर बैठे और सं० १६६२ वि० में इनकी मृत्यु हो गई।

अकबर के राजत्व काल की राम—राज्य से तुलना की जाती हैं। इनके राज्य में सर्वत्र सुख और शान्ति विराजती थी। ये मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं से बहुत अधिक प्रेम रखते थे। हिन्दू मुसलमानो को इन्होंने दो निगाहों से कभी नहीं देखा। बल्कि मन्त्रियों का पद तो इन्होंने अधिक तर हिन्दुओं ही के लिये रख छोड़ा था। इन्होंने अपनी नीतिमत्ता, बुद्धिमत्ता धर्मशीलता और बीरता के कारण अपनी प्रजा के हृदय में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। और इन्हीं तीन गुणों के कारण इनके राज्य का विस्तार पिता के राज्य की अपेक्षा अधिक बढ़ गया। सर्व जातियों और सर्व धर्मों के मेळ में ही

ये देश की सच्ची उन्नति समझते थे। अस्तु सब धर्मों के तत्वों से गठित "दीन इलाही" धर्म्म के प्रचार और सभी जाति तथा धर्म्मावलम्बियों में विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की ओर इनका विशेष जोर रहा। इसी कारण कुछ हिन्दू तथा कुछ मुसलमान इनके विरुद्ध भी थे।

यद्यपि ये अधिक पढ़े लिखे नही थे पर विद्वानों तथा गुणियों का सच्चा आदर करना भली भांति जानते थे। महाराज बिक्रम के समान इनकी सभा में भी नवरत्न थे। इनके समय में, साहित्य गायन, वाद्य, चित्रण, गृह निर्माण आदि सभी कलाओं की यथेष्ट उन्नति हुई। हिन्दीकाव्य साहित्य की वास्तविक उन्नति इन्ही के समय में हुई। अधिकतर हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि इन्हीं के समय में हुए। इनका और इङ्गलैंड की महारानी एलिजवेथ का शासनकाल साहित्योन्नति के लिये चिर प्रसिद्ध रहेगा। ये हिन्दी में अच्छी कविता कर लेते थे। अधिक तो नहीं जो दो—चार इनकी कविताए मिली है वे नीचे दी जाती हैं।

(१)

शाह अकब्बर एक समै चले, कान्ह बिनोद बिलोकन बालहिं।
आहटतें अबला निरख्यो चकि चौंकि चली कर आतुर चालहि॥
ज्यो बलि बेनी सुधारि धरी सु, भई छबि यों ललना अरु लालहि।
चंपक चारु कमान चढ़ावत, काम ज्यो हाथ लिये अहि बालहिं॥

(२)

केलि करैं बिपरीत रमै सु, अकब्बर क्यों न इतो सुख पावैं।
कामिनि की कटि किंकनी कान, किधौ गन पीतम के गुण गावैं॥
विन्दु छुटो मन में सु लिलाटतें, यो लट में लटको लगि आवैं।
शाहि मनोज मनो चित मैं छबि, चंद लये चकडोर खिलावैं॥

(३)

साहि अकब्बर बाल की बांह अचिन्त गही चालि भीतर भौने।
सुन्दरि द्वारहि दीठि लगाय के भागिवे को भय पावत गौने ॥
चौकति सी चहुं ओर बिलोकत संक संकोच रही मुख मौने।
यो छबि नैन छबीली के छाजत मानो बिछोह परे मृग छौने ॥

(४)

जाको जस है जगत में जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि ॥

(५)

दीन जानि सब दीन, एक दुरायो दुसह दुख।
सो अब हमको दीन, कछु नहि राखो बीर बर ॥

(६)

सबै भूमि गोपाल की, यामे अटक कहा।
जाके मन में अटक है सोई अटक रहा ॥

तानसेन

(१६००)

ग्वालियर में पं० मकरन्द पाण्डे नाम के एक गौड़ ब्राह्मण थे। तानसेन जी इन्हीं के पुत्र थे। कुछ लोगों का कहना है कि तानसेन जी का जन्म पटने में हुआ था परन्तु यह भ्रम है उनके वंशधर उनका जन्म ग्वालियर में ही होना बतलाते हैं। पं० मकरन्द पाण्डे की कोई संतान जीवित नहीं बचती थी। अस्तु, जब तानसेन जी का जन्म हुआ तो उन्होंने जिसमें यह बच्चा बच जाए इनको मोहम्मद गौस नामके एक मुसलमान

फकीर को भेट कर दिया। अब भी ग्वोलियर में इनका मकबरा बहुत प्रसिद्ध है। मोहम्मद गोस को भेट हो जाने पर तानसेन जी सचमुच ही आयुष्यमान हुए। इनका पैतृक नाम बनअ।थो वा न था। जबसे कुछ सज्ञान हुए तभी से इनको गाने बजाने का चस्का लगा। लोगों का कहना है कि मोहम्मद गौस ने इन्हे संगीत विद्या मे निज सिद्धि से सिद्ध बना दिया था ओर कुछ लोग इन्हे वृन्दावन के स्वामी श्री हरिदास जी का शिष्य मानते है। दोनों ही बातें सत्य हो सकती है। मोहम्मद गौस अपने समय के एक सुप्रसिद्ध सांगीतिक थे। अस्तु, जब उन्होंने इनकी रुचि संगीत की ओर देखी होगी तो अवश्य ही शिक्षा दी होगी इसके बाद संभव है ये श्रीस्वामी हरिदास जी का नाम सुन कर उनके पास गये हों और सांगीतक शिक्षा ली हो। कहा जाता है कि ये बैजूबावरे के साथ भी थोड़े दिनो तक संगीत का अभ्यास करते रहे ओर कुछ लोग इस धारणा को निर्मूल वतलाते है उनके विचार से बैजू बावरे इनसे बहुत पहले हुए थे।

सबसे पहले ये शेरशाह के पुत्र के दरवार में रहे; इसके बाद ये रीवा के राजा रामसिंह बघेले के दर्बार में चले गये।

उस समय तक तानसेन की कीर्ति बहुत दूर दूर तक फैल चुकी थी। बादशाह जलालुद्दीन अकबर को गाना सुनने का बड़ा शौक था। अस्तु उन्होंने रामसिंह के दर्बार से इन्हें अपने यहां बुला लिया ओर अपने यहां के गवैयों में सबसे ऊंचा स्थान दिया। अकबर के नवरत्नो में से ये भी एक थे। कुछ विद्वानों के विचारानुसार ये आमरण अकबर के ही दर्बार में पड़े रहे और कुछ लोगों का कहना है कि मरने के कुछ दिन पूर्व इन्होंने असंतुष्ट हो कर अकबर का दर्बार छोड़ दिया

था। किसी किसी का कहना है कि तानसेन जी अकबर के प्रभाव से मुसलमान हो गये थे। और कुछ विद्वानों का विचार है कि ये मोहम्मद गौस के पास ही मुसलमान हो गये थे। हमारे विचार से भी पिछली हाँ बात अधिक युक्ति संगित जान पड़ती है।

मीयां तानसेन जी के मुसलनान हो जाने पर भी इनके वंश में अभी तक हिन्दू धर्म की बहुत सी प्रथाएं चली आती हैं—यथा दीपमालिका की रात्रि को सरस्वती का और वाद्यों का पूजन करना। विवाह में वर कन्या के जन्मपत्र लिखवा कर पूजन करना। वर कन्या का नकाह होने पर भी वे एक बार हिंदू मंडप तुल्य मंडप में बैठते हैं उस दिन स्त्रियां धोती पहनती है इत्यादि। इनके वँशज गोमांस तथा किसी भी प्रकार के नशे का स्पर्श नही करते और पान के अतिरिक्त इन लोगों को दूसरा कोई व्यसन नही हैं। ब्राह्मणों में श्रद्धा और भक्ति रखते हैं।

मीयां तानसेन जी के तान तरंग खां, सूरतसेन, विलासखां, निचोड़सेन, ये चार पुत्र और एक पुत्री थी। इनमें विलास खां जी फकीर हो गये। इनकी पुत्रो का विवाह स्वयं बादशाह अकबर ने बहुत खोज ढूढ के बाद नौबतखां जी के साथ किया। नौवत खां जी भी पहले हिंदू ही थे किंतु इस विवाह के समय मुसलमान हो गये। नौवतखां जी दामाद होने के कारण तानसेन के तुत्र के समान ही थे। इससे संभव है कि इनको कुछ शिक्षा तानसेन जी से भी प्राप्त हुई हो तो भी ये प्रधानतः वीणा मे श्री स्वामी हरिदास जी के ही शिष्य थे। ये वीगा के के अद्वितीय ज्ञाता थे। सुना जाता है कि नौवत खां जी स्वतंत्र संगीत विद्वान होने के कारण अपने श्वशुर मीयां तानसेन जी

से आन्तरिक ईर्ष्या रखते थे, एक दिन नौबत खां जी वीणा बजा रहे थे। एक तान पर तानसेन जी ने कहा कि "बेटा यह तान पूरी नहीं हुई।" यह सुन कर नौबत खां जी ने कहा कि "और पूरी आप कर दिखाइये।" तब तानसेन जी ने उस तान को पूरा गा दिया, इस अपमान से चिढ कर नौबत खां जी ने तानसेन पर छूरी चलाई पर भगवान की कृपा से तानसेन जी बच गये। इस बात को नौबत खां जी के वंशज खण्डारे लोग छिपाते हैं और छिपाने योग्य है भी।

तानसेन जी अधिकतर आगरे में रहते थे किन्तु इनकी मृत्यु ग्वालियर में हुई। वहां मोहम्मद गौस के मकबरे के पास इनकी कब्र अब तक मौजूद है उस कब्र पर एक इमली का पेड़ है उसके लिये यह प्रसिद्ध है कि "जो कोई उस इमली की पत्ती चबाता है उसका कंठ स्वर अत्यन्त ही मनोहर हो जाता है।" यह विश्वास यहां तक फैला कि वहां की सभी तवायफें और गवैये उस पेड़ की पत्तियों को चुन चुन कर खाने लगे। नौबत यहां तक पहुंची कि वह पेड़ एक दम सूख गया और अब उसी जगह एक दूसरा पेड़ है। इस कहानी में चाहे और कोई सत्यता हो या न हो किन्तु इससे तानसेन का महत्व अवश्य प्रदर्शित होता है। कहा जाता है कि अपने गायन द्वारा जानवरों को वश कर लेना, पानी बरसा देना तथा दीपक जला देना तानसेन के लिये कोई बड़ी बात न थी इस बात को प्रमाणित वाली करने अनेक कहानियां प्रचलित हैं। तानसेन के हृदय में गुणियों का बड़ा आदर और सन्मान रहता था उन्होंने सूरश्याम के गायन कला पर रीझ कर उनसे निम्नलिखित दोहा कहा—

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौ सूर की पीर।
किधौ सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर॥

इसपर सूरश्याम जी ने भी तानसेन की स्तुति-गर्भित-सूक्ति-मय एक दोहा कहा जो साहित्यिक दृष्टि से भी अनूठा है।

बिधना यह जिय जानि कै, शेषहिं दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलता, तानसेन की तान॥

तानसेन के जन्म काल मृत्यु काल आदि का ठीक-ठीक पता नही चलता विद्वानों के मत से इनका कविता काल सं० १६००वि० के लगभग है। इन्होंने तीन पुस्तकें लिखी हैं—(१) संगीतसार (२) राग माला और (३) श्री गणेश स्तोत्र। ये कविता साधारणतः अच्छी करते थे। इनके बनाये हुए गानो को सगीतिक बहुत अधिक पसन्द करते है क्योंकि उनके ताल औरस्वर बहुत तुल हुए है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

मंगलाचरण

सुर मुनि को परनाम करि, सुगम करौं सांगीत।
तानसेन बाणीसरस, जान गान की प्रीत॥

संगीत लक्षण

गीत वाद्य अरु नृत्य कौ, कह्यो नाम सांगीत।
तानसेन सुभ तेज मुनि, भरत मते हो थीत॥

संगीत भेद

द्वै प्रकार संगीत है, मारग देसी जानु।
मारग ब्रह्मादिक कह्यो, देसी देसनि मानु॥

हेतुहीन संगीत

गीत वाद्य अरु नृत्य रस, साधारण गुण जोइ।
तानसेन उपजै नही, सो संगीत न होइ॥

नाद लक्षण

द्वै प्रकार जो नाद है, राखे सुर मुनि जानि ।
तानसेन जू कह्यो है, बहु विधि तिन्हैं बखानि ॥

नाद भेद

नाहत नाद जो मुक्ति दे आहत रंजक जानि ।
भौ भंजन मींयाँ प्रकट, नादहि कह्यो बखानि ॥

आहत अनाहत लक्षण

नाहत प्रगटै आपुही, आहत दैव बजाय ।
तान सेन संगीत मत, इनकै कहै सुभाय ॥

नाहत लक्षण

नाद अनाहत को सदा, सुर मुनि करै जु ध्यान ।
गुरु उपदेसै मुक्ति दै, यह जानो परिमान ॥

आहत लक्षण

वायु अग्नि सजोगते, उपजत आहत नाद ।
तानसेन संगीत मत, कह्यो सुरनि ब्रह्मादि ॥

पंचगायन लक्षण

शिक्षा कारऽनुकार अरु, रसिक ऽनुरजिक नाम ।
भावक मीयां सरस कहि, गायन पंच प्रमान ॥

गायक

कवि गायन गुन मैं निपुन सोई सिच्छाकार ।
सिखै जथारथ सिद्ध है सो कहिए अनुकार ॥
आपुहि गावत आपुही, रीझत आपुहि मानि ।
रसिक गान तासो कह्यो, तानसेन जिय जानि ॥

गावे भाव बताय के जामे यह गुन होइ ।
तानसेन सांगीत मत, भावक गायक सोइ ॥

कवि

सब गुन जामें युक्त है, उत्तम कवि है सोय ।
जानै धातु को मात्र नहिं मध्यम कवि वै होंय ॥
मात्रा करे जो सोधि के अमिल धातु कह राखि ।
यति है मत संगीत के, अधम सो कवि सहि भाखि ॥

राग लक्षण

बहुली

देशी अरु आसावरी, खट रागिनि के संग ।
यहि बहुली जिय जानिए, उपजै सुनै अनंग ॥

बरारी

देस कार टोडो मिलै तिरवन सुरसम भाग ।
गावै तिरहुत देश में सदा बरारी राग ॥

पटमंजरी

मारू धवल धनासिरी, तेहि भारिये चारि ।
एकै सुर कै गाइये, पट मंजरी बिचारि ॥

घंटा राग

मारू केदारा मिलै, जयतसिरी अरु शुद्ध ।
घंटा राग सुजानिए, गावै सबै बिशुद्ध ॥

टेक

जित भैरो अरु कान्हरो, आधो २ होय ।
सिरी राग सारंग मिलि, टेक कहावै सोय !

नाग धुनि

सूहो मिलै मलार सो, केदारो सम भाग।
नाग लोक मोहन करै, नाग ध्वनि को राग ॥

अहीरी

देश करी कल्यान को, मिलै गूजरी स्याम।
सदा पियारी कान्ह की, राग अहीरी नाम ॥

रहस्य मंगल

जहाँ शंकरा भरन में, जुरै सोरठी आइ।
राग रहस मंगल वहै, मिलै अड़ानो जाइ ॥

सोरठ

बंग माल अरु गूजरी जिहि पंचम गंधार।
होई भैरवी के मिलै सोरठ को अवतार ॥

राजहंस

शिरी राग मालौ मिलै, जहाँ मनोहर होइ।
नारद भाष्यो भरत सो राजहंस है सोइ ॥

गान

(१)

जय शारदा भवानी भारती विद्यादानी, महाबाकज्ञानी तोहि ध्यावे।
सुर नर मुनि मानी, तोहिकू त्रिभुवन जानी,
जो जो जाकी मन इच्छा सोई सोइ पुजावे ॥ जय शारदा भवानी ॥
मंगला बुध दानी, ज्ञान की निधानी।
बीणा पुस्तक धारिनी, प्रथम तोहि गावे।
तान सेन तोरि अस्तुती कहाँ लो बखाने
सप्त स्वर तीन ग्राम राग रंग लय अच्छर आवे ॥

(२)

सरस्वती सुप्रसन्न होय मोकूं वाक् वानी।
खरज रिषब गान्धार, मध्यम पचम धैवत निषाद
गुर मुख आवत तान सानी।
रूप की निधानी, दयानी विद्यादानी
जगज्जननि शारदा संतन मन मानी
तान सेन मांगे ताल—स्वर अक्षर राग रंग
संगत सो गावै इच्छा फलदानी॥

(३)

जय गंगा जग तारिणी जगज्जननी पाप हारिणी।
वेद बरनी बैकुण्ठ निशानी।
भागीरथी विष्णु पदा पवित्रा त्रियथगा
जाह्नवी जग पावनि जग जानी॥
ईश शीश मध्य विराजित एई लोक पावन किये
जीव जन्तु खग मृग सुर नर मुनि मानी।
तानसेन प्रभु तेरी अस्तुति करे
तू दाता भक्ति जनन की मुक्ति की बरदानी॥

(४)

प्रथम उठि भोरही राधे कृष्ण कहो, मन जासो होवै सब सिद्ध काज।
इह लोक परलोक के स्वामी ध्यान धरो ब्रजराज॥
पतित उधारन जन प्रति पालन दीनदयाल नाम लेत जाय दुख भाज॥
तानसेन प्रभुको सुमिरो प्रात ही जग में रहे तेरी लाज॥

(५)

ए आज बांसुरी बजाई बन मध कौन रंग कौन ढंग फुंकि फुंकि।
सुनत श्रवण सुधि रहि नहि तन की भई हो
बावरी वृन्दावन दिशि हेरि झुकि झुकि॥

ब्रह्मा वेद पढ़त भूले शिव समाधि माह डोले
सुरनर मुनि मोहे देवांगना देखे लुकि लुकि ॥
सप्त स्वर तीन ग्राम अकईस मुर्छना ले तानसेन प्रभु
मुरली बजावत बोलत मोर कोकला कुहकि कुहकि ॥

(६)

चंद्र वदनि मृग नयनी तो मध तारका गंग पूतरी
कालिंदी इह विधि तेरे बनाय कीन्ही तिरबेनी ।
छुटी पोत कंठ दीपक मुखको जोत होत तामे
गुप्त प्रकट सरस्वती मिलिये न नेनी ॥
सुंदर रूप अनूपम शोभा त्रिभुवन पाप ताप हरिनी करत सुख चैनी।
तानसेन को करै निरमल तू दाता
भक्ति जनन की वैकुण्ठ नसेनी ॥

(७)

ए मोरे भाग्य जागे पिय भोरही सुधि लई ।
मै इतनो भलो मनावत हूं बलम हो तुम पर बलि गई ॥
अधरन अंजन महावर भाल मति गति और भई ।
तानसेन के प्रभु ठाढे रहो बलैया लैहौ कंह पायी तिय नई ॥

(८)

सुन मेरी भाई अपने प्यारे की
काहे कू चिन्ह दुरावत मोते तबही जानी तेरी चतुराई ।
रातकी जागी पागी प्रीतम संग मो सो छिपातव गात
नैन उनीदे तेरे लेत जम्हाई ॥
सुन्दरि मृगनयनी बोलत पिक बयनी प्यारी रंग भरी मूरत समाई ॥
तानसेन प्रिय बस कर लीन्हो धन धन महारानी सुख दाई ॥

(९)

प्यारे तुही ब्रह्मा तुही विष्णु तुही रुद्र,
तुही शक्ति तुही गणेश तूही सूरा ।

तुही जल तुही थल तुही पवन तुही आकाश तुही अधूरा तूही पूरा ॥
तुही छला तुही अलबेला तुही रोता तुही हंसता
तुही उठत तुही बैठत चलत तूही दूरा ।
तानसेन के प्रभू एकही अनेक होय जगमें व्याप रह्यो हजूरा ॥

(१०)

लंगर बटपार खेले होरी ।
बाट घाट कोउ निकस न पावै पिचकारिन रंग बोरी ॥
मै जो गई जमुना जल भरने गहि मुख मीजो रोरी ।
तानसेन प्रभु नन्द को ढौना वरज्यो न मानत गोरी ॥

(११)

कान्हा अब तें झगरो पसारो कैसे हो निरवारो ।
यह सब घेरो करत है तेरो रस अनरस कौन मंत्र पढ़ डारो ॥
मुरली बजाय कीन्हि सब भोरी लाज गई तज अपने २ में बिसारो ।
तानसेन के प्रभु तुम तुमही सो, तुम जीतो हम हारो ॥

(१२)

हे ओंकार महादेव संकर तुम सकल कला पूरण करत आस ।
निहचेही धरत ध्यान सुमरन रमन मान देखत दर्शन गई त्रास ॥
हरे दुःख द्वन्द सोहत जटा गंग मुंडमाल गले सोहै बाघम्बर वास ।
हर हर करत हरे पाप मिटे सकल दुःख सताप लहे मन उल्लास ॥
तानसेन सेवा ध्यान कर मन इच्छा फल पावे होय कैलास निवास ॥

(१३)

अनत रितु मान आयो पिय भोरहि मेरे ।
मोहि तो सुध भूल गई री मोहन मुख हेरे ॥
जियकी और सा मुहकी हमसो कहत है टेरे ,
तानसेन प्रभु तहा सिधाओ निशिमँह रहे जिन नेरे ॥

(१४)

शुभ नखत तखत बैठो राजत
छाजत हैं सब मुलक खलक जे विधना किये
सब छत्र धरे ते सब लागे सब सेवा करत।
धन्य धन्य चक्रवर्ती नरेश अकबर
दुःख हरण तानसेन ऐसो सुर पुर नर नरेन्द्र नर न।

(१५)

जिन करो झूठी मूठी बतियां
तिहारी प्रतीत मोहि नेक न आवत।
वे तो लबार कान्ह नहीं छोड़े
अपनी बान वह सौतन के गृह जावत॥
मेरे प्रत्यक्ष आय लाखन सौंहे खावत
पग परस परस निज चूक क्षमा करावत।
बार बार को रिसावन तानसेन ये नहि सोहावत।

(१६)

कौन सो रीती मानी साची कहो मन भावन।
निशि के जागे अनुरागे आये हो झूकन लागी
सब झूमि झूमि आये हो मोहि रिझावन
बचन बनावत बन नहिं आवत
कहे देत नैन बैन दरसावत
तानसेन के प्रभु वाहि सिधाओ
जहां सारी रैन रहे रति रन उपजावत॥

(भैरवी चौताल)

(१७)

रैन विहाय गई भोर भयो होरी कहां खेले प्यारे।
कवन नवन तिय पिय बिलमाये गिनत बीती मोहे सब निशितारे

कहुँ काजर कहुँ पीक लीक अधरन ंजन भाल महावर धरे।
तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक साँझ के गये हौ भोरे सिधारे॥

(१८)

नयन रँगाय आये हो लालन या होरी की रात।
संग सांवरे हित अपने की कहन न पायो बात॥
कहुँ कहुँ लाग्यो गुलाल कपोलन ढीले बोलत अतिही जम्हात
बलिहारा वा मोहिनी पर कैसे आवन पाये कहो जू कहो तुम प्रात
मन अपने की सो कह न सकत एक बात।
तानसेन बलिहार करे कैसे आवन पाये प्रात॥

(१९)

तखत बैठो महाबली ईश्वर होय अवतार।
देश के सेवा करत है बकसत कंचन थार।
जोई आवत सोई फल पावत मन इच्छा पूरण आधार।
तानसेन कहे शाह जलालदीन अकबर गुनो जनन के
काज करन को कियो करतार।

कवित्त

गौवन के जाये तैसे घर सो लपट रहे,
गधिया न गऊ होत गंग के नल्हाये से।
सिहन के जाये ताकी ऐरावत आन माने,
शियाल न सिह होत माटी के खिलाये से॥
हसन के जाये वो तो पियत मधुर पय,
वगुले न हंस होत पय के पिलाये से।
कहे मियां तानसेन सुनो शाह अकबर,
नाफ़ा नही होत खल ऊँचे पद पावसे।

रहीम

(१६१३—१६८६)

अब्दुर्रहीम खानखाना (रहीम वा रहिमन) सम्राट अकबर के अभिभावक, शिक्षक और साम्राज्य प्रबन्धकर्ता बैरम खां खानखाना के पुत्र थे। इनका जन्म लाहौर में सं० १६१३ वि०में हुआ था। बैरम खाँ के मरने पर सं० १६२६ वि०से इनके पालन पोषण शिक्षण आदि का सारा भार स्वयं सम्राट ने अपने ऊपर ले लिया। जब ये अवस्था को प्राप्त हुए और पढ लिख कर योग्य हुए तब बादशाह ने इन्हें मिर्जाखाँ की पदवी दी और ख़ाने-आज़म कोका की बहिन माहबानू बेगम से इनका विवाह कर दिया। सं० १६३३ वि० में ये गुजरात के सूबेदार बनाए गए और सं० १६३७ वि० में बादशाह ने इन्हें मीरअर्जी के पद पर नियुक्त किया और तीन वर्ष के अनंतर सुलतान सलीम का शिक्षक बनाया।

सं० १६३५ वि० में अहमदाबाद के बहुसंख्यक विद्रोहियों का अपनी अल्पसंख्यक सैन्य द्वारा दमन करने के उपलक्ष में बादशाह ने इन्हें खानखाना की पदवी दी और पंच हजारी का पद दे कर सम्पानित किया। इस युद्ध के अनंतर इनके पास जो कुछ था इन्हों सब दान कर दिया।

सं० १६ ४७ वि० में ख़ानखाना ने बाबर के आत्म चरित का तुर्की भाषा से फारसी मे एक उत्तम अनुवाद करके बादशाह को भेंट किया। इसकी बड़ी प्रशंसा हुई। उसी वर्ष ये वकील बनाए गए और इन्हें जोनपुर जागीर मे मिला।

सं० १६४६ वि० में खानखाना को मुलतान जागीर में दिया गया और इन्हें ठट्टा तथा सिंध पर अधिकार करने की आज्ञा

हुई। ठट्टा का नवाब मिर्जा जानीबेग़ ने बड़ी चतुराई के साथ युद्ध किया पर अंत मे परास्त होने पर उसने संधि का प्रस्ताव किया। यह घटना एक वर्ष के बाद हुई थी। खानखाना ने भी अन्नादि की कमी के कारण इन नियमों पर संधि कर ली कि मिर्जा जानीबेग़ दुर्ग सेहवन दे दे, अपनी पुत्री का विवाह खानखाना के पुत्र मिर्जा एरिज से कर दे और वर्षा बीतने पर बादशाह के दरबार में जावें। वहाँ का समुचित प्रबन्ध कर खानखाना लौट आये। वर्षा के अनंतर मिर्जा जानी बेग़ जब दरबार में नही गया तो खानखाना ने उसे फिर जाकर पराजित किया और बादशाह के सम्मुख उसे सपरिवार उपस्थित किया। बादशाह ने उस पर बहुत कृपा की। मुल्ला शिकेवी ने खानखाना के विजय पर एक मसनवी लिखी थी जिस पर उन्होंने उसे दो सहस्र अशरफ़ी पुरस्कार दिया था।

सं० १६५४ वि०में खानखाना ने बीजापुर पर एक घोर युद्ध के पश्चात् विजय पाई। इसकी खुशी में इन्होंने पचहत्तर लाख रुपये का सिक्का और सामान आदि लुटा दिया, किंतु इस विजय से इनका कोई विशेष लाभ नही हुआ। ये दरबार से बुला लिए गए। उसी वर्ष के अन्त में इनकी स्त्री माहबानू बेगम की मृत्यु हो गई।

सं० १६५७ वि० में बादशाह ने इन्हें और सुलतान दानियाल को अहमद नगर पर चढ़ाई करने के लिये भेजा। कई महीने घेरा रहा अन्त मे चांदबीबी से संधि प्रस्ताव करने की सम्मति की किंतु बीच ही में किसी हब्शी ने चांदबीबी को अचानक महल में घुसकर मार डाला। खानखाना बहादुर निज़ाम शाह को सपरिवार साथ लेकर बादशाह के पास बुरहान पुर गए। बादशाह ने निज़ाम शाह को ग्वालियर भेजकर कैद कर दिया।

अह्मद नगर के विजय के पहले ही बादशाह ने खानदेश पर अधिकार कर लिया था। आगरे में शाहजादा सलीम के विद्रोह करने का समाचार सुनकर बादशाह ने खानदेश का नाम दानदेश रखकर उसे बरार सहित एक सूबा बनाया और सुल्तान दानियाल को सूबेदार और खानखाना को दीवान नियत किया। इसी समय खानखाना की पुत्री जानी बेगम का सुलतान दानियाल से विवाह हुआ। इसके बाद बादशाह ने विद्रोही राजूमना और मालिक अंबर के विरुद्ध खानखाना को और अबुल फजल को दक्षिण का सारा प्रबन्ध सौंप कर स्वयं आगरे लौट आए। इधर सुलतान सलीम का विद्रोह शान्त हो गया था किंतु उन्होंने ओड़छा नरेश द्वारा अबुलफजल को मरवा डाला। थोड़े ही दिन बाद बादशाह अकबर की मृत्यु सं० १६६२ वि० में आगरे में हुई।

मालिक अंबर ने अपनी एक नई राजधानी स्थापित की जिसे आज कल औरंगाबाद कहते हैं और अपने राज्य के बहुत सुसंगठित कर लिया। बादशाह अकबर की मृत्यु पर उस ने अहमद नगर भी बिजय कर लिया। इस समय खानखाना दक्षिण में ही थे और सं० १६६५ वि० में बादशाह जहांगीर की आज्ञानुसार राजधानी लौट आए। बादशाह ने इनके इस कथन पर कि यदि बारह हज़ार नई सेना उन्हें सहायतार्थ मिले तो वह दक्षिण के विद्रोह का दो वर्ष के भीतर ही नाश कर देंगे उन्हें उतनी सेना, दस लाख सिक्का, हाथी घोड़े आदि दे कर बिदा किया किन्तु उनके जाते ही शाहजादा परवेज़ को तथा कई एक अन्य सेनानियों को उनकी सहायतार्थ भेज दिया। युवक शाहजादे से इनसे नहीं पटी जिससे वर्षा ऋतु में चढ़ाई करने के कारण इनकी हार हुई और मानहानि के साथ संधि

करनी पड़ी। जहांगीर ने इन्हें लौट आने की आज्ञा भेज दी।

सं० १६६८ वि० मे खानखाना को कन्नौज और काल्पी जागीर मे मिली जहाँ के विद्रोहियों को इन्हों ने शान्त किया था। दूसरे वर्ष ये अपने पुत्र के साथ दक्षिण का विद्रोह शान्त करने के लिए भेजे गए। इनके ज्येष्ठ पुत्र शानवाज़ खॉ ने मलिक अंबर को पूरी पराजय दी। सं० १६७३ वि० जहांगीर ने शाहजादे खुरम को ससैन्य दक्षिण भेजा और वे स्वयं मॉडू आये यहा उन्होंने गोलकुण्डा के सुलतानों तथा मलिक अंबर से उचित शर्तों पर संधि कर ली।

शाहजहॉ ने खानखाना को खानदेश, बरार और अहमद नगर का सूबेदार नियुक्त किया और बादशाह के आज्ञानुसार शाहनवाज खां की पुत्री से विवाह कर लिया। सं० १६७५ में खानखाना दर्बार मे आए और सात हजारी सवार का मंमव खिलअत आदि पाकर अपनी सूबेदारी पर दक्षिण लौट गए। दूसरे वर्ष इनके ज्येष्ठ पुत्र शाहनेवाज खां की मृत्यु हो गई। इनके एक वर्ष अनंतर इनके दूसरे पुत्र रहमानदाद की भी मृत्यु हो गई।

सं० १६७६ वि० में जब पर्वेज को युवराज और महावत खां को खानखाना की पदवी देने पर शाहजहां विद्रोही हो गये थे तो उन्होंने संदेह वश खानखाना और उनके पुत्र दाराब खां को पकड़ कर असीर गढ में भेज दिया। पर कुछ दिनों में अपने विरुद्ध कोई कार्रवाई आदि न करने का वचन लेकर छोड़ दिया। किन्तु थोड़े दिन पश्चात जब शाहजहां ने बंगाल और बिहार पर अधिकार करके खानखाना के पुत्र दाराब खॉ को वहॉ का सूबेदार बनाया और स्वयं प्रयाग की ओर बढ़ रहा था, जहॉ महावत खॉ ने खानखाना को उस पर शंका

करता था, कैद में डाल दिया। सं० १६८२ वि० में जहाँगीर ने इन्हें महावत खाँ की कैद से छुड़ा कर अपने पास बुला लिया और बहुत कुछ इधर उधर की बातें कह कर इन्हें इनका मंसब और पदवी आदि फेर दिया जिस पर इस वृद्ध सर्दार ने तत्कालीन यह शेर पढ़ा—

भरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताईदाते रब्बानी।
दोबार: जिन्दगी दाद: दोबार: खान खानानी॥

अर्थात—ईश्वरीय सहायता से जहांगीर की कृपा से मुझे दूसरी बार जीवन और खानखाना की पदवी मिली।

खानखाना अपनी जागीर लाहौर को चले गए। ये वहीं ठहरे हुए थे उस समय महावत खां इनके पास आया किन्तु इन्होंने उसके पुराने व्यवहार को सोच कर उसका कोई स्वागत नहीं किया। वह चला गया। काबुल से शाही सेना के लौटते समय विद्रोही महावत खां ने जहांगीर को पकड़ लिया पर उन्हें कैद नहीं रख सकने के कारण भाग गया। नूरजहां ने खानखाना को महावत खां के विरुद्ध भेजा पर वह दिल्ली पहुंच कर बहत्तर वर्ष की अवस्था में स० १६८६ वि० में इस संसार से चल बसे।

खानखाना जैसे राजनीति और युद्ध कुशल थे वैसे ही साहित्य कुशल भी थे। ये अरबी, तुर्की, फारसी संस्कृत और हिंदी के विद्वान थे और कई अन्य देशी भाषाएं भी जानते थे। हिन्दी, संस्कृत, फारसी मे ये अच्छी कविता करते थे। कविता में ये अपना उपनाम रहीम या रहिमन रखते थे। ये बड़े उदार हृदय दानी और गुणग्राहक थे। अकबर के समान इनकी सभा भी सदा पंडितों से भरी रहती थी। इनके नाम पर अब्बुल बाकी नामक विद्वान ने मआसिरी—रहीमी नामक

एक इतिहास लिखा है जिसमें मुसलमानों के भारत में आने के समय से अकबर के समय तक का वृत्तान्त है। इनके दान की कई कथाएं मशहूर है। गंग कवि को एक ही छंद पर छत्तीस लाख रुपये इन्हों ने दिये थे। अंतिम अवस्था में इनकी आर्थिक अवस्था बहुत हीन हो गई थी। दान शक्ति की क्षीणता से इनको बड़ा मानसिक कष्ट होता था। उस दशा में इन्होंने कहा—

ये रहीम दर दर फिरै माँग मधूकरि खाहि।
यारो यारी छोड़ दो वे रहीम अब नाहिं॥

इतने पर भी एक याचक ने इन्हें बहुत तंग किया तब इन्होंने रीवां नरेश से एक लाख रुपये उसे मँगवा कर दिये।

इनको चार पुत्र थे। दो का वृतान्त ऊपर लिखा जा चुका है। तीसरे पुत्र दाराव खां को महावत खाँ ने अचानक मार डाला और उसके सिर को कपड़े में लपेट कर खानखाना के पास कैद खाने में तर्बूज के नाम पर भेट स्वरूप भेज दिया। खानखाना ने उसे देख कर केवल इतनाही कहा कि तर्बूजे शहीदी है। चौथा पुत्र अमरूल्ला दासी पुत्र था वह जवानी मे मर गया था।

वैरमखाँ शीआ मुसलमान थे परतु यह सुन्नी थे। कुछ लोगों का कहना है कि ये प्रगट रूप से सुन्नी थे किन्तु हृदय से पिता के ही धर्म को मानते थे। जो हो इनकी राम कृष्ण पर भी प्रगढ़ भक्ति थी जिसके साक्षी इनके दोहे आदि है।

फारसी में बावर के आत्म चरित्र और एक दीवान तथा संस्कृत में खेट कौतुकम् नामक ज्योतिष ग्रंथ के अतिरिक्त हिन्दी में इन्होंने निम्न लिखित पुस्तके लिखी है। रहीम सतसई, वरवै नायका भेद, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी और श्रृंगार सोरठ। लगभग तीन सौ दोहे वरवै नायिका भेद, मदना

छक और शृंगार सोरठ के छ सोरठों के अतिरिक्त इनका और कोई काव्य प्राप्त नहीं है। इनकी कविता को देखने से पता चलता है कि इनका सांसारिक अनुभव बहुत बढ़ा—चढ़ा था। कविताएँ इनकी बड़ी हृदय हारिणी हुई है। नीचे इनकीकविता के कुछ नमूने हम देते हैं—

दोहा

तै रहीम मन आपनो, कीन्हो चारु चकोर।
निसि वासर लागो रहै कृष्ण चन्द्र की ओर॥ १॥

अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव भाल॥ २॥

सर सूखे पछी उड़ै औरै सरन समाहि।
दीन मीन बिन पच्छि के कहु रहीम कह जाहि॥ ३॥

धूर धरत नित सीस पर कहु रहीम केहि काज
जिहि रज मुनि पत्नी तरी सो ढूँढत गजराज॥ ४॥

दीन सबनि को लखत है दीनहि लखै न कोय।
जो रहीम दीनहि लखे दीन बन्धु सम होय॥ ५॥

राम न जाते हिरन सँग सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ होति आपने हाथ॥ ६॥

कहि रहीम कैसे बनै बेरि केरि को संग।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग॥ ७॥

जो रहीम आछो बढ़ै तौ तितही इतराइ।
प्यादे से फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाइ॥ ८॥

खीरा को मुख काटिके मलिये नौन लगाय।
रहिमन कडुए मुखन को चहियत यही सजाय॥ ९॥

नैन सलोने अधर मधु कहि रहीम घटि कौन ।
मीठो भावै नौन पर अरु मीठे पर नोन ॥ १० ॥

जो विषया संतनि तजी मूढ़ ताहि लिपटात ।
जो नर डारत बमन करि स्वान स्वाद सों खात ॥ ११ ॥

जो रहिमन दीपक दशा तिय राखति पट ओट ।
समय परे ते होत है वाही पट की चोट ॥ १२ ॥

रहिमन राज सराहियें शशि सम सुखद जो होय ।
कहा बापुरो भानु है तप्यो तरैयन खोय ॥ १३ ॥

कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय ॥ १४ ॥

कहि रहीम या पेट सों, क्यो न भयो तू पीठ ।
रीते अनरीते करत भरे विगारत दीठि ॥ १५ ॥

जो गरीब सों हित करै धनि रहीम वे लोग ।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥ १६ ॥

कह रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसग ।
चदन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग ॥ १७ ॥

आप न काहू काम के डार पात फल फूल ।
औरन को रोकत फिरे रहिमन पेड़ बबूल ॥ १८ ॥

रहिमन सूधी चाल सों प्यादो होत वजीर ।
फरजी मीर न हो सके टेढ़े की तासीर ॥ १९ ॥

बड़े पेट के भरन में है रहीम दुख बाढ़ि ।
गज के मुख बिधि याहिते दए दांति दुइ काढ़ि ॥ २० ॥

ज्यों रहीम सुख होत है बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री अखियां निरखि अखियन को सुख होत ॥ २१ ॥

ओछे काम बड़े करै तौ न बड़ाई होइ ।
ज्यो रहीम हनुमन्त को गिरधर कहै न कोइ ॥ २२ ॥

जो बड़ेन को लघु कहो नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरधर मुरलीधर कहे कछु दुख मानत नाहि ॥२३ ॥

शशि संकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम ।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं घटत घटत घटि सीम ॥ २४ ॥

यह रहीम निज संग लै जनमत जगत न कोइ ।
बैर प्रीति अभ्यास यश होत होत ही होइ ॥ २५ ॥

बड़े दीन को दुख सुने लेत दया उर आनि ।
हरि हाथी सो कब हतो कहु रहीम पहिचानि ॥ २६ ॥

रहिमन राम न उर धरे, रहत विषय लिपटाय ।
पशु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय ॥ २७ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि दुर-थल जैयत भागि ।
ठाढ़े हूजत घूर पर जब घर लागति आगि ॥ २८ ॥

प्रीतम छवि नयननि बसो पर छवि कहाँ समाय ।
भरो सराय रहीम लखि आप पथिक फिरिजाय ।२९।।

गुरुता फबै रहीम कहि फबि आई है जाहि ।
उर पर कुच नीके लगै अन्त बतौरी आहि ॥ ३० ॥

कुटिलनि संग रहीम कहि साधू बचते नाहि ।
ज्यों नैना सैननि करै उरज उमैठे जाहि । ३१ ॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि गंग नाम भा धीम ।
केहि की प्रभुता नहिं घटी पर घर गये रहीम ॥ ३२ ॥

मानसरोवर ही मिलै हंसनि मुक्ता भोग ।
सफरिन भरे रहीम सर बकुलनि के ही जोग ॥ ३३ ॥

रहिमन नही सराहिये लेन देन की प्रीति ।
प्राणनि बाजी लग रही हारि होइ कै जीति ॥ ३४ ॥

रहिमन रिस सहि तजत नहि बड़े प्रीति की पौरि ।
मूकनि मारति आँवही नीद विचारी दौरि ॥ ३५ ॥

मनसिज माली की उपज रहिमन कही न जाइ ।
फूल श्याम के उर लगे, फल श्यामा उर आइ ॥ ३६ ॥

जेहि रहीम तन मन दियो कियो हिये बिच मौन ।
तासों सुख दुख कहन को, रही बात अब कौन ॥ ३७॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलति रहीम ।
पेट लागि वैराट घर तपत रसोई भीम ॥ ३८ ॥

सब कोऊ सबसों करै राम जुहार सलाम ।
हित रहीम तब जानिए जा दिन अटके काम ॥ ३९ ॥

ज्यो रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोइ ।
बारे उजियारो करै बढ़े अँधेरो होइ ॥ ४० ॥

छोटिन सो सोहैं बड़े कहि रहिमन इहि लेख ।
सहसनि हयको बाधिये लै दमरी को मेख ॥ ४१ ॥

सम्पति भरम गमाइ के, हाथ रहत कछु नाहिं ।
ज्यों रहीम शशि रहत है दिवस अकाशहि माहि ॥४२।

अनुचित उचित रहीम लघु करहिं बड़नि के जोर ।
ज्यो शशि के सयोग ते पचवति अग्नि चकोर ॥ ४३ ॥

काम कछू आवै नहीं मोल न कोऊ लेइ ।
बाजू टूटै बाज को साहब चारा देइ ॥ ४४ ॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ ।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाइ ॥ ४५ ॥

मागै घटत रहीम पद कितौ करौ बड़ काम।
तीनि पैंड़ बसुधा करी तऊ बामनै नाम ॥ ४६ ॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशुते अधिक, रीझे हूँ नहि देत ॥ ४७ ॥

रहिमन कबहूँ बडनि के, नहीं गर्व को लेस।
भार धरत संसार को, तऊ कहावत शेस ॥ ४८ ॥

रहिमन नीचनि सग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारनि हाथ लखि, मद समझै नर ताहि ।४९॥

रहिमन अब वे तरु कहा जिनकी छांह गभीर।
अब बागनि बिच देखियत, सेहुड कज करीर॥ ५० ॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किनि कोइ।
रहिमन बिगरे दूध को मथे न माखन होइ ॥ ५१ ॥

मथत मथत माखन रहे दही मही बिलगाइ।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराइ ॥ ५२ ॥

होइ न जाकी छांह ढिग, फल रहीम अति दूरि।
बाढ़ो सो बिन काजही जैसे तार खजूरि ॥ ५३ ॥

यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥ ५४ ॥

रहिमन निज मन की व्यथा, मनही राखो गोइ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोई ॥ ५५ ॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिननि के फेर।
जब नीके दिन आइ हैं, बनत न लागै देर ॥ ५६ ॥

गहि शरणागत रामकी, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार करि, और न कछू उपाव ॥५७॥

रहिमन वे नर मरि चुके, जे कहुँ मांगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मरे, जिन मुख निकसति नाहिं ॥५८॥

जाल परे जल जात बहि तजि मीननि को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाड़ति छोह ॥ ५९ ॥

धन दारा अरु सुतनि में रहत लगाये चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं गाढ़े दिन को मित्त ॥ ६०॥

मुक्ता करै कपूर करि चातक जीवन जोइ।
एतो बडो रहीम जल व्याल बदन विष होइ ॥ ६१ ॥

शशि की शीतल चाँदनी सुन्दर सबहि सुहाय।
लगे चोर चित में लटी घटि रहीम मन आय ॥ ६२ ॥

अमृत ऐसे बचन में रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरहु मे मिली निरस बाँस की फाँस ॥ ६३ ॥

रहिमन मनहि लगाइ के देखि लेहु किन कोइ।
नरको वश करिबो कहा नारायण वश होइ ॥ ६४ ॥

रहिमन अँसुआ नयन ढरि जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ ॥ ६५ ॥

गुनते लेत रहीम जन सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहु होत है मन काहू को बाढ़ि ॥ ६६ ॥

रहिमन मन महराज के दृग सो नही दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन मन तिहि हाथ बिकान ॥ ६७ ॥

विरह रूप घनतम भयो अवधि आस उद्योत।
ज्यो रहीम भादों निशा चमकि जात खद्योत ॥ ६८ ॥

रहिमन लाख भली करो अगुनी अगुन न जाइ।
राग सुनत पय पियत हूँ साँप सहज धरिखाइ ॥ ६९ ॥

जैसी परे सो सहि रहै कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब शीत घाम अरु मेह ॥ ७० ॥

शीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तिहि रवि को कहा जो घटि लखै उलूक ॥७१॥

नहि रहीम कछु रूप गुण नहि मृगया अनुराग।
देसी स्वान जुराखिये भ्रमत भूंखही लाग ॥ ७२ ॥

कागज कैसो पूतरा सहजहि मे घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खैचत बाय ॥ ७३ ॥

रहिमन कहि इक दीप ते प्रगट सबै दुति होइ।
तनु सनेह कैसे दुरे हग दीपक जरु दोइ ॥ ७४ ॥

तरुवर फल नहि खात है सरवर पियहि न पानि।
कहि रहीम परकाज हित संपति सुचहि सुजान ॥७५॥

तै रहीम चित आपनो कीन्हों चतुर चकोर।
निशि वासर लागो रहै कृष्ण चन्द्र की ओर ॥ ७६ ॥

रीति प्रीति सबसो भली बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जन्म की बहुरि न संगति होत ॥ ७७ ॥

कहि रहीम धन बढ़ घटे जाति धनन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा घास बेच जे खात ॥ ७८ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं नित हानि को जौन होइ नित हानि ॥ ७९ ॥

को रहीम परद्वार पर जात न जिय पछितात।
सम्पति को सब जाति है विपति सबै लै जात ॥ ८० ॥

जो रहीम होती कहूँ प्रभु गति अपने हाथ।
तौ को धौं किहि मानतो आप बड़ाई साथ ॥ ८१ ॥

जो रहीम मन हाथ है मनसा कहु किन जाहिं।
जल में जो छाया परी काया भीजत नाहि॥ ८२॥

तिहि प्रमाण चलिबो भलो सो भवदिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पारते जो रहीम बढ़ि जाय॥ ८३॥

यों रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सह शान्ति।
उवत चन्द्र जिहि भांति सो अथवत वाही भांति॥८४॥

माह मास लहि टेसुआ मीन परे थल और।
त्यो रहीम जग जानिए छुटे आपनो ठौर॥ ८५॥

कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहुरीति।
विपति कसौटी पै कसौ, तेई सांचे मीत॥ ८६॥

तबही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीवो जगत तनिक न रुचै रहीम॥ ८७॥

रहिमन दानि दरिद्रतर तऊ जाचिबे जोग।
ज्यो सरितन सूखी परे कुआ खनावत लोग॥ ८८॥

रहिमन देखि बड़ेन की लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवै सुई कहा करै तरवारि॥ ८९॥

बड़ माया को दोष यह जो कबहू घटिजाय।
तौ रहीम मरिबो भलो दुख सह जिए बलाय॥ ९०॥

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कज तजि अन्त बसि कहा और को भाय॥९१।

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहि।
पै रहीम चातक रटनि सरवर को कोउ नाहि॥ ९२॥

अमर बेलि बिन मूलकी प्रति पालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि खोजत फिरिए काहि॥ ९३॥

रहिमन अत्ति न कीजिए गहि रहिये निज कानि ।
सहिजन अति फूलै तऊ डार पात को हानि ॥ ९४ ॥

सरवर के खग एक से बाढ़त प्रीति न धीम ।
पै मराल को मान सर एकै ठौर रहीम ॥ ६५ ॥

कहि रहीम केतिक रही केती गई बिहाय ।
माया ममता मोह परि अन्त चलै पछिताय ॥ ९६ ॥

जो रहीम करिबो हुतो ब्रज को यही हवाल ।
तौ कत मातहि दुख दियो गिरिवरधर गोपाल ॥९७ ॥

दीरघ दोहा अर्थ के आखर थोरे आहिं ।
ज्यो रहीम नट कुन्डली सिमिटि कूदि कढ़ि जाहि॥९८॥

जे रहीम विधि बड़ किये, को कहि दूसर काढ़ि ।
चन्द दूबरो कूबरो तऊ नखत ते बाढ़ि ॥ ९९ ॥

रहिमन याचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायण हूँ को भयो बावन आँगुर गात ॥ १०० ॥

ये रहीम घर घर फिरै मांगि मधुकरी खाहि ।
यारो यारी छाड़ दो अब रहीम वे नाहि ॥ १०१ ॥

हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान शर पूर ।
खैचि आपनी ओर को डारि दियो पुनि दूर ॥ १०२ ॥

सम्पति संतति जान के सबको सब कुछ देइ ।
दीन बंधु बिन दीन की को रहीम सुधि लेइ ॥ १०३ ॥

समय दशा कुल देखि के लोग करत सन्मान ।
रहिमन दीन अनाथ को तुम बिन को भगवान ॥१०४॥

पुरुष पूजै देवरा तिय पूजै रघुनाथ ।
कह रहीम दोउ ना बनै पड़ो बैल को साथ ॥ १०५ ॥

एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो फूलै फले अघाय ॥१०६॥

पात पात को सींचिबो बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को कहौ बरैगो कौन ॥१०७॥

रहिमन धोखे भावसे मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति कामादिक को धाम ॥ १०८॥

रहिमन जो तुम कहत ते सगत ही गुण होय।
बीच उखारी रमसरा रस काहे ना होय । ११०॥

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरैं मोती मानुष चून ॥ १११॥

रहिमन रहिबो वह भलो, जौ लों शील समूच।
शील ढील जब देखिये तुरत कीजिये कूच ॥ ११२॥

अमी पियावे मान बिन रहिमन मोहि न सुहाय।
मान सहित मरिबो भलो जो विष देइ बुलाय ॥११३॥

अच्युत चरण तरंगिणी शिव शिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी कीजै इन्दव माल ॥ ११४॥

मुनि नारी पाषान ही कपि पशु गुह मातंग।
तीनौ तारे रामजू तीनौ मेरे अंग ॥ ११५॥

बड़ाई रहिमन जगत की कूकर की पहिचान।
प्रीत करै मुख चाटई बैर करैं तन हानि ॥ ११६॥

रहिमन छोटे नरन तें होत बड़े नहि काम।
मढ़ो दमामो ना बनै सौ चूहे के चाम ॥ ११७॥

रहिमन ओछे नरन सो बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के दोउ भक्ति विपरीति ॥ ११८॥

रहिमन क्षमा बड़ेन को छोटेन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो जो भृगु मारी लात ॥ ११९ ॥

रहिमन कठिन चितान ते चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को चिन्ता जीव समेत ॥ १२० ॥

दोनों रहिमन एक से जौलों बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक रितु बसन्त के माहिं ॥१२१॥

पावस देखि रहीम मन कोइल साधै मौन।
अब दादुर वक्ता भये हमको पूछत कौन ॥ १२२ ॥

समय लाभ सम लाभ नहि समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी समय चूक का हूक ॥१२३॥

कैसे निबहै निबल जन करि सबलन को गैर।
रहिमन बस सागर विपै करत मगर सों बेर ॥ १२४॥

तासे हो कुछ पाइये कीजै जाकी आस।
रीते सरवर पर गये कैसे बुझति पियास ॥ १२५॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहि नहीं धरम जस दान।
भूपर जन्म वृथा धरै पशु बिन पूंछ विषान ॥ १२६ ॥

को अचरज कासों कहै नद मे सिन्धु समान।
रहिमन आपहि आप मे हेरन हार हिरान ॥ १२७ ॥

बरवै नायिका भेद

लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जड़ी किनरिया बिथुरे बार ॥ १ ॥

लागेउ आनि नवेलिहि मन सिज बान।
उकसन लाग उरोजवा दृग तिरछान ॥ २ ॥

कवन रोग दुहु छतिया उपजेउ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा लगि जनु जाय ॥ ३ ॥

भोरहि बोलि कोइलिया बढ़वति ताप।
घरि घरि एक घरिअवा रहु चुप चाप ॥ ४ ॥

सुनि सुनि कान मुरलिया रागन भेद।
गैल न छोड़त गोरिया गनति ने खेद ॥ ५ ॥

मोहि बरजोग कान्हैया लागउँ पाँय।
तुहुँ कुलपूज देवतवा होहु सहाय ॥ ६ ॥

ग्रीषम दवत दवरिया कुञ्ज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनिअहि बाढ़ी पीर ॥ ७ ॥

आपुहि देत जवकवा गूँधत हार।
चुनि पहिराय चुनरिया प्रान अधार ॥ ८ ॥

खीन मलिन विष भैया औगुन तीन।
मोहि कहत विधु वदनी पिय मति हीन ॥ ९ ॥

टूट खाट घर टपकत टटियो टूटि।
पिय के बाह सिरहनवाँ सुख के लूटि ॥ १० ॥

प्रीतम इक सुमिरिनिया मुहि देइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा करब निबाहु ॥ ११ ॥

लखि अपराध पियरवा नहि रिस कीन।
बिहँसत चँदन चउकिया बैठक दीन ॥ १२ ॥

मै पठयउँ जिहि कमवा आयसि साधि।
छुटि गो सीस को जुरवा कसिके बांधि ॥ १३ ॥

चूनत फूल गुलबा डार कटील।
टुटि गो बन्द अंगियववा फटि पट नील ॥ १४ ॥

मदनाष्टक

शरद निशि निशीथे चांद की रोशनाई।
सघन बन निकुंजे कान्ह बसी बजाई॥
रति पति सुत निद्रा साइयां छोड भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ १॥

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चांदनी मे खडा था॥
कटि तट बिच मेला पात सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥ २॥

दृग छकित छबीली छेगरा की छरी थी।
मणि जटित रसीली माधुरी मूँदगी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि न सकी जैसा श्याम का हस्त देखा॥ ३॥

कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुल्फें।
अलि कलित बिहारी आपने जी की कुलफें॥
सकल शशि कला को रोशनी हीन लेखौं।
अहह ब्रज लला को किस तरह फेर देखौं॥ ४॥

जरद बसन वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपला से कुन्डलि झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥ ५॥

तरल तरनि सी है तीर सी नोकदारैं।
अमल कमल सी है दीर्घ है दिल विदारैं॥
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखैं।

बिलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आखैं॥ ६ ॥
भुजंग किधौ है काम कमनैत सोहैं।
नटवर तब मोहैं बाकुरी मान भौंहैं।
सुनु सखि ! मृदु बानी बे दुरुस्ती अकिल में।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में॥ ७ ॥
पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
असल अमृत प्याला क्यो न मुझको पिलाओ॥
इति बदति पठानी मन मथागी बिरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ ८ ॥

स्फुट पद

जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन को लखि कै ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नंदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरि कै चितई तब भाव रहीम यही उर आनो।
ज्यों कमनीय कमानक में फिरि तीर सो मारि ले जात निसानो॥१॥

कमल—दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहि सखी मो मनते मंद मंद मुसकानि।
यह दसननि—दुति चपलाहूँ ते महा चपल चमकानि॥
बसुधा की बस करी मधुरता सुधा पगी बतरानि।
चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुत माल थहरानि॥
नृत्य समय पीताम्बर हूँ की फहरि फहरि फहरानि।
अनुदिन श्री वृन्दाबन ब्रजते आवन आवन जानि॥
छबि रहीम चितते न टरति है सकल स्याम की बानि॥ २॥

दृष्टात्तत्र विचित्रतां तरुलतां, मै था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंग शाव नयना, गुल तोडती थी खड़ी॥
उन्मद्भ्रू धनुषा कटाक्ष विशिखैः, घायल किया था मुझे।

तत्सीदामि सदैव मोह जलधौ, हे दिल गुजारो शुकर ॥ ३ ॥
एकस्मिन्दिवसावसान समये, मैं था गया बाग़ में।
काचित्तत्र कुरंगबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
तो दृष्ट्वा नव यौवना शशि मुखी मैं मोह में जा पड़ा।
नो जीवामि त्वया बिना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले ॥ ४ ॥

संस्कृत श्लोक।

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्णया भूमिका।
व्योमाकाश खखांबराब्धि बसुवत त्वं प्रीतयेऽद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि मे।
नोचेद्ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकाः ॥ १ ॥

रत्ना करोस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा।
किं देय मस्ति भवते जगदीश्वराय ॥
राधा गृहीत मनसे मनसे चतुभ्यं।
दत्तं मया निज मनस्तदिदं गृहाण ॥ २ ॥

शेख सादी

(१५८०)

शेख सादी दक्षिण के किसी नगर के रहने वाले थे उनका केवल इतना हाल मालूम है कि वह प्रसिद्ध शीराज के फारसी के कवि सम्राट शेख सादी के समान ही अपने को हिंदुस्तान का कविसम्राट समझते थे। ये मलिक मोहम्मद जायसी के समकालीन थे अस्तु इनका कविता काल लगभग सं० १८५० के समझना चाहिए। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

रेखता

कश्कः चू दीदम बर रुख्त गुफ्तम के यह का दइत है।
गुफ्ता के दुर हो बावरी इस शहर की यह रीत है॥
हमना तुम्हन को दिल दिया तुम दिल लिया औ दुख दिया।
हम यह किया तुम वह किया ऐसी भली यह पीत है।
सादी के गुफ्ता रेखता दर रेखता दुर रेखता।
शीरो शकर हम रेखता हम रेखता हम गीत है॥

[भुजंगप्रयात]

सदा रंग रातो जैसे पील हाती, बिना तेल बाती दिवा से जले हैं।
पीवे ज्ञान ज्ञानी धरे ध्यान ध्यानो, जिन्होने मजानी सो देखे डरे हैं॥
पीवे शूरमा जो करे खेत लोहा, कटक सें सिरोही जो सन्मुख खरे है।
कहे शेख साह़ी लगे भांग प्यारी, जो पीवे अमारी तो ख्वारी करे है॥

[सवैया]

कहना उस पै जो करै कहना, न करै कहना तो कहा कहना।
रहना उस पै जो लखे गुन को, गुनको न लखे तो कहा रहना॥
बहना उस पै हित होत जहाँ हित होत नही तो कहा बहना।
लहना अपना कहि जात नहीं जो लिलाट लिखे सो वही लहना॥१॥
महियारी चली महि बेचन कूं पय मांहि मिलाइ भई सफरानी।
लोभ के लच्छन पाय करे जिव जानत है एक आतम ज्ञानी॥
जाई बजार मे बेच दिया तब दोनो भई मन में हरषानी।
बानर न्याय कियो अति सुन्दर दूध को दूध अरु पानी को पानी॥२॥

रसखान

(१६१५—१६८५)

रसखान दिल्ली के पठान थे। इनका जन्म सं० १६१५ वि० और मरण सं० १६८५ वि० के लगभग कहा जाता है। २५२ वैष्णवों की वार्ता मे लिखा है कि युवावस्था मे रसखान जी एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। ये हमेशा उसी लड़के के साथ घूमा करते थे एक पल के लिये भी उसका साथ नही छोड़ते थे, यहाँ तक कि उनका जूठन भी खाया करते थे। इससे जाति बिरादरी में इनकी बड़ी हँसी उड़ती थी पर ये उसकी लेश मात्र भी परवाह नही करते थे। एक बार चार वैष्णवों ने आपस मे बातचीत करते-करते कहा कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगावै जैसा कि रसखान ने साहूकार के लड़के मे लगाया है। रसखान ने इसे सुन लिया और वे तत्काल वैष्णवों से मिले। वैष्णवों ने इनके सामने कृष्ण की महिमा और लीलाओं का वर्णन किया तथा श्रीनाथ जी का चित्र दिखाया। तभी से इनका चित्त लड़के की ओर से उचट कर विष्णु भगवान मे जा लगा। कुछ दिन बाद ये वेष बदल कर श्रीनाथ जी के मंदिर में जा रहे थे कि पौरिये ने इन्हें पहचान लिया और रोक दिया। ये तीन दिन तक भूखे प्यासे वहीं गोविंद कुंड पर बैठे रहे। इस पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को दया आई और उन्होंने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। अपनी भक्ति और निष्ठा के कारण ये गोसाई जी के प्रधान शिष्यों में हो गए। ये बड़े प्रेमी जीव थे प्रेम की महिमा को ये भली भांति समझते थे। इनकी कविता भर में प्रेम की ही प्रधानता है। भक्त और प्रेमी होकर भी इन्होंने शृंगार रस की भी बड़ी ललित कविता की

है। इन्होंने शुद्ध ब्रज भाषा में कविता की है। इनकी कविता में मिलत वर्ण बहुत ही कम आये हैं। अनुप्रास आदि अलंकारों का भी प्रयोग बहुतायत से किया है इनकी दो पुस्तकें मिलती हैं: एक 'सुजान रसखान' और दूसरी 'प्रेम वाटिका'। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

प्रेम

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो मरै जगत क्यों रोय ॥ १ ॥

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढ़िग बहुरि जात नाहि रसखान ॥ २ ॥

प्रेम वारुनी छानि के, वरुन भये जलधीस।
प्रेमहि ते विष पान करि पूजे जात गिरीस ॥ ३ ॥

प्रेम रूप दर्पन अहो, र ै अजूबो खेल।
यामें अपनो रूप कछु, लखि परि है अनमेल ॥ ४ ॥

कमल तंतु सो छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि प्रेम पंथ अनिवार ॥ ५ ॥

श्रुति पुरान आगम स्मृतिहिं, प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहि उपज हिय, प्रेम बीज ँकुवार ॥ ६ ॥

आनँद अनुभव होत नहि, बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान ॥ ७ ॥

ज्ञान कर्म ऽरु उपासना, सब अहिमिति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहि होत बिन, किये प्रेम अनुकूल ॥ ८ ॥

शास्त्रन पढ़ि पडित भये, कै मौलवी कुरान।
जुपै प्रेम जान्यो नही, कहा कियो रसखान ॥ ९ ॥

बिनु गुन जोबन रूप धन बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥ १० ॥
अति सूछम कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब ते सदा, नित इक रस भरपूर ॥ ११॥
जग मैं सब जान्यो परै, अरु सब कहै कहाय।
पै जगदीस अरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥ १२ ॥
जेहि बिनु जाने कछु नहीं, जान्यो जात बिसेस।
सोइ प्रेम जोइ जानिकै, रहि न जात कछु सेस ॥ १३ ॥
दम्पति सुख अरु विषय रस पूजा निष्ठा ध्यान।
इनते परे बखानिये शुद्ध प्रेम रसखान ॥ १४ ॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सबिसेह ॥ १५ ॥
इक अंगी बिनु कारनहि इक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सरबस्व जो सोई प्रेम प्रधान ॥ १६ ॥
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानो सोय ॥ १७ ॥
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत यहि ढिग बहुरि जात नाहि रसखान ॥ १८ ॥
हरि के सब आधीन पै हरी प्रेम आधीन।
याही ते हरि आपुही याहि बड़प्पन दीन ॥ १९ ॥
अकथ कहानी प्रेम की जानत लैली खूब।
दो तनहूँ जँह एक भे मन मिलाई महबूब ॥ २० ॥
अति पतरो अति दूर, प्रेम कठिन सबमें सदा।
नित इकरस भरपूर, जग में सब जान्यो परै ॥ २१ ॥

सवैया

(१)

मानुस हौं तो वही रसखान बसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पशु हौ तो कहा बस मेरो चरों नित नन्द के धेनु मझारन॥
पाहन हौ तो वही गिरि को जो कयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
औ खग हौ तो बसेरो करौ वहि कालिंदि कूल कदम्ब की डारन॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाई चराई बिसारौं॥
रसखानी कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटि करौं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

(३)

धूर भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरे अँगना पग पैंजनी बाजती पीरी कछोटी॥
वा छबि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाँथ सों लै गयो माखन रोटी॥

(४)

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहुँ जाहि निरन्तर गावैं।
जाहिं अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहिं अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाँछ पे नाँच नचावैं॥

(५)

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहूँ तू न गई वहि ठैंया।
या ब्रज मे सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया॥

कोऊ न काहु की कानि करै कछु चेटक सो जु कस्यो जदुरैया।
गाईगो तान जमाईगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥

(६)

दोऊ कानन कुण्डल मोर पखा सिर सोहे दुकूल नयो चटको।
मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको॥
सुभ काछनि बैजनि पैजनि पामन आमन मे न लगो झटको।
वह सुन्दर को रसखानि अली जो गलीन मे आई अबै अटको॥

(७)

तेरी गलीन मे जा दिन ते निकसे मन मोहन गोधन गावत।
जो ब्रज लोग सों कौन सी बात चलाइ कै जो नहि नैन चलावत॥
वे रसखानि जो रीझि है नेकु तो रीझि के क्यों वनवारी रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यों नहि अंक लगावत॥

(८)

मोरपखा सिर ऊपर राखि हो गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरे रसखानि सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

(९)

दानी भये नये मांगत दान हो जानि है कंस तो बन्धन जैहो।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहो॥
रोकत हो बन में रसखानि चलावत हांथ घनो दुख पैहो।
जैहे जो भूषन काहूँ तिया को तो मोल छला के लला न बिकैहो॥

(१०)

सोहत हैं चँदवा सिर मौर के जैंसिये सुन्दर पाग बसी है।
तैसिये गोरज भाल बिराजति जैसी हिये बनमाल लसी है॥

रस आनि बिलोकत औरो सो ह्वै दृग मूँदि के ग्वालि पुकार हँसी है।
खोलरी घूघट खोलौ कहा वह मूरत नैनन माँझ बसी है॥

(११)

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जो वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जो करै मन मानी।
त्यों रसखानि वही रस खानि जो है रस खानि सो है रसखानी॥

(१२)

द्रौपदि औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम गेहिनि कैसे तरी प्रहलाद को कैसे हरयो दुख भारो॥
काहे को सोच करै रसखानि कहा करि है रविनन्द बिचारो।
ताखन जाखन राखिये माखन चाखन हारो सो राखन हारो॥

(१३)

देस बिदेस के देखे नरेसन रीझ की कोऊ न बूझ करैगो।
तातो तिन्है तजि जान गिरयो गुण सो गुन औगुन गाठि परैगो॥
बाँसुरीवारो बड़ो रिझवार है स्याम जो नेकु सुढार ढरैगो।
लाड़िलो छैल वही तो अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगो॥

(१४)

बैद की ओषधि खाइ कछू न करै बह संजम री सुन मोसे।
तो जल पानि कियै रसखानि सजीवन जानि लियो सुख तोसे॥
ये री सुधा मयी भागी रथी नित पथ्य बनै न सनै तुहि पोसे।
आक धतूर चबात फिरै बिष खात फिरै सिब तेरे भरोसे॥

(१५)

अँखियाँ अँखियाँ सो सकाय मिलाय हिलाय रिझाय हियो भरिबो।
बतियाँ चित चोरन चेटक सी रस चारु चरित्रन ऊचरिबो॥

रसखानि के प्रान सुधा भरिवो,अधरान पै त्यो अधरा धरिबो।
इतने सब मैन के मोहन जन्त्र पै मंत्र बसी करसी करिवो॥

(१६)

कौन ठगोरी करी हरि आज बजाई है बाँसुरिया रस भीनो।
तान सुनी जिनही जिनही तिनही तिनि लाज विदा कर दीनी॥
घूमै खरी खरी नन्द के बारन बोनि कहा अरु बाल प्रवीनी।
या ब्रज मण्डल मे रसखानि सो कौन भटू सोलटू नहि कीनी॥

(१७)

ब्रह्म मै ढूढ़ों पुराणन वेदन मन्द सुने चित चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कबौं कितहूँ वह कैसो स्वरूप है कैसो सुभायन॥
हेरत हेरत हारि फिरयो रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो कहा वह कुञ्ज कुटी तट बैठे पलोटत राधिका पायन॥

(१८)

फागुन लाग्यो सखी जबतें तबतें ब्रज मण्डल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचे नहि एक विशेष यहै सबै प्रेम अच्यो है॥
सांझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भई अस कौन भूट जिहि मान बच्यो है॥

(१९)

लाज के लेप चढ़ाई के अंग पची सब सोख को मंत्र सुनाइ के।
गाड़रु ह्वै ब्रज लोग थक्यो करि औषध बेसक सौंह दिवाइ के॥
ऊधो सा को रसखानि कहै जिन चित्त धरौ तुम एते उपाइ के।
कारे विसारे को चाहै उतार्‍यो अरे विखवावरे राख लगाइ के॥

(२४)

रसखानि सुन्यो है वियोग के ताप मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सों मुख गो मुरझाई लगी लपटै विस स्वास हिया की॥

ऐसे मे आवत कान्ह सुने हुलसे सहके तरकी अंगिया की।
यो जग ज्योति उठी तनकी उसकाई दई मनो बाती दिया की॥

(१)

कहा रस खानि सुख सम्पति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाये तन छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीचनल,
कहा जीति लाये राज सिन्धु आर पार को।
जप बार बार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नही प्यार नहीं सेयो दरबार चित—
चाह्यो न निहार जो पै नन्द के कुमार को॥

(२)

उह उही मोरि मंजु डार सहकार की पै,
चह चही चुहिल चहूंकित अलीन की।
लह लही लोनी लता लपटी तमालन पै,
कह कही तापै कोकिला के काकलीन की॥
तह तही करि रसखानि के मिलन हेत,
वह बही बानि तजि मान समलीन की।
मह मही मन्द मन्द मारुत मिल तैसी,
गह गही खिलनि गुलाब के कलीन की॥

(३)

आई खेलि होरि व्रज गोरी वा किशोरी संग,
अंग अंग रंगनि अनंग सरसाइ गो।
कुंकुम की मार वापै रंगनि उछार उड़े,
बुका औ गुलाल लाल लाल तरसाइ गो॥

छोड़े पिचकारिन धमारिन बिगोय छोड़े ।
तोड़े हिय हार धारि रंग बरसाइ गो ॥
रसिक सलोनो रिझवार रसखानि आज,
फागुन में औगुन अनेक दरसाइ गो ॥

(४)

अबही गई खिरक गाइ के दुहाइबे को,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनी यो पानि की ।
कोऊ कहै छरी कोऊ मौन परी डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियान की ।
सास व्रत ठाने नंद बोलत सयाने,
धाई दौर दौर जाने माने खोरि देवतान की ।
सखी सब हँसै मुरझानि पहिचानि,
कहूँ देखी मुसकानि वा अहीर रसखानि की ॥

दोहा ।

मोहन छबि रसखान लखि अब दृग अपने नाहिं ।
ऐंचे आवत धनुष से छूटे सर से जाहिं ॥

कुतुबन शेख

(१५६०)

मिश्र बंधुओं के कथनानुसार संवत १५६० वि० में कुतुबन शेख ने मृगावती नामक एक उत्तम काव्य ग्रन्थ बनाया । इस में एक प्रेम कहानी पद्मावत की भांति दोहा चौपाइयों में कही गई है और इसकी रचना शैली भी उसी प्रकार की है, यद्यपि

उत्तमता में यह उसके बराबर नहीं पहुंचती । शेख कुतुबन शेख बुरहानी चिश्ती के चेले थे और शेर शाह सूर के पिता हुसेन शाह के यहां रहते थे। मैंने इनकी पुस्तक नहीं देखी है। मिश्र बंधुओ ने इनकी कविता का जो उदाहरण दिया है वही नीचे उद्धृत किया जाता है ।

चौपाई

साहि हुसैन अहैं बड़ राजा ।
छत्र सिङ्हासन उनको छाजा ॥
पंडित औ बुधवंत समाना ।
पढ़ें पुरान अरथ सब जाना ॥
धरम दुदिष्टल उनके छाजा ।
हम सिर छाँह जियौ जग राजा ॥
दान देह औ गनत न आवै ।
बलि औ करन न सरवरि पावै ॥

आलम

(१६२०)

आलम जाति के ब्राह्मण थे परन्तु शेख नामक एक रंगरेजिन के प्रेम में फँस कर मुसल्लान हो गए और उसके साथ विवाह भी कर लिया था। इनके जहान नाम का एक पुत्र भी था। मिश्र बंधुओं ने इनका कविता काल सं० १७६० वि० माना है और औरंगजेब के द्वितीय पुत्र मोअज्जम के समय में इनका होना लिखा है। पर श्रीयुत मया शंकर याज्ञिक ने

मर्य्यादा में आलम की। पुस्तक माधवानल--कामकंदला से सिद्ध किया है कि आलम अकबर के समय में हुए थे। आलम के सं० १७६०वि. से पूर्व होने का एक प्रमाण उन्हें और मिला है। सम्मन कवि का समय निद्धारित करने के प्रमाण में उन्होंने माधुरी में एक ग्रंथ (दोहा सार संग्रह) का वर्णन किया है। यह ग्रंथ।सं० १७२० में बना है जैसा कि उसमे लिखा है—

"सत्तरह सौ बीसोत्तरा, मास चैत्र गुरुवार।
शुक्ल पक्ष द्विनिया तिथि, रचौ सो दोहा सार॥"

उन्हें जो पुस्तक मिली है वह सं० १८८४ वि० की लिखी हुई है। इस ग्रंथ मे एक दोहा आलम और दो दोहे शेख के नाम से दिये गए हैं जिन से सिद्ध है कि आलम का कविता काल सं०१७६०वि.नही सं १७२०वि.से पूर्व अवश्य है। केवल एक छन्द में आलम का नाम आ जाने के कारण आलम को मोअज्ज़म के समय का मानना युक्ति सङ्गत नही मालूम होता। उस छंद मे आलम शब्द कवि के नाम के लिये नही किंतु, जगत के अर्थ में आया है। एक छन्द के आधार पर दो आलम कवियों का मानना भी क्लिष्ट कल्पना ही होगी। "माधवा नल--काम कंदला के आधार पर अकबर के समय में ही आलम का मानना ठीक होगा अस्तु आलम का समय सं० १६२० के लग भग ही मानना युक्ति संगत जान पड़ता है। दोहा संग्रह के दोहे निम्न लिखित है।

आलम प्रेम वियोग में, उठत अटपटी झार।
मन लागै जियरा जरै, लाज होत बरि छार॥
हित चित दै सबही सुनौ, साँच कहत है शेख।
संगत तैसो होत फल यामे मीन न मेख॥

शेख सुमन औ शा पुरुप तीजो ठौरन जायँ ।
कै सब के सिर पर रहैं कै बन मांझ बिलायँ ॥

खोज से आलम केलि, 'माधवा नल काम कंदला' और आलम की स्फुट कविताओं का पता चला है। 'आलम केलि' काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के हिंदी लेकचरार लाला भगवान दीन जी के संपादन में छप चुकी है जो उन्हीं के पास लिखने से मिल सकती है। अन्य ग्रंथों का पता नहीं। स्वर्गीय मु० देवी प्रसाद जी के पास आलम और शेख के करीब ५०० छन्द थे। मिश्र बंधुओं ने इनकी गणना पद्माकर की श्रेणी मे की है। नीचे इन की कुछ कविताएं लिखी जाती हैं।

कृष्ण की बाल-लीला।

(१)

पालन खेलत नन्द—ललन छलन बलि,
गोद लै ले ललना करति मोद गान हैं।
'आलम' सुकबि पल पल मया पावै सुख,
पोषति पियूष सु करत पय पान हैं॥
नन्द सों कहति नन्दरानी हो महर! सुत
चन्द की सी कलनि बढ़त मेरे जान हैं।
आइ देख आनँद सो प्यारे कान्ह आनन में,
आन दिन आन घरी आन छबि आन हैं॥

(२)

झीनो सी झँगूली बीच झीनो आँगु झलकतु
झुमरि झुमरि झुकि ज्यो ज्यो झूलै पलना।
घूँघरू घूमत बने घुँघुरा के छोर घने,
घुँघरारे मानो घन वारे चलना॥

'आलम' रसाल जुग लोचन बिसाल लोल,
ऐसे नन्दलाल अनदेखे कहूँ कल ना।
बेर बेर फेरि फेरि गोद लै लै घेरि घेरि,
टेरि टेरि गावैं गुन गोकुल की ललना॥

(३)

जसुदा के अजिर बिराजै मनमोहन जू,
अंग रज लागे छबि छाजै सुर पालकी।
छोटे छोटे आछे पग घूंघरू घूमत घने,
जासो चित हित लागै सोभा बाल जाल की॥
आछी बतियां सुनावै छिनु छाड़िवो न भावै,
छाती सो छपावै लागै छोह वा दयाल की।
हेरि ब्रज नारि हारी बारि फेरि डारी सब,
'आलम' बलैया लीजै ऐसे नन्दलाल की॥

(४)

दैहौं दधि मधुर धरनि धरयो छोरि खैहैं,
धाम तें निकसि धौरी धेनु धाइ खोलि है।
धौरि लोटि ऐहैं लपटै है लटकत ऐहैं,
सुखद सुनै है वैनु बतियाँ अमोलि हैं॥
'आलम' सुकबि मेरे ललन चलन सीखें,
बलन की बांह ब्रज गलिनि मे डोलि हैं।
सुदिन सुदिन दिन तादिन गिनौ गी माई,
जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलि हैं॥

(५)

दौरी कौन लागी दुरि जैवे की सिगरो दिन,
छिनु न रहत घरै कहौं का कन्हैया को।
पल न परत कल बिकल जसोदा मैया,

ठौर भूले जैसे तलबेली लगै गैया को ॥
आँचरु सों मुख पोछि पोछि कै कहति तुम,
ऐसे कैसे जान देत कहूँ छोटे भैया को।
खेलन ललन कहूँ लाये हैं अकेले नेकु,
बोझि दीजै बलन बलैया लाग मैया को ॥

(८)

ऐसो वारो बार याहि बाहरो न जान दीजै,
बार गये बौरी तुम बनिता सँगन की।
ब्रज टोना टामन निपट टोनहाई डोलै,
जसुदा मिटाउ टेव और के अँगन की ॥
'आलम' लै राई लोन बरि फेरि डारि नारि,
बोलिधौ सुनाइ धुनि कनक कँगन की।
छीर मुख लपटाये छार बकुटनि भरे, छीया!
नेकु छबि देखो छगन—मगन की ॥

(९)

मन की सुहेली सब करतीं सुहागिन सु—
अंक की अकोरी दै कै हिये हरि लायो हैं।
कान्ह मुख चूमि चूमि सुख के समूह लै लै,
काहू करि पातन पतोखां दूध प्यायो हैं ॥
'आलम' अखिल लोक लोकनि को अंसी ईस,
सूनो करि ब्रह्माण्ड सोई गोकुल मे आयो हैं।
ब्रह्म त्रिपुरारि पचि हारि रहे ध्यान धरि,
ब्रज की अहीरिनि खिलौना करि पायो हैं ॥

(१०)

चारोदस भौन जाके रवा एक रेनु को सो,
सोई आंगु रेनु लावे नन्द के अवास की।

घट घट शब्द अनहद जाको पूरि रह्यो,
तेई तुतराइ बानी तोतरे प्रकास की ॥
'आलम' सुकबि जाके त्रास तिहुँ लोक त्रसै,
तिन जिय त्रास मानी जसुदा के त्रास की।
इनके चरित चेति निगम कहत नेति,
जानी न परत कछु गति अविनास की ॥

जमुना कुंज

(१)

अरविंद पुंज गुंज डोर भौंर ही भ्रती,
हलोर ओर थोर ज्यों निसा चलत चंदनी।
निकुंज फूल मौल बेलि छत्र छांह से धरे,
तटी कलोल कोक पुंज शोक संक ददनी ॥
'आलम' कवित्त चित्त रास के बिलास ते,
प्रकास बंदना करी त्रिलोक बिस्व बंदनी।
समीर मंद मंद केलि कंद दोष दंद यों,
अनन्द नन्द नन्द क बिराजे हंस नन्दनी ॥

(२)

लता प्रसून डोल बोल कोकिला अलाप केकि,
लोल कोक कंठ त्यों प्रचंड भृङ्ग गुञ्ज की।
समीर बास रास रंग रास के बिलास बास,
पास हंस नन्दिनी हिलोर केलि पुञ्ज की ॥
'आलम' रसाल बन गान ताल काल सों,
बिहंग बिय बेगि चालि बित्त लाज लुंज की।
सदा बसंत हंत सोक ओक देव लोक ते,
बिलोकि रीझि रही पांति भांति सों निकुंज की॥

चंद्र-कलंक

(१)

बिधु ब्रह्म कुलाल को चक्र कियो मधि राजति कालिमा रेनु लगी।
छबि धौ सुरभीर पियूष की कीज कि बाहन पीठ की छाँह खगी॥
कवि 'आलम' रैनि संजोगिनि ह्वै पिय के सुख संगम रंग पगी।
गए लोचन बूड़ि चकोरनि के सुमनो पुतरीन की पांति जगी॥

(२)

थिर कूरम थापि रसातल में विधि जानि सुतौ त्रिकुटी है ठटी।
धरनी धर मत्थ समत्थ करी सरिता सर सिन्धु सनेह तटी॥
'आलम' के गुन मेरु मनो रवि प्रात को दीप सिखा जौ जटी।
तिहि धूम धुके दुति कज्जल की अजहूँ नभ कालिमा लै प्रकटी॥

(३)

औषधि नाथ विरोध गुनी गुन सोधि तमोरस भेद विचारा।
'आलम' पूरि धरी घरिया रवि कीनो तरे तप तेज पसारा॥
आगि दई अथये अरुनी अति फूटि, कै जंत्रु गयो उड़ि पारा।
रैनि भरी कजरी बिथुरी जनु ह्वै कन धातु लगे मढ़ि तारा॥

छप्पय

(१)

अलि पतंग मृग मीन दीन छबि छीन नलिन पुनि।
गज बाजी कुन्दनहि हंस सारस कदली गुनि॥
कोकिल कीर कपोत कुन्द जो पट तर भाषहिं।
हौं क्यों यहि विधि कहौं बुद्धि अनचाहत नाषहिं॥

वृषभानु सुता सम कहन कँह,आलम त्रिभुवन मैं जु कछु।
यह मन वच क्रम कै जानियहु कहि कहिबी सो सबै तुछ॥

(२)

सेज सुखासन हेम हीर पट चीर विविध बर।
निरखि निरखि मन मुदित होत निज सुख संपति पर॥
आयु बनै बनिता बनाइ विलसत विलास अति।
जग रक्षक जगदीस सो जु भूल्यो जु अलप मति॥
अजहूँ संभारि आलम सुकबि,जौ लौ अंतक नहि ग्रस्यो।
पग डगमगात हेरत हँसत बिरह भुअंगम को डस्यो॥

सवैया

(१)

ब्रज भूषन भावति राधिके जू गुन रूप के साँचे सुअंग गढ़ी।
कवि 'आलम' अंग सुगन्ध सदा परचै विरचै करि कोक पढ़ी॥
कवनी भुज स्याम के कन्ध धरे रवनी मनो प्रीति की रीति बढ़ी।
छबि ता तन स्याम की सुन्दरता मानो चंपलता नग नील चढ़ी॥

(२)

ब्रज सम्पति दम्पति राजत हैं बन देखत रीझि अनंग गता।
कवि 'आलम' संग सुगन्ध समै अँग अँग अनंग सुगंध रता॥
भरि भेटत भामिनि भेटनि मैं भुज द्वै छबि पावति कोटि सता।
मनो मंजुल लोल तमाल में नौतन चारु चढ़ी कलधौत लता॥

(३)

ऐंड़ ऐड़ाइ चली फिरि ओरनि ऊँच कै भौहनि सीस उंचाये।
नैन डरैं बिडरै फिरि आपन काननि कोर दरीन दुराये॥

'आलम' आनि गह्यो पहिले मन ठौरहिं ठौर को भेद बतायो।
राजु फिर्यो तन की नगरी गुगुधाई गई अब जोबन आयो॥

(४)

कान्ह पयान कह्यो सजनी तिय प्रान पयान कैसे दुख पावै।
'आलम' छीन परी मुरछाई परी छिति नीर सखी मुख नावै॥
सीतल है पग पानि गये छतियां तपि कै पियरी तन छावै।
ज्यौं हूँ की जान परै न कछू सखि देखत हूँ जम हूँ भ्रम पावै॥

(५)

जा थल कीन्हों बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठो चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
'आलम' जौन से कुंजन में करी केलि तहां अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा बसते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

(६)

बालम लाल बिदेश गए दुख ऐसी जरी हम काम कराकै।
जे चुरियाँ कर आवत नाहिरी ते चुरियाँ भई ठौर फराकै॥
'आलम' लाल बिसूरति बालम बोलत ही पिय धार धराकै।
कंचुकि मे कुच यों हुलसे कि गए बँद टूट तराक तराकै॥

(७)

मधु दन्दन श्री नँदन्दन जू सुख कन्दनि चन्दन खौर करी।
तुलसी दल माल रिसाल लसै निरखे छवि काम को क्रान्ति हरी॥
कवि 'आलम' भाल के ऊरध यो उपमा सिखि चन्द की पांति धरी।
सुखमा के समूह सरोवर मे मनु फैलि फुलेन की छींट परी॥

(८)

मुकता मनि पीत हरी बन माल सुतो सुर चांप प्रकास किये जनु।
दामिनी भूषन दीपति है धुरवा सित चन्दन खौर किये तनु॥

'आलम' धार सुधा मुरली बरखा पपिहा ब्रज नारिन को पनु।
आवत है बनते घन से लखिरी सजनी घन स्याम सदा घनु॥

(९)

सेज समीप सधो रुचि दम्पति कुंज कुटी ब्रज भूपर री।
कवि 'आलम' केलि रची विपरीत मनोज लसै दृग दूपर री॥
सरसीरुह आनन ते श्रम बुन्द परै तेज सो मति सूपर री।
बरसै बरसाने की गोरी घटा नन्दगाँव के साँवरे ऊपर री॥

(१०)

कुंज सहेटन भेट भई अँग अँग अनग के पुंज सँतावहि।
'आलम'आली सो आपनी बात कहै न कछू अँखिया भरि आवहि॥
कालिमा कज्जल की छबि बुन्द परै अधरा पर यो दुति पावहि।
मानहु मत्त मधूपन के सुत कञ्ज को छोड़ि बँधूक को धावहि॥

(११)

सत पत्र के पत्रनि सेज सजै मिलि सोवत कान्हर सँग लली।
पिय की भुज तीय की ग्रीव गही तिय की भुज पीय की ग्रीव रली॥
कवि'आलम'अग्र रोमावलि के जगै चौकी जराब की जोति भली।
जुग जानु सुमेरु के बीच मनो धरि धीर कलंदि की धार चली॥

(१२)

अति आतुर चातुर कान्ह रमै तन में रस रास नई संचरै।
कवि 'आलम' बाम बिहार बढ़े सजनी सिख चित्त सबै बिसरै॥
मुख पै कच कै अधिकारी खुलै अध चौकी जगम्मग जोति करै।
उत ह्वै मानो सूर उदोत कियो इत ओर सुमेर कुहू उतरै॥

(१३)

हरि आगम की अंगना सुनि चाह सवाँरत अंग हुलास हियो।
कवि 'आलम' भूषन भेष बने छवि कोटि हि मैं न को अंसु लियो॥

तिलकद्दुति कुंकुम मध्य ललाट सुचारु जराउ को विंदु दियो।
अनुराग ते जाग जगम्मग मानो सुहाग को भाग प्रगास कियो॥

कवित्त

(१)

कैधो मोर सोर तजि गये री अनत भाजि
कैधो उत दादुर न बोलत हैं ए दई।
कैधो पिक चातक महीप कहूं मार डास्यो
कैधो बक पांति उत अन्त गति ह्वै गई॥
'आलम' कहै हो आली आजहूं न आये मेरे
कैधो उत रीति बिपरीति विधि ने ठई।
मदन महीप की दोहाई फिरबे ते रही
जूझि गए मेघ कैधो बीजूरी सती भई॥

(२)

भली कीन्हीं भावते जू पाँउ धारे इहि ओर
अनत सिधारे कि बसत याही पुर हो।
ग्वार काहू गोपी के धारे हो सब गुन जानि
औगुन न जानो तुम सबन के गुर हो॥
'आलम' कहै हौं चख चाहि चित चोर लीनो
नीकी चतुराई कीन्ही भले जी चतुर हो।
निकट रहत तुम एती निठुराई करो
अब हम जाने कान्ह निपट निठुर हो॥

(३)

धोर ते अधीर भई पीर नीर चीर भीजै
सोचनि कुचनि पर लोचन बहत हैं।

'आलम' अदेख ऐसे कैसे इहि भेस जीजै,
ऐसे ही उसास प्रान कैसे कै रहत हैं ॥
कहा करौं माई मेरे प्रान मेरे हाथ नाहि
प्रान नाथ साथ प्रान साथ चल्योई चहत हैं ।
पलन लगत पल कल न परत सुनि,
आली री ललन कालि चलन कहत हैं ॥

(४)

रुचिर चनन चीर चन्दन चरचि सचि
सरद को चन्द चाहि चितहि धरतु हैं ।
बिबिध बिलास बस रास ब्रजपति प्यारे,
तेई बज बतियां उचित उचरतु हैं ॥
'आलम' सुकवि अब वैसे कान्ह ऐसे भए
उतहि भुलाने किधौ इतहि धरतु हैं ।
मधु बन बसत मधुर मुरली को घोर,
मधुप कबहुँ माधो सुरत करतु हैं ॥

(५)

रतन जटित बंसी बट कुंज पुंज बीथी
बन घन जहां तहां आनंद पयोगी हैं ।
सोई रहै ध्यान ऊधो ज्ञान को न काज कीजै
एतो ब्रजबासी ब्रजराज के बियोगी हैं ॥
'आलम' सुकवि कहै तन बीच कान्ह छबि
जोग दैन आये तुम कहा हम जोगी हैं ।
जोग तो सिखैये ताहि जोग की जुगत जानै,
जोग को न काज हम बंसी रस भोगी हैं ॥

(६)

कंचन में आंच नई चूनी चिनगी सी भई,
दूषन भए है सब भूषन उतारि लै ।
बालम बिदेस ऐसे बेस मे सुआगि लागो
जागि जागि उठे हियो बिरह बयारि लै ॥
आग कत पर घर मांगन है जाति आली,
आंगन मै चन्दा सो आगरी दो कामरि लै ।
सॉझ भयो भौन सझावती क्यां न देत आली,
छाती सो छुवाय दिया बाती आनि बारि लै॥

(११)

अटा चढ़ी हुती बिधु छटा सी छबीली प्यारी,
उझक झरोखा तुम कान्ह ठाढ़ हे कहूँ ।
उतही गिरी है वैसे जौन आली आन लागै,
जीवन की औध ही जु ऐसो टरी टेकहूं ॥
'आलम' मयंक पूरो परिवा सो होइ गयो,
कहू जौन परै तौ परी ही कला एक हूँ ।
एतो औ भई ते अब जौ न बेगि ऐहो प्यारे,
ओहो निरदई तोहि दया नही नेकहूँ ॥

(१२)

रंग भरी रस भरी सुन्दर सुगन्ध भरी,
सुख भरी पैन ऐन मैन मैनका सी है।
दर्पण सी देह तैसी नेह की नवेली नई.
ब्रज बनितान ऐसी सुर पुर बासी है ॥
आलम सुकबि लोने सोने के सरोज ही तै,
फूल ही के भार भरे पान की लता सी है ।

चंदन चढ़ाय चारु चाँदनी सी छाय रही
चन्द्रमा सी चाँदी सी चमक चञ्चला सी है॥

(१३)

दाने की न पानी की न आवै सुध खाने की।
गलीहैमहबूब की आराम खुस खाना हैं।
रोज ही सो है जु राजी यार की रजाई बीच,
नाज की नजर तेज तीर का निसाना है॥
सूरति चिराक रोसनाई आसनाई बीच,
बार बार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिल सो दिलासा दीजै हालके न ख्याल हूजै
बेखुद फ़कीर वह आसिक दिवाना है।

(१४)

गम के नसीब ते गनी है जैसे राज पाए
आसक गरीब को गुमान मनी माल क्या।
नाज ते नेवाजि कै नजीक ही निहाल किया,
जीवने की जौक मे जुदाई का जवाल क्या।
वह उस रोज़ से खराब हुआ खाक ही में
खैर नहीं खूबी बीच खूनी तेग ख्याल क्या।
दिल दै जुआवै सो दिलासा भी न पावे बातो
मार दिलदार ऐसे बे दिल का हाल क्या॥

(१५)

प्यारी तन भूमि ता में रूप जल सागर है,
यौवन गंभीर भौंर शोभा को धरत है।
दीपत तरंग नैन बारिज से डोले तहां,
उरग सी बेनी जिय देखत डरत है॥

'आलम' कहत मुख कहर गहर राजै;
तामें मन मेरो यह दौरि के परत है॥
बेसरि को मोतो मानो कर है सिकन्दर को,
बार बार झूमि झूमि मने सो करति है॥

दोहा

आलम ऐसी प्रीति पर, सरबस दीजै वारि।
गुप्त प्रगट कैसो रहै दीजै कपट पिटारि॥

शेख़ रंगरेज़िन

(१६२०)

शेख एक मुसलमान जाति की स्त्री थी। यह रंगरेजिन का काम करती थी। इनकी प्रीति एक आलम नामक ब्राह्मण से हो गई थी। इन्हीं के इश्क़ में पड़ कर वे मुसलमान भी हो गए। और तब इन दोनों का विवाह भी हुआ। कहते हैं कि आलम कवि ने एक बार इन्हें एक पगड़ी रँगने को दी, जिसके एक खूँट में एक कागज का टुकड़ा बँधा रह गया था। इन्होंने उसे खोला तो निम्न लिखित दोहार्ध पाया:—"कनक छीरसी कामिनी काहे को कटि खीन?" यह दोहा किसी समय पूरा करने के लिये आलम ने बांध छोड़ा था। शेखने उसके नीचे-"कटि को कांचन काटि बिधि कुचन मध्य दीन।" लिख कर पगड़ी रँग कर उसी में बाँध दिया। जब आलम को वह पगड़ी मिली और उन्होंने दोहे की पूर्ति हुई देखी तब उसी समय वे शेख के घर गये, और उन्होंने उसे एक आना पगड़ी

की रँगाई और एक हज़ार रुपये दोहे की पूर्ति कराई दी। उसी दिन से दोनों में प्रेम हो गया और अन्त में आलम ने मुसल्मानी मज़हब स्वीकार करके इनके साथ निकाह कर लिया। आलम और शेख़ दोनों की कविताएं प्रेम रस से पूर्ण है। शेख़ के गर्भ से आलम को एक पुत्र भी था जिसका नाम जहान था। मुंशी देवी प्रसाद जी ने उपर्युक्त दोहे के स्थान पर एक कवित्त के तीन पद लिखे है और शेख द्वारा उसके चौथे पद का बनना लिखा है वह कवित्त यह है—

प्रेम रंग पगे जगमगे जगे ज मिनि के जोबन का जाति जगि जोर उमगत हैं। मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं, झूमत हैं झुकि झुकि झंपि उघरत हैं। आलम सो नवल निकाई इन नैनन की पाखुरी पदुम ै भंवर थिरकत है। चाहत है उड़िवे को देखत मयंक मुख जानत है रैन ताते ताहि मे रहत हैं।

पं० नकछेदी तिवारी ने इसी घटना संबंधी एक और ही कवित्त लिखा है। वह यह है—

घूँघट जमानिका है कारे कारे केश निशि; खुटिला जराय जरे दीपक उजारी है। बाजत मधुर मृदुबानी सो मृदंग धुनि नैना नट-नागर लकुट लटधारी है। आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै श्रम विंदु अंजुलि पुहुप भरि डारी है। अधर सुरंग भूमि नृपति अनंग आगे नृत्य करै बेसर की मोती नृत्य कारी है।

इनमे से चाहे जिस छंद की पूर्ति पर आलम रीझे हों किंतु इसमें सदेह नही कि दोनों ही सुकवि और सच्चे प्रेमी थे। इनका समय भी आलम के समय के अनुसारही समझना चाहिये इनकी रचनाएं बड़ी ही सरस और मनोहारिणी हुई है। उदाहरणार्थ इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं।

शिव के प्रति

गोरख सुढौगी लिये संभु ताको मत दिये,
आपुन अकेलो संग गौरी तिहि लोग ना।
बरुनी बिभूति बार बार ले लै मुख लावै,
उरहू लगावे पुनि भावै कछु भोगना ॥
अधारी लै धौरे धौरी सपति धतूरा भरी,
बृषभ लै चलै जाय कोऊ ताको सोगना।
जटा छिटकाये छबि छोनी में बिछाये छाल,
बासुकी बिरागी वाकी टेक बैठो जोगना ॥

दुर्गा के प्रति

भौन के दरस पुन्य-भौन मेरे नेरे आयो,
छत्र छांह परसत छत्रनि सों छया हौं।
मंगला के मंगल ते मंगल अनेग भये,
दिगराज रानी, लाज याहि काज नयो हौं ॥
सेषमति, 'संख' ही सुमेष की सी दोनी तुम,
रावरे सिखाये सिख ढिग आनि लयो हौं।
दुर्गा देवी तेरेई दया ते दुर्ग नाघि आयो,
पारबती तुम्हे सुमिरत पार भयो हौं ॥

गंगा वर्णन

(१)

जौही भौंह भीजी आँख ताकि है जो तीजिये से,
जीवी कहैं ज्याइ है अमर पद आइ लै।
अम्बर पखारे ते दिगम्बर बनै है तोहि,
छलक छुआये गज छाल तन छाइ लै ॥

'सेख़' कहै आपी कोऊ जैनी है कि जापी बड़ो,
पापी है तो नीर पैठि नागन लबाय लै।
अंग बोरि गंग में निहंग ह्वै कै बेगि चलि,
आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइ लै॥

(२)

नीके न्हाइ धोइ धुरि पैठो नेकु बैठो आनि,
धूरि जटि गई धूरिजटी लौ भवन में।
पैन्हि पत्र्यो अम्बर सु निकस्यो दिगम्बर ह्वै,
दृग देखौ भाल मे अचम्भो लाग्यो मन मे॥
जैसो हर हिमकर धरे औ गरे गरल,
भारी घरु डरु बरु छाड़्यो एक खन में।
देखे दुति ना परत पाप रेते पा परत,
सापरे ते सुरसरि साँप रेंगे तन में॥

दीनता

(१)

जथा गुन नाम स्याम तथा न सकति मोहि
सुमिरि तथापि कछु कृष्ण कथा कहिये।
गोकुल की गोपी कि वे गाइ कि वे ग्वारी कि वे,
बन की जु लीला यहै चरचानि बहिये॥
कुंजन के कीट वै जु जमुना के भीट तिनै,
पूजिये कपिल ह्वै कै कबिलास लहिये।
'सेख' रस रोष रुख दोषनि को मोष है,
जो एकौ घरी जनम में घोष माझ रहिये॥

(२)

मिटि गयो मौन पौन साधन की सुधि गई,
भूली जोग जुगति बिसार्‍यो तप बन को।
'सेख' प्यारे मन को उजारो भयो प्रेम नेम,
तिमर अज्ञान गुन नास्यो बालपन को॥
चरन कमल ही की लोचनि मे लोच धरी,
रोचन ह्वै राच्यो सोच मिटो धाम धन को।
सोक लेस नेक हूं कलेस को न लेस रह्यो,
सुमरि श्री गोकलेस गो कलेस मन को॥

(३)

पैडो सम सूधो बैड़ो कटिन किवार द्वार
द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है।
'सेख'भनि तहाँ मेरे त्रिभुवन राय हैं जु,
दीनबंधु स्वामी सुरपतिन को पति है॥
बैरी को न बैरु बरियाई को न परबेस,
हीने को हटक नाही छीने को सकति है।
हाथी की हँकार पल पाछे पहुँचन पावै,
चीटी की चिंघार पहिले ही पहुँचति है।

(४)

राम किधौ भांति भजि रावन की रीति तजि,
त्रेता ही ते तेरो दिन नीके जिय जानि लै।
'सेख' भनि वापर बहाऊ कोट द्वापर जु,
स्वारथ निवारि परमारथ को बानि लै॥
सोई दिन सोई रैन सोई ससि सूर गैन,
करु नीको नाम सोई समय मे आनि लै॥

कलजुग तौ पै जौ तू कलि के कलेस मानै,
सति भाखि सत लिये, सतजुग मानि लै ॥

(५)

सीता सत रखवारे तारा हूँ के गुन तारे।
तेरे हेत गौतम को तिरियाऊ तरी है।
हौहू दीना नाथ हौं अनाथ पति साथ बिनु,
सुनत अनाथिनि के नाथ सुधि करी है ॥
डोले सुर आसन दुसासन की ओर देखि,
अंचल के ऐचत उघारी और घरी है।
एक तें अनेक अगधाई सेत सारी संग,
तरल तरंग भरी गंग सी ह्वै ढरी है ॥

कवित्त

(१)

प्यारी परयंक पै निशंक पर सवोत ही।
कंचुकी दरकि नेक ऊपर को सरकी।
अतर गुलाब औ सुगन्ध की महक पर,
देखौ उठि आवति कहाँ ते मधुकर की ॥
बैठो कुच बीच नीच उड़ि न सकत केहूं,
रही अवरेख 'सेख' दुति दुपहर की।
मानहु समर में सुमिरि बेर शंकर कौ,
मारि शवरारि फोंक रह गई सर की ॥

(२)

कैधों जा हिमाचल में गात ही गलायो इन,
कैधों दीन दान बलिविक्रम सों अस्रो है।

कैधों जाइ द्वारका में कान्हर की सेवा करि,
कैधों जाइ राम काज रावन सों लखो हैं ॥
कैधों कवि 'सेख' भने अश्वमेध यज्ञ कीन्ही,
ताते यह धरनि निकट आई अरयो हैं।
धुनत याही ते शीश बिहीन जग्यो है याहि,
वेसरि को मोती मानो कौन पुन्य कस्यो हैं ॥

(३)

रति रन विषे जे रहे हैं पति सन्मुख
तिन्है बकसीस बकसी है मैं बिहँसिकै।
करन को कंकन उरोजन को चन्द्र हार
कटि माहि किंकिनी रही है अति लसिके ॥
'सेख' कहै आनन को आदर सो दीन्हो पान,
नैनन मे काजर विराजै मन बसि कै।
एरे बैरी बार ये रहे हैं पीठ पाछे
ताते बार बाँधति हौ बार बार कसिकै ॥

(४)

धौरी कहै दौरी आवै धूमरी धूमरी धावैं,
ऊंची कै कै पूछनि बुलावैं हरि जाहिने।
मैड़ी कैरी काजरी सु पारी भौरी चूरी चारु,
वरई मजीठी बन बेला और गाहिने ॥
मध्य स्याम धूम धन धूमरी सुभूरी मोहे
बलि बलि 'सेख' उपमा कहऊ काहिने ॥
गोविन्द को मन अति गैयन मे रमि रह्यो,
आगे गाय पाछे गाय गाय बाँये दाहिने ॥

(५)

जब सुधि आवै तब तन बिन सुधि होत,
बनि सुधि आये मन होत पात पात है।
'सेख' कहै सरद सहेट के वे जीत गुन,
बासुरी की सुधि नट साल गात गात है॥
तुम कहौ मानौ उपदेस हम नाही कह्यो,
जैसी एक नाही तैसी नाही सय सात है।
प्रेम मों विरूधो जिनि हाहा हिये रूधो जिनि
ऊधो लाख बातन की सूधी एक बात है॥

(६)

जब ते गुपाल मधुबन को सिधारे माई,
मधुबन भयो मधु दानव विषम सों।
'सेख' कहै सारिका सिखण्ड खंजरीट सुक,
कमल कलेस कीन्ही कालिन्दी कदम सों॥
जामिनी बरन यह जामिनी में जाम जाम
बधिवे को जुवति [illegible] री जम सों।
देह करि करक [illegible] लीनो चाहति है,
काग भई कोइल कगाई करै हम सों॥

(७)

कारी धार पर कारी कारी घटा जुरि आई,
तैसेई तमाल ताल कारे कारे भारे हैं।
'सेख' कहि साखिन के सिखर सिखर प्रति
सिखिनि के पुंज सुर सिखर पुकारे हैं।
निरख निरख तेइ तरुनी तनेनी होत
जिनके वे निठुर त्रिमोही कन्त न्यारे हैं।

बरखु बरखु जाति बरखा कौ पलु पलु
बूंद बूंद बरी मानो बिसिख बिसारे हैं ॥

(८)

सघन अखण्ड पूरि पंकज पराग पत्र
अन्तर मधुप सद घराट झहनातु हैं।
विरम चलतु फूलि बेलिनि के बास रस,
मुख के संदेसे लेत सबनि सुहाति हैं ॥
'सेख' कहि सीरे सरबरन के तीर तीर
पीवत न नीर परसे ते सियराति हैं।
आवन बसन्त मन भावन मनोज तन,
पवन परेवा मनो पाती लिए जाति हैं ॥

(९)

सुनि चित चाहे जाको कंकन की झनकार
करत कलाई सोई गति जु विदेह की।
'सेख' कहै आजु है सुफेरि नहीं काल्हि जैसी
निकसी है राधे की नि ई निज नेह की ॥
फूल की सी आभा सब सा मा लै सकेलि धरी
फूलि जैहैं लाल सुधि भूल जैहैं गेह की।
कोटि कबि प ै तऊ बरनी न बनै छबि
बेसर उतारे छबि बेसर के वेह की ॥

(१०)

प्रीत की परन बैरी बिरह की जीत भई,
हारे सब जतन जहाँ लो जानियत है।
वेदन घटे न निघटी सी वहै जाति 'सेख'
आनि आनि भांति उपचार आनियत है ॥

जन्त्र है न जरी कछू मरी जाति कन्त बिनु
नेह निरमोही के न मंत्र मानियत है।
चन्दा तन चित ये बरै चाँदनी न चहि परै
चन्दा हूँ की ओट को चदोआ आनियतहैं॥

(११)

कहूँ भूल्यो बैन कहूँ धाम गई धैन कहूँ,
ऐन चैन कहूँ मोर पंख भूमि परे हैं।
मन को हरन को है अचरा अरन को है
छाह ही छुवत छकि छीन व्है के चुरे हैं॥
'सेख'कहै प्यारी तू जौ काल्हि ही ते बनि गई
तबही ते कान्ह असुआनि सर करे हैं।
याते जानियतु है जु बेऊ नदी नारे नीर
कहूँ वर विकल वियोगी रोइ भरे हैं॥

(१२)

फूल फरमान छाप छुपद दुहाई बास
नूतन सुजान टेसू तम्बू दे परोरी है।
केकी कीर कूक पिकबानी चिठी आइ जानि
बिरह बढ़ाई छबि रेयत मरोरी है॥
शीतल बयार बाद मापि रूप लीन्हो हेरी
उपज हमारे हरि ध्यान जो धरौरी है।
आयो हैं बसन्त ब्रज लायो हैं लिखाय 'सेख'
जोन्ह को जलेबदार काम को करोरी है॥

(१३)

जाकी बात रात कही सो मैं जात आज लही
मों तन तिरीछे हँसि हेरि सुख दियो हैं॥

ऐसी देखी आन कोऊ सो न देखी आन तुम,
वाके देखे मानस मरू कै कोऊ जियो है ।
केतो कहूं बीधो उर बेधिबे को ठौर नही,
'सेख' ऐसो रावरे कठोर मन कियो है ।
पीरो नही प्रेम पीर सीरो न सिथिल भयो,
चीरो नही चित्त यासु हीरो है कि हियो है ।

(१४)

परम भावती तेरी लाल मैं विकल देखी
वपु न संभारे कछु उठि न सकति है ।
कीनो कहा मोसो कहौ स्याम हों बलाइ लेउँ
जात धक धकी उर अनल धुकति है ।
डारे सीरो नीर होति घीय ज्यों प्रबल ज्वाल
भहर भहर सिर पाय भभकति है ।
एकई अधार वाके हिये है रहत प्रान,
त्राटक लगये मगु कुंज को तकत है ॥

(१५)

बैना सुने जरनि श्रवां की खोऊ सीरी होति,
पावक दहे को तेई आवक अमिय करे ।
दूर ही ते दरसि कपूर जनु पूरे पल,
फूलहू ते कोमल हिताने हार हिय के ॥
'सेख' कहे प्यारे चित घर के उजारे दिया
कहूं कहूं नैनि के तारे केहू तिय के ।
देखे विन जियै नही देखे मुख जियै हम
तुम चिरंजीवी कान्ह जीय मेरे जिय के ॥

रूपवती बेग़म

(१६३७)

उज्जैन से ५५ मील दूर काली नदी के तट पर सेरंगपुर नामक एक गाँव बसा है। यहीं रूपवती का एक वेश्या के पेट से जन्म हुआ। वेश्या ने अपने धर्म्मानुसार रूपवती को गाने बजाने की शिक्षा दी। रूपवती की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। वह गाने बजाने मे बड़ी तेज निकली और साथ ही साथ कविता भी करने लगी। सुनने में आता है कि उसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी होती थी। उसके इसी गायन—गुण और काव्य—कौशल को देख कर मालवा के नवाब बाजबहादुर उसके ऊपर अनुरक्त हो गए और उसे अपनी बेग़म बना लिया। बेग़म यद्यपि रूपवती न थी पर नवाब के लिए वह प्राणाधिक थी। वह एक मिनट भी उन्हें अपनी आखों की ओट न करते थे। धीरे धीरे उन्हें राज्य से विरक्ति हो गई।

उस समय दिल्ली में अकबर राज्य कर रहे थे। कई बार उन्होंने मालवा पर चढ़ाई की थी परन्तु विजय नही पाई थी। यह अवसर अच्छा देख कर सं० १६४७ वि० मे उन्होंने अपने सरदार अहमद खाँ को एक भारी सेना देकर मालवे भेज दिया। लड़ाई में अहमद खां की जीत हुई और नवाब मैदान छोड़ कर भाग गए। युद्ध में आते समय उन्होंने कुछ सिपाहियों को बेग़मों की रक्षा के लिए छोड़ दिया था और हुक्म दे दिया था कि यदि वह लड़ाई में हार कर भाग जॉय तो वे उनके महल की सब बेग़मों को शत्रु के हाथ से बचाने के लिए तुरंत मार डालें। अस्तु, जब सिपाहियों को यह मालूम हो

गया कि उनके स्वामी मैदान छोड़ कर भाग गए तो उन लोगों ने हरम की सारी स्त्रियों को काट डाला। रूपवती भी काट डाली गई। अहमद खां ने इस बेगम की प्रशंसा पहले से ही सुन ली थी। उसने लड़ाई के पहले ही रूपवती को अपनी स्त्री बनाने का निश्चय कर लिया था। लड़ाई खतम होने पर जब उसने बेगमों के कत्ल का हाल सुना तो खुद राजमहल में आया और रूपवती की सांस चलते देख कर वह उसे उठा ले गया। और अच्छे अच्छे हकीमों को इलाज के लिए तैनात कर दिया। कुछ ही दिनो में जब वह अच्छी हो गई तो अहमद खाँ ने अपनी अभिलाषा प्रकट की। इससे बेगम को बड़ा दुःख हुआ। उसने अहमद को बहुत समझाया और अपने को बाजबहादुर के पास भेज देने की प्रार्थना की। परन्तु उसके हृदय पर कुछ भी असर न हुआ वह बार बार बेगम से अपनी अभिलाषा को पूरी करने को कहता रहा। अन्त में एक दिन आजिज आकर बड़े ही दुःख से बेगम ने खॉ साहेब की इच्छा पूरी करने का बचन दिया। किंतु जब शाम को खॉ साहेब बेगम के कमरे में आये तो उसे मरी हुई पाया। बेगम यद्यपि वेश्या की लड़की थी पर थी पतिव्रता। खॉ साहब के नाम वह निम्न लिखित दोहा एक टुकड़े कागज पर लिख गई थी।

रूपवती दुखियाभाई बिना बहादुर बा{illegible}।
सो अब जियरा तजति है, यहां नहीं कछु काज ॥

इस दोहे के अतिरिक्त मुझे इनकी और कोई भी कविता देखने में नहीं आई है अस्तु पाठक इसी को उनकी कविता का नमूना समझ कर संतोष करेंगे। इनका कविता काल लगभग सं० १६३७ वि० के समझना चाहिए।

मोहम्मद जलालुद्दीन ।

(१६१५)

मोहम्मद जलालुद्दीन का जन्म संवत १६१५ वि० में हुआ था। इनके छन्द हजारा में मिलते है । इनकी कविता के उदाहरण नीचे दिए जातें है ।

(१)

आदि के अंक बिना जग जीवत मध्य बिना जग हीन कहावै ।
अन्त बिना सगरौ जग है बस जाहिर जोति सबै छबि छावै ॥
अंक जिते जग लोक जलाल दियो मनसा तिय को अति भावै ।
श्याम के अङ्ग में रंग प्रसिद्ध है पंडित होय सो अर्थ बतावै ॥

(२)

अकबर प्रान नाथ अनाथ को
इहि नाथ जो सुमिरै अष्ट सिद्धि नव निधि पाइये ।
परम दाता ज्ञाता सबही को मन रंजन
भव दु:ख भ ञ्जन कल्प वृक्ष प्रत्यक्ष ध्याइये ॥
अंतरयामी स्वामी जग काज करिबो को
ए रसना लव लाइये ॥
जलादी महम्मद ऐसो दाता किये
तिहुँ लोक मे यश गाइये ॥

तान तरंग

(१६४०)

तानतरंग, अकबर के सुप्रसिद्ध गायक तानसेन के पुत्र थे इन्होने भी अपनी संगीत कला से अच्छी ख्याति पाई थी। इनका कविता काल लगभग सं १६४० वि० समझना चाहिए। इनका बनाया कोई ग्रंथ नही मिलता स्फुट छंद जहां तहां पाये जाते है इनकी कविता के नमूने नीचे दिये जाते है।

[भैरवी चौताल]

रैन गवाय आये हो लालन
कहां जागे सारी रात बात कहो प्यारे।
नव किशोर नवल तिया संग जागे भागे
अंग अंग के चिन्ह न्यारे न्यारे॥
सिगरी निशा मोहि तलफत बीती
भोर भये पे आये लला रे॥
तान तरंग रंग रस भीने कीन्हे
नख चिन्ह भाग जागे हमारे॥

[धनाश्री—तिताला]

(१)

सावनड़ा होरी खेलन नू मेरे आवदा
वंशी दी तान बजावदा गावदा साड़ा मन ललचावदा
चोवा चंदन अगर कुमकुमा अबीर गुलाल उड़ावदा
तान तरंग प्रभु रस भरि छिरकत रहस रहस गर लावदा

(२)

सावड़ा होरी खेलन नहि जानदा
लंगर लंगर लंगराई करदा साड़ा मन परचावदा
चोत्रा चंदन बूका नंदन ले मुखको सानंदा
ले पिचकारी देवे गारी आनद घन नद नंदा ॥
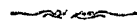
मुबारक

(१६४०)

सैयद मुबारकअली विलग्रामी (मुबारक) का जन्म सं० १६४० वि० में हुआ था। ये अरबी, फारसी, और संस्कृत के अच्छे विद्वान तथा हिन्दी के अच्छे कवि थे। सुना जाता है कि इन्होंने दसो अंगो पर दस शतक लिखा था किंतु इस समय केवल तिल शतक और अलक शतक प्राप्य है। इनके स्फुट छंद भी देखने मे आते हैं। इनकी कविता बड़ी सरस और मनोहारिणी हुई है। नीचे इनकी कविता के कुछ नमूने दिए जाते हैं।

अलक वर्णन।

अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ।
खुस नवीस मुनसी मदन लिख्यो कॉच पर काफ ॥ १ ॥
जगी मुबारक तिय बदन अलक ओप अति होइ।
मनो चन्द की गोद मे रही निसा सी सोइ ॥ २ ॥

लगि दृग अञ्जन ढिग अलक देत मुबारक मोद ।
जनु सांपिनि सुत आपनो भेंटत भरि भरि गोद ॥ ३ ॥

चिबुक कूप मे मन पर्‌यो, छबि जल तृषा बिचारि ।
कढ़त मुबारक ताहि तिय, अलक डोर सी डारि ॥ ४ ॥

लगी मुबारक भुकि अलक, लाल बेंदुली भाल ।
लेत मोल ससि तें सुधा, देत मोल मनि व्याल ॥ ५ ॥

घूघट नील निचोल मे, लट लटकी तिय भाल ।
लरत चन्द्रमा राहु चलि बीच करत मनु व्याल ॥ ६ ॥

लपटि मुबारक लट रही, माथे चाँवर चारु ।
मनु फनि बैठे चन्द पर चन्दन चौकी डारु ॥ ७ ॥

सादे भीने घूँघटनि अलक भलक अनुमानि ।
सोवत ससि पर सेस जनु स्वेत पिछौरी तानि ॥ ८ ॥

नासा के मुकुतानि पर लपटी अलक बिचारि ।
सुधा बुन्द प्रति फनि मनो करत सुधा सों रारि ॥ ९ ॥

बाल भाल पर अलक की भलक मुबारक भांकि ।
राख्यो जनु सब बिधि सुधा, मनु मृग मद ते आंकि ॥ १०

तिल वर्णन ।

गोरे मुख पर तिल लसे ताहि करो परनाम ।
मानहुँ चन्द बिछाय के बैठे सालिगराम ॥ १ ॥

सब जग पेरत तिलन को, थक्यो चित्त यह हेरि ।
तव कपोल को एक तिल सब जग डार्‌यो पेरि ॥ २ ॥

चिबुक कूप रसरी अलक तिल सुचरस दृग बैल ।
बारी बैस श्रृंगार की सीचत मन मथ छैल ॥ ३

मन जोगी आसन कियो त्रिवुक गुफा में जाय।
रह्यो समाधि लगाय के तिल सिल द्वारे लाय ॥ ४ ॥
त्रिवुक सरूप समुद्र में मन जान्यो तिल नाव।
तरन गयो बूड्यो तहां रूप कहर दरियाव ॥ ५ ॥
पानिप भरो कपोल यह, सुरसरि ज्यों जगदीस।
तिल नहिं तामे देखिये, बूड्यो मन की सीस ॥ ६ ॥
दृग काजर रंजक भरे, अलक फिरंग बँदूक।
तिल गोली मन लच्छ को मारे मदन अचूक ॥ ७ ॥
बरुनी तरकस दुहु दिसा, भ्र धनु लोचन भाल।
अलक सेल अति लसत है तिल कपोल पर ढाल ॥४॥

मन जोगी आसन कियो, चिबुक गुफा मे जाय।
रह्यो समाधि लगाय के, तिल सिल द्वारे लाय ॥ ५ ॥

बेनी तिरबेनी बनी तंह मन माघ नहाय।
एक तिल के आहार तें सब दिन रैन बिहाय ॥ ६ ॥

ज्यों निस दिन शिव के सदा, शिवारहत अर्धंग।
त्योंही मुख पर तिल लसे ससि के सदा निसंक ॥ ७ ॥

तेरो तिल वो तिलोत्तमा, तौल सुले सम जाय।
वह उठके स्वर्गहि गई, ते भुमि गई गिराय ॥ ८ ॥

गोरी के मुख एक तिल सो मोहि खरो सुहाय।
मानहु पंकज की कली भौंर विलंब्यो आय ॥ ९ ॥

सोरठा

तिल नहि हवसी जान, चेरो राजा रूप को।
आनन कंचन खान, बैठो चौकी देन को ॥ १४ ॥

सवैया ।

(१)

कान्ह की बांकी चितौन चुभी झुकि काल्हिही झांकी है ग्वालि गवाछनि।
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि ओछे फिरै उभरै चित जा छनि ।
मारेई जाति निहारे मुबारक ये सहजै कजरारे मृगाछनि ।
सीकले काजर देति गवारिनी आँगुरी तेरी कटैगी कटा छनि ॥

(२)

आई सुहाई नई बरखा रितु राखि हमारी कह्यो प्रिय कीजिए ।
जैसेहि रंग लसे चुनरी पिय तैसिये पाग तू हूँ रंग लीजिए ॥
झूला पे झूलहि एकहि संग 'मुबारक' ऐतो कही पुनि कीजिए ॥
जैसे लसे घन श्याम सो दामिनि तैसे तुम्हारे हिये लग लीजिए ॥

(३)

बैठि मथे दधि राधा उते कहुँ डोलत नन्द लला चित चायके ।
बक विलोकति झाँकति त्यों कोउ जानत नाव धरै न बनायके ॥
काढ़त ,माखन ताखन मै मेहदी कर बुन्द रही छबि छायके ।
छीर समुद्र मे डोले 'ममारख' इन्द्र बधू ज्यों सुधा सों अन्हायके ॥

(४)

गुंज गे भौर पराग भरे सुक बोलेगी कोयलरी पिक गाय के ॥
फूलेगे किंसुक फूल जहाँ तहां दौरेगो काम कमान चढ़ाय के ॥
जावेगी सीतल वायु 'मुबारक' लागेगी ही मे सुलाक सा आयके ।
मेरे कहे न चले है बवा किसो ऐहे बसन्त ले जैहे मनायके ॥

(५)

किंशुक भौर कुसुम्मित डारि दे भार बयारि वहै जो गवांरन ।
आग लगी है कहूँ बिन काजन मैहू सुनो समुझो ऋतु राजन ॥

तेरी सो तोहि डरौ मै 'मुबारक' सीसी करौ सखी दै जल धारन।
च्वै चलि है चुरिया चलि आवरी आगुरियां जन लाव अंगारन॥

(६)

आयो बसन्त अली बनते अलि के गण डोलत डंक बगारन।
काम ध्वजा किशलय उमंगी बन कोकिल के गण लागे पुकारन
ऐसे मे कैसे बचैगी 'मुबारक' आज किये है सती के सिगारन।
दौरि पलाश कि डार चिता चढ़ी झूमि पड़े निरधूम अंगारन॥

(७)

अम्ब बसन्त मे बौरहिंगे अरु कामिनि चन्दन वीर रगै है।
डोलैगे पौन सुगन्ध 'मुबारक' कुंज लता सी लता लपटै है॥
योगी यती तपसी औ सती इनको विरहानल आय सतै है।
ताहि छिना स खि प्रान तजौ ओ पे कन्त बसन्त के तन्त न ऐहै॥

(८)

वह साँकरि कुञ्ज की खोरि अचानक राधिका मधव भेट भई।
मुसक्यान भली अंचरा की अली त्रिबली की बली पर दीठि गई॥
झहराइ झुकाइ रिसाइ मुबारक बाँसुरिया हँसि छीनि लई।
भृकुटी मटकाइ गोपाल के गालन आंगुरि ग्वालि गड़ाइ गई॥

कवित्त।

(१)

बाजत नगारे मेघ ताल देत नदी नारे,
झींगुरन झाँझ भेरी बिहँग बजाई है।
नील ग्रीव नाच कारी कोकिल अलाप चारी,
पौन वीन धारी चाटी चातक लगाई है॥
मनि माल जुगनू मुबारक तिमिर थार

चौमुख चिराग चारु चपला चलाई है।
बालम विदेस नये दुख को जनम भयो
पावस हमारे लाई बिरह बधाई है॥

(२)

पानिप के पुञ्ज, सुघराई के सदन, सुख—
सोभा के समूह और सावधान मौज के।
लाजन के बोहित प्रबोहित प्रमोदन के
नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के॥
दया के दिवान प्रतिव्रता से प्रधान पूरे
नैन ये 'मुबारक' विधान नवरोज के।
सफर के सिरताज मृगन के महाराज
साहब सरोज के मुसाहब मनोज के॥

(३)

कनक बरन बाल नगन लसन माल,
मोतिन के माल उर सोहै भली भांति है।
चन्दन चढ़ाइ चारु चन्द मुखी मोहिनी सी,
प्रात ही अन्हाइ पगु धारे मुसुकाति है॥
चूनरी बिचित्र स्याम सजि के 'मुबारकजू'
ढाकि नख सिख ते निपट सकुचाति है।
चन्द्र लपेटि के समेटि के नखत मानो,
दिन को प्रणाम किये रात चली जाति है॥

(४)

विटप लता कढ़ी है चाप दाप सी बढ़ी है.
सेसर चढ़ी अली अवली सुधरि के।
सुमन सुमन जाने वेई शर ऐंचि ताने,

महा विष साने जे पराग रहे भरि के।
आहट निचारो चटकाहट कलीन परो
मारो यह चाहत 'मुबारक' अकरि के।
जैहो जरि मैन आजु जौहर कैतो हिय पर
पावक शिखा पलाश पल्लव पकरि कै॥

(५)

दीरघ उजारे कजरारे भरे प्रेमन के
नद कोक नद राजत दल कैसे भँवर के।
सुघर सलोने कै मुबारक सुधा के भौन
छवि के बिछौने कै अमलता से थरके॥
लाज के जहाज कैधों मान के विराज मान
राधिका सुजान आज तेरे दृग दरसे।
चाकर चकोर भए मृग दास मोल लिए
खंजन खवास भए सफरीन फरसे॥

(६)

छल करि छल तजि गोकुल की गैल लगी
कुबजा चुरैल पगी मन बच काय है।
आप हैं सुखारी हमें कियो है दुखारी प्रीति
पाछिली विसारी कहो याहू कछु न्याय है॥
घन श्याम जीते व्रज काम बाम नात है
'मुबारक' परीते सोय यही परन पाय है।
मरण उपाय है न देखि है न पाय है जो
और कलपाय है सो कैसे कलपाय है॥

जहाँगीर

(१६२५—१६८४)

जहांगीर का उपनाम सलीम था। इनका जन्म संवत १६५२ वि० में हुआ था। ३७ वर्ष की अवस्था में ये दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठे और २२ वर्ष राज्य करने के बाद सं० १६८४ वि० में इनकी मृत्यु हो गई। इनका स्वभाव जैसा रसिक था वैसा ही न्याय में कठोर था। कला कौशल और प्राकृतिक दृश्यों के ये बड़े लोलुप थे। इनकी सभा में अनेकों कवि, गायक और चित्रण कला विशारद थे। इन्हों ने अपनी दिन चर्य्या जिसका नाम तुजुक जहाँगीरी है कइ एक जगह कवियों के अपने पुर-स्कार द्वारा प्रसन्न करने की चर्चा की है जिनमें से दो दृष्टान्त नीचे दिये जाते है।

संवत १६६५ वि० के वैसाख वदी के वृत्तान्तों में लिखा है कि "राजा सूरजसिंह* हिंदी भाषा के एक कवि को भी लाया था जिसने मेरी प्रशंसा में इस भाव की कविता भेंट की कि जो सूरज के कोई बेटा होता तो सदा ही दिन बना रहता। रात कभी नहीं होती क्योंकि सूरज के अस्त होने पर वह उस की जगह बैठ कर जगत को प्रकाश मान रखता। परमेश्वर धन्य है जिसने आपके पिता को ऐसा पुत्र दिया जिससे उनके अस्त होने पर लोगों में शोक रूपी रात्रि नही व्यापी, सूरज बहुत पश्चाताप करता है कि हाय मेरा भी कोई एसाही बेटा होता जो मेरी जगह बैठ कर पृथ्वी में रात नही होने देता जैसा कि आप के भाग्य के चमत्कार और न्याय के तप-तेज

* मारवाड़ के राजा

से भारी दुर्घटना हो जाने पर भी संसार इस प्रकार से प्रकाश मान् हो रहा है मानो रात का नाम और निशान ही नही है।"

ऐसी युक्ति हिंदी भाषा के कवियों की कम सुनी गई थी। मैने इसके पुरस्कार में उस कवि को एक हाथी दिया।

वैशाख वदी ३० मंगलवार संवत १६७५ वि० को जहाँगीर ने अहमदाबाद गुजरात के वृखराय भाट को १०००) रु० दिये और इसके विषय मे लिखा है कि "यह गुजराती है। इस देश की बाते खूब जानता है। इसका नाम बूटा था। मेरे जी में आया कि बूढ़े आदमी को बूटा कहना अनमिल बात है और विशेष करके उस दशा में जब कि मेरी कृपा दृष्टि से हरा भरा होकर फूल फल से लद गया है। इस लिए मैने हुक्म दिया कि इसको वृख राय कहा करें। वृख (वृक्ष) हिन्दी में दरख्त को कहते है।"

ये स्वयं भी साधारण श्रेणी की कविता करते थे। इनके स्फुट छंद राग कल्प द्रुम में मिलते है। इनकी कविता का नमूना नीचे उद्धृत किया जाता है।

(१)

सौतान मध खेलत लाल भवर
मानो फूली फुलवारी बन बन बनिता आई है
प्रिय मन भाई।
एकन सो नैन सैन एकन सो मीठे बेन एकन
को पाछे ते अक भरत अचानक छबि छाई॥

(२)

दूनी दूजे राग मडोल हि मिलि गाई॥
उत्ताम मधुरित फूली इत काम की बेली
ऐसे पिय तिय दोउ भाँत एक दाई

अति सुख दयो दोउ विवसन राई 'सुलतान
सलीम' प्रिय रूसी हैं मनाई ॥

जमाल

(१६२५—१६५०)

जमाल का पूरा नाम जमालुद्दीन था। ये पिहानी ग्राम के रहने वाले थे। इनका जन्म सं १६२५ वि० तथा कविता काल लगभग १६५० वि० के कहा जाता है। इनकी जमाल पचीसी नामक एक हस्तलिखित पुस्तक देखने मे आई है। ये ऊँचे दर्जे की रचना करते थे। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

छप्पय

जदपि कुसंग संग लाभ, तदपि वह संग न कीजै।
जदपि धनिक है निधन, तदपि घट प्रकृति न लीजै ॥
जदपि दान नहिं शक्ति, तदपि सन्मान न छूटे।
जदपि प्रीत उर घटे, तदपि मुख उधर न टूटे ॥
सुन सुजस द्वार कीवार दै, कुजस 'जमाल' न मूकिये।
जिय जाय जदपि भलपन करत, तऊ न भलपन चूकिये ॥

दोहा

सजन विसारे ही भले, सुमरन करै बेहाल।
देखो चतुर विचार कै, साँची कहै जमाल ॥ १ ॥
तिस जू लागी तीस की, तिस बिन तिस न बुझाय।
आन मिलाओ तीस को, तिस देखै तिस जाय ॥ २ ॥

'दीन्हीं होय सुपाइये, कहते वेद पुरान।
मन दे पाई बेदना, वाह हमारे दान॥ ३॥
मन रंजक छाती तुमक, विरह पलीता लाल।
आहि अवाज न निकसवी, जाती फूट जमाल॥ ४॥
और अगन मेटत सुगम, बिगरत बरसत तोय।
बिरह अगन विपरीत गति, घन तै दूनी होय॥ ५॥
चित चकमक छतियाँ पथर, काम अगनि कँप गात।
नैननीर बरखत नहीं तौ तन जर बर जात॥ ६॥
रगत मांस सब भख गयो, नेक न कीनी कानि।
अब बिरहा कूकर भयो, लाग्यो हाड़ चबानि॥ ७॥
जहाँ इकलो मन जात है, तहाँ लौ ये तन जाय।
तौ या पापी बिरह के, बस ह्वै मरै बलाय॥ ८॥
यह तन तो लंका भई, मन भयो रावन राय।
बिरह रूप हनुमँत भयो, देत लगाय लगाय॥ ९॥
बिरह अग्नि विपरीत गति, कही न जानै कोय।
दूर भये देही जरै, नियरै सीरी होय॥ १०॥
जे नित देखे चाहिए, ते नैनन ते दूरि।
असनेही अन—भावते, रहै निकट भर पूरि॥ ११॥
एक कला धर सिर धरत तन बिष जरन सिरात।
चंदमुखी चित में बसत, तातै मन न जरात॥ १२॥
सेज ऊजरी कुसुम रचि, और ऊजरी रात।
एक ऊजरी नारि बिन, सबै ऊजरै जात॥ १३॥
चंदमुखी चित चोरिये, दिन कर दुख दै मोहि।
जब निसि तारा देखियै, तब निसे तारा होहि॥ १४॥

प्रीतम भंवर वियोग की, सुन लीजो यह बात।
मुख तो पीरो ह्वै गयो, श्याम भयो सब गात ॥ १५ ॥

जो संग्रहौ तो तन दहै, तजौं तो प्रेमहि लाज।
भई छछुंदर सांप की, नवल विरह पिय बाज ॥ १६ ॥

रह्यौ ऐंचि अन्त न लहे, अवध दुशासन वीर।
आली बाढ़त बिरह ज्यों, पंचाली को चीर। १७ ॥

अवधि बीति जोबन बिते म्हेर करो मन माहि।
जिय की जिय मे रहत है, ज्यौहिं कूप की छाहि ॥ १८ ॥

विरह सकति लंकेस की, हिये रही भरपूरि।
को ल्यावै हनुमंत ज्यौ, सजनसजीवन मूरि ॥ १९ ॥

शीत काल जल माझ ते, निकसत बाफ सुभाय।
मानहु कोऊ विरहनी, अबही गई अन्हाय ॥ २० ॥

जरती बरती हौ फिरी, जल धर दौरी जाऊँ।
मो देखत जलधर जरै, जरती कहां समाउं ॥ २१ ॥

पिय बिन दिया न बारि हैा, मो अंधियारै सुक्ख।
करि उजियारो हे सखी, काको देखू मुक्ख ॥ २२ ॥

जब सुधि आवत मित्त की, बिरह उठत तन जागि।
ज्यों चूने की काकरी, जब छिर को तबाआगि ॥ २३ ॥

हौ ही बौरी बिरह बस कै, बौरो सब गाउं।
कहा जानि ये कहत हैं, ससिहि सीत कर नांउ ॥ २४ ॥

हरि विधुरत कुंजन महीं, लगी विरह की लाय।
हम जरि बलि कवैला भई, द्रुम कठोर हरियाय ॥ २५ ॥

लाल तुम्हारी देखियत, सब काहू सों प्रीति।
जहां डारिये तहँ बढ़ै, अमरबेलि की रीति ॥ २६ ॥

सोरठा

मैं लखि नारी ज्ञान, करि राखो निरधर यह।
वहई रोग निदान, वहै वैद औषध वहै ॥ १ ॥

भाखौ अति सुख दैन, कही चंद गोविन्द सौ।
घन अरु तिय के नैन, दोऊ वरखे रैन दिन ॥ २ ॥

ताला जड़िया ज्याह, कूची ता परसे रही।
ऊघड़े सिआ यांह (के) जड़िया रहसी जेठवा ॥ ३ ॥

कादिर बक्स

(१६३५)

कादिरबक्स का जन्म सम्बत १६३५ वि० में हुआ था। ये पिहानी जिला हरदोई के रहने वाले थे। ये सैय्यद इब्राहीम के शिष्य और कविता आदरसणीय करते थे। मिश्र बन्धुओं ने इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रक्खा है। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता—स्फुट छन्द देखने मे आते है।

कवित्त

(१)

गुन को न पूछै कोऊ औगुन की बात पूछै,
कहा भयो दई कलयुग यों खरानो है।
पोथी औ पुरान ज्ञान ठट्टन मे डारि देत
चुगुल चबाइन को मान ठहरानो है॥
कादिर कहत यासो कछू कहिबै को नाहिं

जगत की रीति देख चुप मन मानो है।
खोलि देखो हियो सब ओरन सो भांति भांति
गुन ना हेरानो गुन गाहक हेरानो है ॥

(२)

देखत के नीके परिनाम बहु आदर के।
देखत भलाई सदा जीव में जरे रहैं ॥
भेद भेद पूछैं मूछैं देवत न आवै लाज।
पाय के समूह सिन्धु आखिन अरे रहैं ॥
कादर कहत जे नटीन के तलासिबे को।
हाट बाट हूँ में दरबार में खरे रहैं ॥
निन्दा को जु नेम गिने चुगुली अधार।
पर स्वारथ मिटाइबे को खोजही परे रहैं ॥

(३)

गरज नगारे भारे वृन्द हरकारे आगे
ध्वजा धारे धुरवा गजतीना बदन के।
पवन तरंग चढ़े धाये भट रग रंग
घेरि आये चारो ओर सूने ही सदन के ॥
केकी कूक काती कल कोकिला से घाती
अरि छाती हहरानी देखे चपला रदन के।
'कादर' बिरह सुधि लीजै श्याम सादर जू
आये बीर बादर बहादुर मदन के ॥
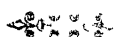
(४)

पावस न प्यारी चढ़्यो सैन साजि मैन भारी
कोकिला नकीब नौल धौल धुजा बक माल।
बन्दी जन मोर गन बूंद जोर बान घन

दादुर निशान देत दौह दौह नदी ताल ॥
प्यारे के निरादर ते 'कादर' करनि हारे
कारे कारे धूम धारे बादर द्विरद जाल।
दामिनि दमक परवा की चमक शाल
करति बिहाल हमैं बाल बिना नन्द लाल ॥

(५)

हरखै हरौल ह्वै अमरखे अनंग हेत
करखै कलापी चोपि चातक चमू पिली।
उमड़े घटा है मानि करने टटा है छुटा
फेरत पटा है ठटा सूर की हटा किली ॥
घेरि के अड़े हैं बिन बूंदन लड़े है ओध
आनँद खड़े हैं देख दादुर बड़े दिली।
कादर बियोगी हार बादर बलाक फेरि
बादर बहादुर को नादिर फतेह मिली।

शहरयार

(१६६२)

शहरयार जहांगीर के पुत्र थे। ये सं० १६७४ वि० में किसी युद्ध में मारे गये। इनका कविता काल लग भग सं० १६६२ वि० के समझना चाहिए। इनका केवल एक कवित्त मैंने देखा है जो नीचे दिया जाता है।—

कवित्त

चांद से चकोरे टले मेघ से भी मोर टले,
चोरी से चोर टले दिल से दिलदार जो।

रोगी हूं ते रोग टले, भोगी हूँ ते भोग टले,
जोगी हू ते जोग टले कामी हूँ ते नार जो ॥
पर्वत से मेरु टले धन से कुबेर टले,
दिन का भी फेर टले हो बुरा हजार जो।
लेकिन 'शहरयार,' मानो यह एतबार
टले नहि होनहार, होवे होनहार जो ॥

अहमद

(१६६०—१६६६)

अहमद का जन्म सं० १६६० वि० और रचना—काल सं० १६६६ वि० के लग भग कहा जाता है। मिश्र बंधुओं के कथनानुसार इनका मत सूफी अर्थात् वेदान्तियों का था। अब तक इनकी स्फुट रचनायें ही मिलती थी किन्तु हाल मे काशी नागरी प्रचारिणी सभा को रत्न विनोद नामक एक कोक शास्त्र विषयक इनका ग्रंथ मिला है। इस मे विभिन्न रोगों की औषधियां गद्य में तथा शेष भाग पद्य में लिखा गया है। नमूने के तौर पर इनकी कुछ कविताएं नीचे दी जाती हैं।

दोहा।

मन में राखो मन जरै, कहौ तौ मुख जरि जाय।
'अहमद' बातन बिरह की, कठिन परी दुहुँ भाय ॥१॥
'अहमद' गति अवतार की, कहत सबै संसार।

बिछुरे मानुष फिर मिलै, यहै जान अवतार ॥२॥

प्रीतम नहीं बजार में, वहै बजार उजार।
प्रीतम मिलै उजार में, वहै उजार बजार ॥३॥

कहा करौं बैकुण्ठ लै, कल्प वृक्ष की छाँह।
'अहमद' ढांक सुहावने, जहं प्रीतम गलबाँह ॥४॥

गमन समय पटुका गह्यो, छाड़हुँ कह्यो सुजान।
प्रान पियारे प्रथम ही पटुका तजौं कि प्रान ॥५॥

'अहमद' या मन सदन में, हरि आवे केहि बाट।
बिकट जुरे जौ लौं निपट, खुले न कपट कपाट ॥६॥

कहि आवत सोई यथा, चुभी जो हित चित माँहि।
'अहमद' घायल नरन को, बेकलाइ कल नाहि ॥७॥

'अहमद' अपने चोर को, सब कोउ कहे हनेउ।
मो मन हरन जु मों मिलै, बार फेर जिव देउ ॥८॥

प्रेम जुवा के खेल में 'अहमद' उल्टी गति।
जीते ही को हारिबो, हारे ही की जीति ॥९॥

कहि 'अहमद' कैसे बने, अनभावत को संग।
दीपक के मन में नही, जरि जरि मरै पतंग ॥१०॥

'अहमद' नग नहि खोलिये या कलि खोटे हाट।
चुपकि मुटरियां बांधिये, गहिये अपनी बाट ॥११॥

'अहमद' अपने चोर को सब कोउ डारत मार।
चोर मिलै मो चित्त को तन मन डारौ बार ॥१२॥

'अहमद' लड़का पढ़न में कहु किन झोंका खाय।
तन घट बह विद्या रतन भरत हिलाय हिलाय ॥१३॥

सोरठा

हाड़ गूद रग मांस, सो तो बिरहा लै गयो।
'अहमद' रह्यो जु सास, ताही को सासौ पर्यो ॥१॥
बुन्द समुद्र समान, यह अचरज कासो कहों।
हेरन हार हेरान, 'अहमद' आपी आप में ॥२॥

कवित्त।

(१)

नरन की करे सेव, बड़े 'अहमद' भेव,
पाछे काम क्रोध लोभ मोह अधिकात हैं।
तासो जीव हिसा झूठ निंदा आदि कर्म ह्वै हे,
ताही के कुसंग नर दुःख दरसात है॥
मेरे जान बीज सब दोषन को चाकरी है,
सोई ताहि भावे मद अंध उत्पात है॥
पूजा परमेश्वर की परिहरे पुन्य पाप,
जैसे पवन परसे ते प्रान उड़ि जात है॥

(२)

जनम को कूर मिलै पेट को न भर पूर,
लाखन मजूर अब लगे रहै कामा को।
देखत को नंग भाख दानिन को मंगा देखो,
प्रभु जी के रंगा सुधि परे नहि सामा को॥
आढ़त हो टट्टा लोग करत है ठट्टा तापै,
तारु के डुपट्टा औ जरकसी जामा को।
'अहमद' कंगालता के पायन परत छाल,
लागे अब हाल मुख पाल में सुदामा को॥

रसविनोद से

दोहा

अंजलि समुद्र उलीचिये, नख सों कटे सुमेर।
काहू हाथ न आवई, काल करम को फेर ॥१॥

लिख्यो जु करम लिलाट विधि रोम रोम सब ठौर।
सुख दुख जीवन मरन को करे जुगुन कछु और ॥२॥

करै जुकरम अनेक नर बहै करम की रेह।
किये विधाता गुन प्रकट रोम रोम सब देह ॥३॥

गुपुत प्रकट संसार मधि जो कछु बिधना कीन।
अगम अगोचर गुन प्रकट रोम रोम कहि दीन ॥४॥

नर बिन नारि न सोहिए नारी बिन नर हीन।
जैसे ससि बिन निसि अंबर, निसि बिन चंद मलीन ॥५॥

गुन चाहत औगुन तजत, जगत बिदित ये अङ्क।
ज्यों पूरन ससि देखि के, सब कोऊ कहत कलंक ॥६॥

वयस-प्रमाण

सात बरस लौं कन्या जानउ।
तासो काम केलि जनि ठानउ॥
बाल रूप लज्जा की खान।
खेलै खेल खिलौना आन॥
गौरी द्वादश बरख प्रमान।
अति ही काम केलि जिन ठान॥
लाज अरु काम समान हैं दोऊ।
जो बिलास जाने सुख सोऊ॥

बीस बरख लौं बाला जानिय ।
काम कुतूहल निर्भय मानिय ॥
पान फूल सोधा सौ हेत ।
धन्य पुरुष जो यह सुख लेत ॥
तीस बरस लों कहिये तरुणी ।
काम बाम जाको भुव बरनी ॥
अन्तरजामी सुख की खाना ।
पिय मनसा तैसी रति माना ॥
चालिस लौं तिय प्रौढ़ा कहिए ।
तासो अनेक भांति सुख लहिए ॥
पियहि रिझाइ आपु बस करे ।
सेवा लगि कामिनि मन हरे ॥

चालिस ते उपरान्त जो निरधा ताहि बखानिए ।
राखहु बतरस लाइके, सुरति न तासों ठानिए ॥
तन मन सब अर्पन किये पति औ सुत को सेवती ।
छिन बिछोहहूँ मान दुख ि ता करि करि रोवती ॥

उसमान

(१६७०)

उसमान का उपनाम 'मान' था । ये गाजीपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शेख हसन था । इनके पाँच भाई थे। ये जहाँगीर के समय में हुए । संवत १६७० वि० में इन्होंने चित्रावली नामक एक प्रेम कहानी लिखी, जो दोहा चौपाइयों में है। इसकी कथा काल्पनिक है किंतु बिल्कुल ऐतिहासिक सी जान

पडती है। उसमान सूफी मत के मानने वाले थे यह मत हिन्दुओं के वेदान्त का एक रूपान्तर है। अस्तु, उन्होंने स्थल स्थल पर वेदान्त और अद्वैत वाद की झलक दिखलाने की कोशिश की है। चित्रावली की कथा बड़ी मनोहर है। कवि ने ग्रंथ में धरनीधर के प्रतिज्ञा पालन, सुजान के अटल प्रेम, परेवा की स्वामि भक्ति और कौलावती के आत्मोत्सर्ग का अच्छा चित्र खींचा है। इनके अतिरिक्त चित्रावली की वाटिका का वर्णन उसका नख शिख, उसका विरह षट्ऋतु, और बारह मासा आदि देखने योग्य है। कुंअर ढूढन खंड में कवि ने कितने ही देशों और प्रदेशों का वर्णन किया है। सब से अचंभे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अंगरेजों का वर्णन भी किया है। उस समय अंगरेजों को आए इस देश में बहुत थोड़े दिन हुए थे। इस्ट इंडिया कंपनी सं० १६५६ वि० में लंडन में बनी थी और सं० १६६३ वि० में सूरत में कंपनी ने अपना गुदाम बनाया था। उसके एक वर्ष बाद का सं० १६७० वि० का रचा हुआ यह ग्रंथ है। उस समय कवि का साधारण गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रह कर अंगरेजों के विषय में जानकारी रखना कोई साधारण बात नहीं है। हम इनकी कविता का उदाहरण नीचे लिखते हैं।

दोहा

सिरजत भार नितंब के, मिलत न कीन्ह संबंधि।
मनु कटि राखे बांधि के, त्रिबली बंधन बंधि॥ १॥

सोभित किंकिनि निकट कटि 'मान' उपम जी आइ।
हंस पाति तज मानसर बैठे परबत जाइ॥ २॥

पंखिन लासा प्रेम का, बाचा बंधन पाइ।
दे दे मारो मूड़ इँह निकस न कैसहु जाइ॥ ३॥

गहि जो भिखारी मारई, दुइ घट यहि जग होइ।
एक हत्या कांधे चढ़ै, पुन भल कहे न कोइ ॥४॥

ज्ञान ध्यान मद्धिम सबै, जप तप संजम नेम।
'मान' जो उत्तम जगत जन, जो प्रतिपारै प्रेम ॥५॥

सती मरै जो सत चढ़ै सत्त सहस दश आउ।
तन मन धन औ जीव किन जाउ सत्त जनि जाउ ॥६॥

बाँधी डोरी प्रेम की बर सो जाइ न छूट।
दीपक प्रीत पतंग ज्यों, प्रान दिये पर छूट ॥७॥

तुही रहा सब पूरि जग, पै सुदिष्ट नहि मोहि।
देहु सो अंजन प्रेम चखु, जेहि सब देखौं तोहि ॥८॥

'मान' करहु जो कर सकहु, कथनी अकथ अपार।
कथे न कर कछु आवई, करनी करतब सार ॥९॥

कौन भरोसो देह का, छाड़हु जतन उपाइ।
कागद की जस पूतरी, पानि परे घुल जाइ ॥१०॥

तब लहु रुहिये बिरह दुख, जब लगि आव सो बार।
दु:ख गए तब सुक्ख है, जानै सब संसार ॥११॥

सब कहँ अमिरित पांच है, बंगाली कहँ सात।
केला, कांजी, पान, रस, साग, माछरी, भात ॥१२॥

छत्री सुन जो ना करै, तिय अरु गाइ गोहारि।
पुहुमी कुल गारी बढ़ै, सरग होइ मुख कारि ॥१३॥

खरग सम्हारै सूरमा, बैरी मुख समुहात।
तौलहु पौरुख ना तजै जौ लहु आव न रात ॥१४॥

जैसे पनही पाँव की, तैसे तीय सुभाउ।
पुरुष पंथ चलु आपने पनही तजै न पाँउ ॥ १५ ॥

बिनसत कौल न बार भइ गयो अथै जग 'मान'।
मारेसि ईट देखाइ गुण सोई भा उपखान ॥ १६ ॥

लोचन जाहि कटाच्छु सर मारि प्रान हरि लीन्ह।
अधर बचन ततखिन दोऊ, अमिय सीचि जिउ दीन्ह ॥१७॥

कहाँ सो बिक्रम सकबधी, कहाँ सो राजा भोज।
हम हम करत हेराइगे, मिला न खोजे खोज ॥ १८ ॥

बिरह दहनि कोइ किमि कहै, रसना कहि जरि जाइ।
सोइ हिय माहि सँभारई, जेहि तन लागै आइ ॥ १९ ॥

कहा सो गोड़िया तुच्छ तन कहा किसन अस राउ।
बैरी जो बसकै मिलै लेइ सो आपन दाँउ ॥ २० ॥

हाथ मलै औ सिर धुनै अंजन धोवै रोइ।
पहिलहि जो न बिचार भो, अब रोवै का होइ ॥ २१ ॥

'मान' न बातै इमि करै जो लहुँ घट मह पौन।
बिधना एतना राखु थिर नैन, बैन औ सौन ॥ २२ ॥

सिसुताई तन कोट गहि, रही अटक दिन चारि।
चली निकस पुनि हारि कै तरुनाई बरिआरि ॥ २३ ॥

'मान' कसौटी सुभट रन, कचन सम नर गात।
तहाँ कसे पै जानिए, कौन पीत को रात ॥ २४ ॥

बांकी बांकी भौह सो, करै कटाछ कलोल।
सूधे नाही जो नवै, सोई जगत अमोल ॥ २५ ॥

बिरह अगिन उर मँह बरै, एहि तन जानै सोइ।
सुलगै काठ बिलूत ज्यों धुँआ न परगट होइ ॥ २६ ॥

'मान' जगत परगट जरै, पावक बिरह सरीर।
धन बिरहिन औ धन हिया, गुपुत सहै जो पीर ॥२७॥

नैन पियासे रूप जल, पोवत जेहि न अघाहि।
कूप चिवुक जो मन परे, बूड़ि बूड़ि रहसाहि ॥२८॥
सोहत हास जराउ गर, बदन हेठ निकलङ्क।
सर न मयक सूर जनु, दुरत राहु के संक ॥२९॥
गढ़पति हयपति, दुरदपति सुनि कुच कथा अकाथ।
होइ भिखारी सब चहहि, जाइ पसारन हाथ ॥३०॥

षटऋतु वर्णन

बसन्त

ऋतु बसन्त नौ तन बन फूला, जहँ तहँ भौंर कुसुम रँग भूला।
आहि कहा मो भौंर हमारा, जेहि विनु बसत बसन्त उजारा ॥
रात बरन पुनि देखि न जाई, मानहु दवा दुहूँ दिसि लाई।
अङ्ग सुवास चढ़े जनु चाटे, फूल अङ्गार कली जनु काँटे ॥
कोकिल पपिहा करै पुकारा, बोलत बोल साँग उर मारा।
रति पति दुरद रितु पती वली, कानन देह आइ दल मली ॥
दहुँ केहि बन बस सिह हमारा, कस न आइ जग बिरह सँहारा ॥

पुहुप सरासन पनच अलि मन मथ धरे चढ़ाइ।
पंच बान छिन छिन हने बिरहिनि उर समुहाइ ॥

ग्रीष्म

ग्रीषम तपनि तवै जग मांहीं जिय कायर ताकै परिछांहीं।
सूर आगि सिर पर बरसावै, बिरहा भीतर देह जरावे ॥
हौं बिच जरौ अगिन दुइ माहीं, धरतन परे दृष्टि परछाईं।
जेठ जरनि दुख जाइ न काढ़ा, कन्त कलप दहु केहि बन बाढ़ा ॥
बिरह दवा पुन जाइ न हेरी, परगट भई अगिन की ढेरी।

कोइ न भया मरोही आवे, कतहुँ छांहि की चाह सुनावे ॥
रसना पिउ पिउ रटत सुखानी, प्रेम पियास पियै को पानी ।

ग्रीषम पुहुमि अनल भई पथिक चले किमि कोइ ।
मगु जोवत नैना जरैं धुवाँ न परगट होइ ॥

पावस

दूभर ऋतु जब पावस लागी, घन बरसै पिउ हम तन आगी ।
जिमि जिमि परै मेघ जल धारा, तिमि तिमि उर सो उठै लुआरा ॥
स्याम रैन मँह कोकिल बोला, बिरह जराइ कीन्ह तन झोला ।
दामिनि खरग दीन्ह जनु बाढ़ी, चमक दिखाइ लेइ जिव काढ़ी ॥
कासों कहों बिथा जिउ केरी, काकी होउँ पाँइ परि चेरी ।
श्याम घटा औ सेज अकेली, जागि जाइ सब रैन दुहेली ॥
बिरह समुन्द जानु अति बाढ़ा, को गहि भुज जल बूड़त काढ़ा ॥

ऊँच खाल जग जल भरे, भए समुद अवगाह ।
सखी पथिक जहँ तहँ टिके, को लै आवै चाह ॥

शरद

सरद समय अति निरमल राती, कन्त बाजु सेँहि बिहरै छाती ।
राति निखण्ड चकोर पुकारा, मानहु काढ़ि सेल उर मारा ॥
ससि पारधि मा पारस बांधा, किरन बान चारिहुँ दिसि साधा ॥
कहाँ जाय यह मन मृग भागी, बिरह आगि चारहुँ दिसि लागी ॥
केतिक जाइ सकत निसि बीती, बरबस रहो बाँधि उर थीती ॥
आपु मांह किमि सखी मिलाही, जल परवाह दुहूँ पल माहीं ॥
झुकै नींद बरबस चखु आई, आँसु ढरे साथ बहि जाई ॥

गुपुत मदन दौ पर चरै, प्रगट दहै दुजराजु ।
सखी प्रान घट क्यों रहे कन्त पियारे बाजु ॥

हेमन्त

हिम रितु यह विरहानल बाढ़ा, कन्त बाजु दुख जाइ न काढ़ा।
परै तुषार विषम निसि सारी, सिसकी लेत रहौ मैं बारी ॥
ते न फिरे जो गये बसीठी, बरै लागि उर मदन अँगीठी।
बिरह सराग करेज पिरोवा, चुइ चुइ परै नैन जो रोवा ॥
उरध उसास पवन परचारा, धुकि धुकि पंजर होय अँगारा।
बड़ी रैन जीवन सुठि थोरा, चेतन परै दिष्टि जनु मोरा ॥
पूस मास अति निसि अधिकाई, सो धन जान जो विरह जगाई।

थके नैन बरु देखते, घटै न कोऊ दुःख।
बाढ़ै सिर पर गुरु दोऊ, एक सरि परि ये दुःख ॥

शिशिर

सिसिर समीर सरीर सतावै, जाड़ेहु नैन नीर भरि आवै।
झुरके पवन करेजा कांपा, बरिया बिरह रहै नहि झांपा ॥
श्री पचम मानहि सब लोगू, पूजहि देवता विलसहि भोगू।
हौ कुल कान प्रेम बिच बसी, हिरदे रुदन अधर पर हँसी ॥
सखिन गुलाल आनि सिर डारा परगट भो जनु बिरह लुवारा।
अब सहु रही गुपुत यह आगी, अब परगट होइ चाहै लागी ॥
केहि आगे लै यह सिर मारौं, सिर की आगि सहै नहि पारौं ॥

अब तन होरी लाइ के होइ चहौं जरि छार।
चहुँ दिसि मारुत संग ह्वै ढूढ़ौं प्रान आधार ॥

माता का पुत्री को उपदेश

चौपाई

सजग रहब गौने ससुरारा, अहित अलेखित हित दुइ चारा ॥

पूर आपन जौं लहु न चिन्हाई, सब सों राखब बदन छिपाई ॥
ओबरी मांह रहब दिन गोई, आंगन होब रात जब होई।
बैसब सदा बार दै पीठी, परे न सौंह आन की डीठी ॥
संतति रहहि मुकुर कर मांही, चीन्हब पर आपन परछांही ॥
पुनि डर मान्ब गुरुजन केरी, सनमुख काहु न देखब हेरी।
उतर न देब कहै जो कोई, लाजन रहब चरन तर जोई ॥

ननदी औ घर जो कहै रिसि राखब जिय मारि।
परिछि सीस पर लेब नित सामिनि देइ जो गारि ॥

औ चित लाइ करब पिउ सेवा, एक पिऊ दोउ जग सुख देवा।
मंत्र जंत्र साधब जनि कोई, सेवा एक पीव बस होई ॥
जौ बस होई तो गरब न करियो, आपु अधीन होइ मन हरियो।
औ काहू सो भेद न करियो, धन ज्यों करे छिपाए रहियो ॥
लोगन आगे रहब लजाई, चोरी चढब सेज पिय जाई।
जिउ दुख दै सेवब सुख त्यागी, सगरी रैन गॅवावब जागी ॥
सौतिन्ह कर इरखा नहिं करना, साईं संग सदा जिय डरना ॥

अलप मान सेवा अधिक रिस राखब जिय मारि।
जेहि धन मँह यह तीन गुन, सोइ सोहागिन नारि॥

कुँअर ढूँढन खण्ड से

जिन पच्छू दिसि कीन्ह पयाना। पहिलहिगा सो देस मुलताना।
देखेसि सिन्धी लोग सवाई। महिरावन सब सेवहि साईं ॥
हेरेसि ठट्टा नगर सुहावा। बिहग हरिन सेवहि गजावा ॥
काबुल हेरि मुगल कर देसा। जहाँ पुहमि पति होइ नरेसा ॥
देखेसि रूप सिकन्दर केरा। स्याम रहा होइ सकल अँधेरा।
देखेसि मक्का विधि अस्थाना। हीय अन्ध ते पाहन जाना ॥

हाजी संग मिलि गयउ मदीना। का भा गये जो साफ न सीना।
गा बगदाद पीर के तीरा। जेहि निहचै तेहि संग हमीरा॥
इस्ताम्बोल मिसिर पुनि हेरा। गा लदाख लहु कान्हेसि फेरा।
दखिन देस को जे पगधारा। चला ताकि सो लंक पहारा॥
पहलेहि गा हरेसि गुजराता। सुन्दर धनी लोग सुख दाता॥
गयो जाय जह कच्छा होई। लोग सुरूप सुखी सब कोई।
बलन्दीप देखा अँगरेजा। जहां जाइ नहि कठिन करेजा॥
ऊँच नीच धन सम्पति हेरा। मद बराह भोजन जिन केरा।
जहां जाइ उह बन्दर साजा। लगा संग चढ़ि गयऊ जहाजा॥

शाहजहाँ

(१६४७—१७२३)

शाहजहाँ दिल्ली के पाँचवें मुगल सम्राट थे। इनका जन्म सं० १६४७-वि० में हुआ और मृत्यु सं० १७२३ वि० में हुई। शाहजहाँ की इतिहासकारों ने बड़ी प्रशंसा की है। पर कुछ लोगों का कहना है कि वे उतनी प्रशंसा के योग्य नहीं थे। गद्दी पर बैठते ही उन्होंने अपने सब भाइयों को मार डाला और पीछे वे अपने बेटों को भी बस में न रख सके। बादशाह इंसाफ अवश्य करते थे पर कभी कभी अनुचित दण्ड भी दे देते थे। एक बार उन्होंने एक गुलाम को तुच्छ अपराध पर मरवा दिया था, परंतु उनके राज्य में प्रजा को विशेष कष्ट नहीं था। और चाहे जो कुछ हो ये गुणियों का विशेष आदर करते

थे काव्य ओर संगीत के बड़े प्रेमी थे। इनके दरबार में कई कवि और गायक जिनमें से जगन्नाथ राय, त्रिशूली हरनाथ महापात्र और सुन्दर कविराय की कविता ये बहुत पसंद थे और इनको बहुत पुरस्कार देते थे।

कहते है कि जोध पुर के महाराजा जसवंत सिंह को शाह-जहाँ के सत्संग से ही कविता करना आया था। एक बार शाहजहाँ ने महाराज से किसी कवित्त का अर्थ पूछा जब महाराज से पूरा पूरा अर्थ न हो सका तो सुन्दर मिश्र हुक्म दिया कि महाराजा को कविता सिखाओ और कवि बनाओ। ये स्वयं भी पद्य रचना करते थे जो फुटकर अब भी इधर उधर पाए जाते हैं। ये बड़े शान और शोकत से रहते थे। यूरोप के यात्रियों ने जो १७वीं शताब्दी में हिन्दुस्तान में आए बादशाह के धन और ठाट बाट की बड़ी प्रशंसा की है। शाहजहाँ ने ३० वर्ष तक राज्य किया ६७ वर्ष की अवस्था में वे गद्दी से उतार दिये गए और ७४ वर्ष की कवस्था में परलोक सिधारे। मृत्यु के बाद उनकी लाश ताज बीबी के रोजे में मलिका की कब्र के पास गाड दी गई।

इनकी कविता का उदाहरण राग कल्पद्रुम से नीचे लिखा जाता है।

पद

मेरो तो आये हो भोरे सब निशि अनत ही बसे।
तुरत ही मानि रिन सो कैसे दुरत सो आस सब हरे॥
चारो जाम जानत जन घेरी हम संग जगबे की गरज हरे।
'शाहजहां' पिय पैं न गई तुम्हारी चोरी छोहरे॥

ताहिर

(१६७८)

ताहिर आगरा के रहने वाले थे। सम्वत १६७८ में इन्होंने एक कोकसार बनाई।

पदुम जाति तन पदुमनि रानी। कज सुबास दुवादस बानी ॥
कंचन बरन कमल की बासा। लोचन भॅवर न छाड़इ पासा ॥
अलप अहार अलप मुख बानी। अलप काम अतिचतुर सयानी ॥
झीन बसन मद झलकइ काया। जस दरपन मॅह दीपक छाया॥

औरंगजेब

(१६५५-१७६४)

औरंगजेब का जन्म संवत १६५५ वि० में हुआ और मृत्यु संवत १७६४ वि० में अहमदाबाद नगर में हुई। ये देहली के अंतिम शक्तिशाली मोगल सम्राट थे। जब ये राजसिंहासन पर बैठे इनकी अवस्था ४० वर्ष की थी। ये कट्टर मुसलमान थे। इतिहासज्ञों ने इन्हें जीवन का सादा, सदाचार का स्वरूप, धर्म का पक्का, स्वभाव का वीर और कठोर, दीन दुखियों का साथी, न्याय और सत्य का पक्षपाती, रुचि का शुष्क, हिन्दुओं का विद्वेषी, तथा संगीत काव्य आदि कलाओं का विनाशक बतलाया है। और बातों के सत्यासत्य के निर्णय करने का इस समय हमारा उद्देश्य नहीं है किंतु जब हम औरंगजेब के लिये एक कवि द्वारा यह आशिर्वाद सुनते हैं कि "जहांपनाह तू जुग जुग जीवो रैयत राजीरे।" और उसकी भणितायुक्ति पदों को

पढ़ते है तो एक महान संदेह उठता है कि क्या वे वास्तव हिंदू विद्वेषी तथा संगीत और काव्य के विनाशक थे। कुछ लोग कविताओं में औरंगजेब का नाम रहने पर भी कहते हैं कि वे औरंगजेब की नही हिन्दुओं की कविताए है। इनके उत्तर में हमारा केवल यही कहना है कि यदि वे प्राकृतिक हिंदू विद्वेषी होते तो उनके नाम से कविता का प्रचार होना भी असंभव था। आगरे को छपी हुई मुआसिर आलमगिरी में लिखा है कि १० जमादिउल अव्वल सन् १००१ (फागुन सुदी ११ संवत १७४६) को बादशाह के डेरे दक्षिण में कृष्णा नदी पर गाँव बदरी के पास हुए। एक दिन खलावतखाँ मीर मजुल ने बादशाही अदालत की कचहरी में पहले एक आदमी को बादशाह की नजर से गुजारा था कि यह अर्ज करता है कि मैं बङ्गाल के दूर देश से चेला होने के वास्ते आया हूँ सो मेरा मनोरथ पूरा होना चाहिए। बादशाह ने मुस्कुरा कर खीसे में हाथ डाला और १००) के सोने और चांदी के 'चरन' खलावतखाँ को दे कर फरमाया कि इसको देदो और कहो कि हम से जो रोकड़ लाभ लिया चाहता है तो यह है। जब खान ने यह रकम उसको दी तो वह बखेर कर नदी में कूद पड़ा। खान चिल्लाया कि यह तो डूबता है। बादशाह के हुक्म से तैराके लोग उस को नदी में से पकड़ लाए तब हजरत ने दर्वाजे के भीतर मुँह करके सरदार खाँ से कहा कि एक आदमी बङ्गाल से आया है उसके सिर में यह झूठा खयाल समाया हुआ है कि मेरा मुरीद (चेला) हो जावे।

दोहरा

चूहा खड़ा न मावे, तरकस बन्धी जज्ज।
नोम्ने नन्दी मादर बेंदी खड़ी निलज्ज॥

इसको मियाँ फ़र्रुख़सहरंदी के पास ले जाओ और कहो कि इसको मुरीद कर लो और टोपी पहिना दो।

खेद है कि यह दोहरा जिसके लिये इतनी कथा लिखी गई है ठीक ठीक पढ़ने मे नही आता और इसका कारण यही है कि फ़ारसी लिपि मे हिंदी भाषा सही नही लिखी जाती।

कलकत्ते की छपी हुई प्रति मे यह दोहरा यों लिखा है।

टोपी लेदे बावरी, द दे खरी निलज्ज।
चूहा खड़ नामावली, तोकल बन्धे छज्ज॥

तज़्करे चगत्ता मे भी यह दोहा ऐसा ही संदिग्ध लिखा हुआ है।

रुक्केआत आलमगीरी में लिखा है कि एक बार शाहज़ादा आज़म ने कुछ आम पिता के पास भेजे थे और उनके नाम रखने की प्रार्थना की थी। औरङ्गजेब ने बेटे को लिखा कि तुम स्वयं विद्वान हो कर बूढे बाप को क्यों ऐसी तकलीफ़ देते हो और तुम्हारी खातिर से 'सुधारस' और 'रसविलास' नाम रक्खा गया। क्या यह हिंदी नामों का रखना औरंगजेब के हिंदी प्रेम का परिचायक नही है?

औरंगजेब की बनाई कोई पुस्तक नही मिली है उनकी स्फुट रचनाएं भी हमारे देखने में बहुत कम आई है। हम उनकी खोज में है और जो कुछ भी प्राप्त होंगी यथा शीघ्र प्रकाशित की जायेंगी। वे दो नाम से कविताए करते थे। एक औरंगजेब दूसरे आलमगीर। नीचे राग कल्पद्रुम से कुछ नमूने दिये जाते हैं—

पद

पाक परवर दिगार, करीम रहीम बंदे निवाज।

जित देखूं तित तूही तू भर रहो
तेरी कुदरत को कोउ न पावे राजो नियाज ॥

(भैरवी–चौताल)

प्यारन को बिछुआ सहज नहीं हैं।
भई तुम्हारे दरस बिन मानो मीन बिन नीर
हियो धरत न धीर ऐसो करत भार
रोके नहि जाय ऐतो गहर गंभीर ॥
चार दिन में जाय चहूँ देश में तेग विजय
बेग मिलोगे आय वीर ब दास
'आलमगीर' तिहारे काज पर आवे बधसीस
तेरो ताज राखूं तो तुम्हारे नो वजो ॥
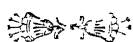
ताज

(१७००)

यह किंवदन्ती सुनने में आती है कि ताज कवि काकरौली के रहने वाले वैष्णव मुसलमान थे। ये भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे। बिना दर्शन पूजन किये अन्न जल नहीं ग्रहण करते थे। एक दिन जब ये भगवान के दर्शनार्थ मन्दिर में गये थे, तो मन्दिर के गोस्वामी दृष्टि इन पर पड़ी। उन्होंने पुजारियों से कहा कि ताज जाति का मुसलमान है। इस लिए उसे मन्दिर में आने देना अनुचित है। दूसरे दिन जब ये दर्शन के लिए आये, तो ड्योढ़ी दारों ने इन्हे मन्दिर के बाहर ही रोक दिया। ये

दिन भर भूखे प्यासे वहीं पड़े रहे। रात्रि के उपरान्त एक कैशोर अवस्था का बालक सोने और चांदी की थाली में भोजन लेकर इनके पास आया और कहा, "प्यारे ताज ! तू दिन भर मेरे लिए भूखा रहा, ले इस समय मैं तेरे लिए यह भोजन लाया हूँ। यह पा कर भोर होने पर पात्र मन्दिर के पुजारी को दे देना। आज से फिर तू कभी मन्दिर में आने से नहीं रोका जायगा।" सुबह होते ही यह समाचार सारे शहर में फैल गया। गोस्वामी जी ने इनसे क्षमा मांगी। उस दिन से ये फिर कभी मन्दिर में जाने से नहीं रोके गए। इस आख्यान में सचाई की मात्रा कितनी है यह कहना मेरे लिए कठिन है, किन्तु इससे ताज की अथाह भक्ति का कुछ कुछ अनुमान अवश्य किया जा सकता है।

ताज के समय निरूपण में दो मत हैं। शिवसिंह सरोज-कार ने इनका समय सम्वत् १६५२ के लगभग बतलाया है। मुन्शी देवी प्रसाद जी के मतानुसार इनका समय सम्वत १७०० के लगभग होता है। और यही ठीक जान पड़ता है क्योंकि ताज ने जिन जिन भक्त कवियों का अपनी कविता में वर्णन किया है। उनका समय सम्वत् १७०० वि० के ही निकट पड़ता है। अतः ताज कवि का उसी समय के लगभग होना प्रमाणित है।

ताज को कुछ लोगों ने काकरोली निवासी बतलाया है। पर उनकी कविताओं को देखने पर यह मेरी धारणा नहीं रह जाती है। एक स्थान पर उन्होंने इस भांति लिखा है:—

"पूरब ले जनम कमाई जिन खूब करी,
पाय तन दीन "ताज" सुनी वेद बानी है।"

पूरब शब्द से अवध, विहार और बङ्गाल प्रान्त का ही

बोध होता है। अतः इनका जन्म इन्हीं किसी प्रान्तों में से एक में हुआ होगा। सम्भव है ये काकरोली में किसी विशेष कारण वश जा कर बसे हों और वहीं जीवन पर्यंत रहे हों।

ताज के विषय में एक और विचित्र शङ्का उठती है। वह यह कि ये स्त्री थे वा पुरुष। मथुरा निवासी नवनीत कवि, जो बहुधा काकरोली (मेवाड़) मे गोस्वामी बालकृष्ण जी के यहाँ रहा करते थे उनका कहना है कि ताज एक मुसलमान जाति की स्त्री थी। मिश्र बन्धुओं का तथा शिवसिंह-सरोजकार का भी यही मत है। कुछ लोग शाहजहाँ बादशाह की बेगम ताज बीबी को ताज बताते हैं। किन्तु उपरोक्त कथानक के अनुसार कवि गोविन्द गिल्लाभाई ने इन्हें पुरुष ठहराया है। प्रश्न बड़ा विचित्र है। उन्होंने अपनी कुछ कविताओं में अपने को स्त्री वाची शब्दों से सम्बोधित भी किया है। इससे उनका स्त्री होना भी एक प्रकार से सिद्ध हो जाता है; किन्तु इस बात का निश्चय करने से पहले हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वैष्णव धर्म में कृष्ण की उपासना सखी भाव में ही उत्तम बताया गया है सम्भव है ताज भी कृष्ण की उपासना सखी भाव से करते रहे हों और इसी से अपने को स्त्री वाची शब्दों से सम्बोधित किया हो। अथवा ताज नाम के दो कवियों के होने का भी सन्देह किया जा सकता है।

ताज की कविता की भाषा दो प्रकार की हुई है। एक पंजाबी बोली मिश्रित ब्रज भाषा और दूसरी साधारण ब्रज भाषा। इनके पंजाबी बोली मिश्रित ब्रज भाषा की कविता में, साधारण ब्रज भाषा वाली कविता से ही अधिक ओज और प्रसाद है। जान पड़ता है कि आरंभ में ये ब्रज भाषा में कविता करते थे और जब अपनी प्रौढ़ावस्था में ये पंजाब में गए तब अपनी

कविता में पंजाबी बोली का पुट देना भी आरम्भ कर दिया।

इनकी एक पुस्तक सिहोर निवासी कवि गोविन्द गिल्ला भाई को मिली है जिसमें निम्नांकित विषयों पर कविताएं हैं:—

(१) गणेशस्तुति (२) सरस्वती समाराधन (३) भवानी चंदना (४) हरदेव जी की प्रार्थना (५) मुरलीधर के कवित्त (६) दशावतार वर्णन (७) निरोष्ठ कवित्त (८) होरी-फाग (९) बारहमासा छप्पय मे (१०) बारहमासा कवित्त में (११) बारहमासा कुंडलिया में (१२) भक्ति पक्ष के कवित्त (१३) फुटकर। इसी पुस्तक में से कुछ कविताएं उदाहरण स्वरूप नीचे दी जाती हैं।

गणपति—स्तुति

दोहा

गणपति गण सिरताज हौ, तुम्हे नमाऊँ शीश।
ज्ञान देव पूरण हमें जानेगे सुत ईश॥

छप्पय

सब गन को सरदार जगत अति तोको माने।
होत जहाँ उत्साह आदि सब सरस बखाने॥
ताहिं देत आनन्द सरब सुख के अधिकारी।
महा बुद्धि बलवान 'ताज' लखि कीरति भारी।
ज्ञान देहु पूरन हमें सुत सुनि गंगजल धरन के।
सीस नवाऊ प्रीति सो दरस देहु उन चरन के॥

भक्तोद्गार

कवित्त

(१)

छैल जो छबीला सब रंग में रंगीला,
बड़ा चित्त का अड़ीला कहूँ देवतों से न्यारा है।
माल गले सोहै नाक मोती सेत जोहै कान
कुण्डल मन मोहै लाल मुकुट सिर धारा है॥
दुष्ट जन मारे सब सन्त जो उबारे "ताज"
चित्त मे निहारे प्रन प्रीति करन वारा है॥
नन्दजू का प्यारा जिन कंस को पछारा
वह बृन्दाबन वारा कृष्ण साहेब हमारा है॥

(२)

ध्रुव से प्रहलाद गज ग्राह से अहिल्या देखि
स्योरी और गीध यौ विभीषन जिन तारे है।
पापी अजामिल सूर तुलसी रैदास कहूँ
नानक मलूक "ताज" हरि ही के प्यारे हैं॥
धनी नामदेव दादू सदना कसाई जानि,
गनिका कबीर मीरा सैन उर धारे हैं।
जगत को जीवन जहान बीच नाम सुन्यो
राधा के बल्लभ कृष्ण बलभ्भ हमारे हैं॥ २॥

(३)

साहेब "सिर ताज" हुआ नन्दजू के आप पूत,
मारी जिन असुर करी काली सिर छाप है।
कुन्दन पुर जाय के सहाय करी भीषम की,
रुकमिनी को टेक रखी लगी नहीं खाप है॥

पाण्डव की पच्छ करी द्रौपदी बढ़ाय चीर,
दीन से सुदामा की मेटी जिन ताप है।
निहचे करि शोधि लेहु ज्ञानी गुनवान बेगि
जग में अनूप मित्र कृष्ण का मिलाप है॥

(४)

पूरब ले जनम कमाई जिन खूब करी
पाय तन दीन "ताज" सुनी बेद बानी है।
सदा जो अधीन रहै पाय सत्संगति को,
दया और धर्म बीच रखे मन ग्यानी है।
अन्तर को खाप किया प्रीति की बिछाय सेज,
तिस पै जो बिहार करै कृष्ण सुख दानी है॥
प्रीतम प्रवीन सुनो कहू बेर बेर तुम्हें
मित्र का मिलाप यार भिस्त की निशानी है॥

(५)

कोई जन सेवै शाह राजा राव ठाकुर को
कोई जन सेवै भैरो भूप काज सार हैं।
कोई जन सेवै देवी चंडिका प्रचण्डी ही को,
कोई जन सेवै "ताज" गणपति सिर भार है॥
कोई जन सेवै प्रेत भूत भौसागर को,
कोई जन सेव जग कहूँ बार बार है।
काहू के ईश विधि शंकर को नेम बड़ो
मेरे तो अधार के एक नन्द के कुमार है॥

(६)

काहू को भरोसो वेद चारो जो पढ़ै होत
काहू को भरोसो गंगा न्हाये सहस्र धार को

काहू को भरोसो सब देवन के पूजे 'ताज'
काहू को भरोसो विधि शङ्कर उदार को॥
काहू को भरोसो मनि पाये मिले पारस को
काहू को भरोसो सूर बीरन के लार को।
तारन वे तरन कृष्ण सुने जो जहान बीच,
मोको तो भरोसो एक नन्द के कुमार को॥

(७)

बिधि को भरोसो सब सृष्टि के बनायबे को,
शिव को भरोसो काम करिबो कदन को।
इन्द्र को भरोसो मेघ माला बरसायबे को,
सूर को भरोसो अमरावती सदन को॥
सिन्धु को भरोसो 'ताज' रतन उपायबे को,
शेष को भरोसो भार सहनो पदन को।
पौन को भरोसो बड़ो चारौ खूट फिरै नाथ
मोको तो भरोसो एक मोहन मदन को॥

(८)

काहू को भरोसो बद्रीनाथ जाय पाँय परे,
काहू को भरोसो जगन्नाथ जू के भात को।
काहू को भरोसो काशी गया मे ही पिण्ड भरै,
काहू को भरोसो प्राग देखे बट पात को।
काहू को भरोसो सेतबन्ध जाय पूजा करै,
काहू को भरोसो द्वारावती गये जात को॥
काहू को भरोसो 'ताज' पुष्कर मे दान किए,
मोको तो भरोसो एक नन्द जू के तात को॥

(९)

रवि को भरोसो अन्ध मेटि को उदोत करै,
ससि को भरोसो सीत करत 'ताज' ख्याल को।
ईस को भरोसो सब देवन को दिच्छा देत
सुक्र को भरोसो सर्ब दैत्य प्रतिपाल को॥
सनि को भरोसो दृष्टि राखै जो कुरूर बुद्धि
मंगल को भरोसो सुत होने भुव—पाल को॥
राहु को भरोसो सीस केतु को न परसे कहूँ
मोको तो भरोसो एक प्रीतम गुपाल को॥

(१०)

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी
तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निवाज हूँ भुलानी
तजे कलमा कुरान साड़ें गुनन गहूँगी मैं॥
स्यामला सलोना सिर ताज सिर कुल्ले दिये
तेरे नेह दाग में निदाग हो दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान तेरी सूरत पै
ताड़ नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं॥

कर्म

सवैया

(१)

कर्म सो राय औ रंक बने अरु कर्म सों ठाकुर जो नर होई।
कर्म सो साध सती सत है अरु कर्म सो वीर बड़े नर होई॥

कर्म सो मीत मिले मन लाल सों, कर्म सों ताज कहूँ सुख होई ॥
कर्म बड़े लघु तू मति जानियो कर्म करे सु करै नहि कोई ॥

(२)

कर्म सों देश विदेश भ्रमे अरु कर्म सों तीरथ है फल जोई ।
कर्म सों बेद पुरान पढ़े अरु कर्म सों 'ताज' कहू गुण होई ॥
कर्म सों दानि औ सूर कहे अरु कर्म सों नीति अनीति जु दोई ।
कर्म बड़े लघु तू मति जानियों कर्म करे सुकरै नहि कोई ॥

(३)

कर्म सों बुद्धि हुँ ज्ञान गुनै अरु कर्म सो चातक स्वाति ज्यों पीवे ।
कर्म सों जोग अरु भोग मिले अरु कर्म सों पंकज नीर न छोवे ॥
कर्म सों 'ताज' मिले सुख देह को कर्म सो प्रीति पतंग ज्यु दीवे ।
कर्म के योंही आधीन सबै अरु कर्म कहूँ के आधीन न होवे ॥

प्रीति-विषयक

कवित्त

(१)

भानु के प्रकास बिना कंज मुख ढाँप रहे
केतकी की बास बिना भौर दुख सीर हैं ।
देखे बिना चन्द के चकोर चित चाय रहे
स्वाति बूँद चाखे बिना चातक मन पीर हैं ॥
दीपक की ज्योति बिना सीस तो पतंग धुनै
नीर के बिछोह मीन कैसे करि जी रहै ।

कहे छवि 'ताज' मित्त मानिये हमारी किधौ
नैननि में देखूँ जब नैनिन मे धीर हैं ॥

(२)

रोसे हैं छबीले लाल छल की जो बात करें
मेरे चाह चौगुनी तलास दिन रैन हैं।
मन मे उमंग तने कोमले कनक रंग
नन भरे नेह सो जु मोहे मन मेन हैं ॥
चतुर सयाने सबै चातुरी की बात सुने
चाहि चित चोर लेत है ऐसे दुख देन है ॥
कहै छवि 'ताज' मित्त मानिए हमारी किधौं
नैननि तें देखू जब नैननि मे चैन है ॥

सवैया

(१)

मुसक्यान तिहारी जु मैंने लखी लखि के मन मे अति नेह जुठानो।
जौ तुम चाहत एक विषे हम एक के बीस बिसे तिहिं मानो ॥
राह बड़ी है जो प्रेम के पंथ की चातुर होय सोई चित आनो।
जीवन 'ताज' कहै जग मे तुक चारहि आदि के अक्षर जानो ॥

(२)

नेह करो इक ही हरि सो मति अन्तर में अब और कुँ छीजो।
की मया एक वही जग मे गुन गाय कै तो अति प्रेम सों पीजो॥
लीजिए नाम बड़ो गुनवान हैं दीन को दान कछू नित दीजो।
जो तुमसो कवि 'ताज' कहै तुक चारहि आदि के अच्छर दीजो ॥

(३)

सन्तन के जन खाय न पूजिया मूड़नि की मति दीजियो वाहीं।
सार है ज्ञान गुनौ उर में मति झूठ की मोट को लूटियो दाहीं॥
रे! इक नाँव सदा उसका तजि पायके तौ मन मत्त को नाहीं।
मैं जु लखी छवि 'ताज' कहै तुक चारहि आदि के अक्षर माहीं॥

(४)

चोवा अबीर लगाइ के अंग में आइ के बाहिर सो भये ढाढ़े।
दे करमे जबही करको सब कोल करार किये हित बाढ़े॥
बानि परी तिनकी न मिटे जदि कोटि उपाय करौ अति गाढ़े॥
दे तुक चारहि आदि के अक्षर 'ताज' भने सुख लालजु काढ़ै॥

(५)

नाम तिहारो सुनौ जग मे तुम गोकुल के ठग हो हम जानी।
साल सहौ अपने कन में चित चोर घने सों जोरी हम ठानी॥
हेत बडो हमसो जु कियो छवि 'ताज' गुने इत लाल ज्यु ज्ञानी।
बैन बजावत हूँ सुनियो तुक चारहि आदि के अक्षर बानो॥

(६)

वीन बजावत चायन सों अति सेज पे बैठे तिया पिय रैना।
रीझ रहे उनकी मुसकान पै राग सुनावत हैं उत नैना॥
देह खरी क्यो जारत हौ छवि 'ताज' कहै लखि प्रीति के बैना॥
उत्तर हेरियो प्यारे रहे तुक चारहि आदि के अक्षर देना॥

(७)

वा दिन सों हम देखि लिये पिय जा दिन वे तुम संग गयेजू।
कीरति यो वह छाय रही छवि ताज कहै गसि रग न र जू

बात कहा चित चाहत हौ सो जु आपहि तौ अब तंग रहे जू।
उत्तर यो हंसि प्यारे दियो तुक चारहि आदि के अंक कहे जू॥

(८)

बलवीर कहा बल एतो कियो,अबलाते कियो बल हौ बलिहारी।
'ताज' कहै छलिये निके कुंजन, आवत ही बृष भानु दुलारी।
करि केलि जो एतिक मैन के जोर परी वे सम्हारन साँस संभारी
मनो कढ़ि बाल कुमूदनि ताल सो नाल सो मंजुल मीड़ के डारी॥

बहादुर शाह (ज़फ़र)

(१६६८ - १७६६)

बहादुर शाह (ज़फ़र) दिल्ली के अन्तिम मोगल बादशाह थे। ये औरंगजेब के सब से बड़े बेटे थे। इनका जन्म सम्बत १६६८ में हुआ था। पांच वर्ष दिल्ली का राज्य कर सम्बत १७६६ में ७१ वर्ष की अवस्था में लाहौर नगरी में इन्होने स्वर्ग वास लिया। यह स्वभाव के अच्छे और बीर थे। * यह स्वयम् कविता करते थे और कवियों का आदर करते थे। इनकी कबिता का उदाहरण नीचे लिखा जाता है।

पहेली

सुन री सहेली! मेरी पहेली,
बावल के घर में रही अलबेली।

*विशेष हाल जानने के लिए History of India by Smith देखैं।

माता पिता ने लाड़ से पाला,
समझा मुझे बस घर का उजाला ॥
एक बहन थी एक बहने ली ॥ १ ॥

योही बहुत दिन गुड़िया में खेली।
कभी अकेली कभी दुकेली ॥
जिस से कहा चल तमाशा दिखला ॥
उसने उठा कर गोदी में लेली ॥ २ ॥

कुछ कुछ मोहे समझ जो आई।
जा एक ठहरी मोरी सगाई ॥
आवन लागे ब्राह्मण नाई।
कोई ले रुपया कोई ले धेली ॥ ३ ॥

ब्याह का मेरे समा जब आया।
तेल चढ़ाया मढ़ा छवाया ॥
सालू सूहा सभी पिन्हाया।
मेहदी से रंग दिए हाथ हथेली ॥ ४ ॥

सासरे को लोग आये जो मेरे,
ढोल दमामे बाजे घनेरे।
सुभ घड़ी सुभ दिन हुए जो फेरे,
सय्यां ने मोहे हाथ में लेली ॥ ५ ॥

आये बराती सब रंग रंग के,
लोग कुटुम के सब हंस हंस के ॥
चावत थे यही घर से निकसे,
और के घर मे जाय धकेली ॥ ६ ॥

लेके चली थी साथ जब अपने,
रोवन लागे फिर सब अपने।
कहा कि तू नहिं बस की अपने।
जा बच्ची तेरा दाता ही बेली ॥ ७ ॥

सखी पिया के साथ गई मैं।
ऐसे गई फिर वहीं रही मैं ॥
किससे कहूँ दुख हाय दई मैं।
सैय्या ने मोरी बाहे गहेली ॥ ८ ॥

सास जो चाहे सोई सुनावे।
ननद भी झूठी बातें बनावे ॥
क्या हा ! करू कुछ बन नहिं आवे,
जैसी पड़ी मैं वैसी ही झेली ॥ ९ ॥

जिया बियाकुल रोवत अँखियाँ,
कहा गई सब संग की सखियाँ ॥
शौक रंग गुड़िया ताक पै रखियाँ।
नावो घर है नावो हवेली ॥ १० ॥

पद

प्यारी तेरो प्यारो आयो प्यारी,
प्यारी बाते कर प्यारे को मनाइए।
अनेक भातन कर प्यारे को रिझाइए,
आली ऐसो प्यारो कहा घर बैठे पाइए ॥
लाइए, समुझाइए कौनो भातन
सुख दे बुलाइए।
'शाह बहादुर' तेरे रस बस भए
अनरस कर कर सौत न हँसाइए ॥

भैरवी–चौताल

(१)

बीतत हमपर जैसे हो हमसो कहत हो बावरे ।
काहे तुझे और पहचाने हम जानत जहाँ जावरे ॥
रैन दिना मोहे कल न परत है तूं तूं ली लावरे ।
शाह बहादुर तुम बहु नायक हमसे भई नड़ बावरे ॥

(२)

प्यारी बोली तू चलरी हों हितू,
भई कहत हों तोसो मान जिन गहो ।
नीची नार कहा कर रही सुन्दर ऊँचे
चितै नेक मो तन जो है तेरे जियमे सो तो वेग उत दैहे ।
सबही तियन मे तोहिं सो भाव रहे
पिय जिय की तासों तू हठ कर हिये न रहे ।
'साह बहादुर' अति विचित्र तासो रसही रस निबहे ।

हुसैन

(१७०८)

हुसैन का कविता काल लग भग सम्वत १७०८ वि० के समझना चाहिए । इनके छन्द हजारा में मिलते है । इनकी कविता का नमूना नीचे लिखा जाता है ।

(१)

कज्जल सी निसि सज्जत से घन तज्जल मे चली संग न सथ्थी ।
कुञ्ज अँध्यारी सिधारी 'हुसन' बिहारी पै जाति तो सुद्धि में नथ्थी ॥
किंचित दुब्बत सप्प लगो पग मप्प घसीटत नेक पगथ्थी ॥
जोर जंजीर जरो जकरो मनो छूटि चलो मन मथ्थ को हथ्थी॥

—:※:—

मीर रुस्तम

(१७३५)

मीर रुस्तम का कविता काल लग भग सम्बत १७३५ वि० के समझना चाहिए। इनके छुन्द काली दास हजारा में है। इन की कविता का नमूना नीचे लिखा जाता है—

भुजंगप्रयात

जहां अर्थ निज धर्म छूटे सकल भर्म
शुभ कर्म स्वाद स्वजयजय प्रकाशी।
सुगम की अगम है अगम को कथा नित्य
अगम सुरसरी पान दोषै बिनासी ॥
पढ़ै पण्डितौ वेद विद्या सदाही
परम हंस दण्डी अखण्डी सन्यासो।
कहै मीर रुस्तम जहा भीत ना यम
सुच लु चित्त चलु चित्त चलु चित्त काशी ॥

मुहम्मद

(१७३५)

मुहम्मद शाह का कविता काल सम्वत् १७३५ वि० के समझना चाहिए। इन्होंने एक बारहमासा लिखा है। इनकी कविता का नमूना नीचे दिखाया जाता है।

(१)

मन मुल्क खलक तहसील करन तन
परगन सुख अखत्यारी।
बनी आदम आदि कुटुम्ब सग लै
चलि तेरे फील सवारी॥
हौदा हूल मुहम्मद कुम्भ महावत
जपत जजीर बहारी।
तेरी जरव पियारो वाहे ज़ारी दिलवर
खूबी हुसन नगर फौजदारी॥

जैनुद्दीन महम्मद

(१७३६)

जैनुद्दीन महम्मद (जैन दीन मुहमद) का कविता काल लग भग सम्वत् १७३६ वि० के समझना चाहिए। इनका एक पीठ का छन्द प्रख्यात है। और भी फुटकर छन्द कही कही मिलते है। नीचे इनका एक कवित्त लिखा जाता है।

कवित्त

अनरस रस में जौ जाकी ओर, होत कोऊ
वाही सो दुरावै कहौ वासो को कठोर है।
हाथहूँ धरेंगे पुनि अंकहू भरेंगे हमें
भावै सो करेंगे यामें तुमै क्या मरोर है॥
जयन महमद जो अहै वा तिहारी हित
वाही ओर राखो जो चलै न कछु जोर है।
पीठि है तिहारी सो हमारी है हमारे जान
रूसिवे तिहारी होत सो हमारी ओर है॥
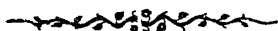
दरिया साहब

(१७३३—१८१५)

दरिया साहब का जन्म मारवाड़ के जैतारन नामक गांव में भादो बदी अष्टमी सम्वत् १७३३ वि० को एक मुसलमान कुल में हुआ और अगहन सुदी पूनो सम्वत् १८१५ वि० को ८२ वर्ष की अवस्था में परलोक बास हुआ। दरिया साहब के माता पिता जाति के धुनिया थे। जब ये सात वर्ष के थे तभी ये मातृ-पितृ-हीन हो गए और तब से इनके पालन पोषण का भार इनके नाना के ऊपर रहा। इनके नाना का नाम कमीच था। दरिया साहेब के गुरु प्रेमजी थे जो बीकानेर के गांव खियानसर में रहते थे। इनके मत के अब भी हजारों आदमी मारवाड़ में हैं।

साखी

नमो राम परब्रह्म जी, सत गुरु सन्त अधारि।
जन 'दरिया' बन्दन करै पल पल बारूं बारि ॥ १ ॥

'दरिया' नाम है निरमला, पूरन ब्रह्म अगाध।
कहे सुने सुख ना लहै, सुमिरे पावे स्वाद ॥ २ ॥

पंडित ज्ञानी बहु मिलै वेद ज्ञान परवीन।
'दरिया' ऐसा ना मिला, रामनाम लवलीन ॥ ३ ॥

वक्ता श्रोता बहु मिलै, करते खैंचा तान।
'दरिया' ऐसा ना मिला, (जो) सन्मुख झेलै बान ॥ ४ ॥

'दरिया' बान गुरु देव का, वेधै भरम बिकार।
बाहर घाव दीखै नहीं भीतर भया सिमार ॥ ५ ॥

'दरिया' सस्तर बांध कर, बहुत कहावै सूर।
सूरा तबही जानिए, अनी मिलै मुख नूर ॥ ६ ॥

सबहि कटक सूरा नहीं, कटक माहि कोइ सूर।
'दरिया' पड़ै पतंग ज्यों, जब बाजै रन तूर ॥ ७ ॥

साध सूर का एक अंग, मना न भावै झूठ।
साध न छाड़ै राम को, रन मे फिरै न पूठ ॥ ८ ॥

आगै बढ़ै फिरे नहीं, यह सूरा की रीति।
तन मन अरपे राम को, सदा रहै अघ जीति ॥ ९ ॥

'दरिया' लच्छन साधु का, क्या गिरिही क्या भेख।
निष्कपटो निरसंक रहि, बाहर भीतर एक ॥ १० ॥

'दरिया' गेज़ा जगत को, कैसे दीजै हेत।
जो सौ बेरा छानिये, तौ हूं रेत की रेत ॥ ११ ॥

कंचन कंचन ही सदा, कांच कांच सो कांच।
'दरिया' झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच ॥ १२ ॥

आन धरम दीपक दसा, भरम तिमिर होय तास।
'दरिया' दीपक क्या करे, (जाके) राम रवी परकास ॥ १३ ॥

कंचन भाजन विष भरा सो मेरे किस काम।
'दरिया' बासन सो भला, जामे अमृत राम ॥ १४ ॥

राम रहित मध्यम भला, गलत कोढ़ होय अ ।।
उत्तम कुल को त्याग कर, रहिये उनके संग ॥ १५ ॥

'दरिया' संगत साध की, सहजै पलटै अंग।
जैसे सग मजीठ के कपड़ा होय सुरग ॥ १६ ॥

नारी आवै प्रीत कर, सतगुरु परसे आन।
'दरिया' हित उपदेस दे, माय, बहिन, धी जान ॥ १७ ॥

नारी जननी जगत की, पाल पोस सो पोष।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगाव दोष ॥ १८ ॥

ररों तो रब आप हैं, ममा मोहम्मद जान।
दोय हरफ में माइना, सब ही वेद पुरान ॥ १९ ॥

साध सुरग चाहै नहीं, नरका दिस नहिं जांय।
पार ब्रह्म के पार लग पटा गैब का खांय ॥ २० ॥

'दरिया' गैला जगत का क्या कीजै समझाय।
रोग तीसरै देह में पत्थर पूजन जाय ॥ २१ ॥

मतवादी जानै नहीं ततवादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुआ गिनै अँधारी रात ॥ २२ ॥

'दरिया' बगुला ऊजला, ऊज्वल ही होय हंस।
वे सरवर मोती चुगै, वाके मुख मे मांस ॥२३॥

माया मुख जागै सबै सो सूता कर जान।
'दरिया' जागै ब्रह्म दिस सो जागा परमान ॥२४॥

शब्द

आदि अनादि मेरा साईं ॥ टेक ॥
दृष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर।
यह सब माया उनकी भाई ॥
जो बन माली सींचै मूल।
सहजे पिवै डाल फल फूल ॥
जो नरपति को गिरह बुलावै।
सेना सकल सहज ही आवै ॥
जो कोई घर भानु प्रकासै।
तौ तिस तारा सहजहि नसै ॥
गरुड़ पंख जो घर मे लावै।
सर्प जाति रहने नहि पावै ॥
'दरिया' सुमिरे एकहि राम।
एक राम सारे सब काम ॥ १ ॥

सब जग सोता सुध नहि पावे।
बोलै सो सोता बरड़ावे ॥ टेक ॥
संसय मोह भरम की रैन।
अन्ध धुन्ध है सोते ऐन ॥
जप तप संजम औ आचार।
यह सब सुपने के व्यौहार ॥
तीर्थ दान जग प्रतिमा सेवा।
यह सब सुपना लेवा देवा ॥
चार बरन और आश्रम चार।

सुपना अन्तर सब ब्योहार ॥
काजी सैयद औ सुलताना ।
ख्वाब माहि सब करत पयाना ।
सांख जोग औ नौधा भक्ती ।
सुपने में इनकी एक बिरती ॥
खट दरसन आदि भेद भाव ।
सुपना अन्तर सब दरसाव ॥
उपजै प तै अरु बिनसावै ।
सुपने अन्तर सब दरसवे ॥
कृत कृत बिरला भोग सभागी ।
गुरु मुख चेत सब्द मुख जागी ॥
जन 'दरियाव' सोई बड़ भागी ।
जाकी सुरत ब्रह्म सग जागी ॥ २ ॥

जौ धुनिया तौभी मै राम तुम्हारा ।
अधम कमीन जाति मति हीना,
तुम तो हो सिरताज हमारा ॥ टेक ॥
काया का जन्त्र सब्द मन मुठिया,
सुखमन तांत चढ़ाई ।
गगन मंडल मे धुनुआ बैठा;
मेरे सत गुरु कला सिखाई ॥
पाप पान हर कुबुध कांकड़ा,
सहज सहज झड़ जाई ।
घुंडी गांठ रहन नहि पावै,
इक रंगी होय आई ॥
इक रंग हुआ भरा हरि चोला
हरि कहै कहा दिलाऊँ ।

मै नाही मेहनत का लोभी,
बकसो मौज भक्ति निज पाऊँ ॥
किरपा करि हरि बोले बानी,
तुम तौ हौ मम दास।
'दरिया' कहै मेरे आतम भीतर,
मेलौ राम भक्ति बिस्वास ॥ ३ ॥

कहा कहूं मेरे पिउ की बात।
जोरे कहू सोई अंग सुहात ॥ टेक ॥
जब मै रही थी कन्या क्वारी।
तब मेरे करम हता सिर भारी ॥

जब मेरे पिउ से मनसा दौड़ी।
सतगुरु आन सगाई जोड़ी ॥

तब मैं पिउ का मंगल गाया।
जब मेरा स्वामी व्याहन आया ॥

हथ लेवा दे बैठी संगा।
तब माहि लीनी बाये अगा ॥

जन 'दरिया' कहै मिट गई दूती।
आपो अरप पीव सग सूती ॥ ४ ॥

आदि अन्त मेरा है राम।
उन बिन और सकल बेकाम ॥

कहा करूँ तेरा वेद पुराना।
जिन है सकल जगत बारमाना ॥ ॥

कहा करूँ तेरी अनुभै बानी।
जिन ते मेरी बुद्धि भुलानी ॥

कहा करूँ ये मान बड़ाई।
राम बिना सब ही दुःखदाई ॥
कहां करूं तेरा साख औ जोग।
राम बिना सब बन्धन रोग॥
कहा करूँ इन्द्रिन कासुक्ख।
राम बिना देवा सब दुक्ख॥
दरिया कहै राम गुरुमुखिया।
हरि बिन दुखी राम संग सुखिया॥ ५॥
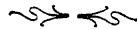
यारी साहेब

(१७२५—१७८०)

यारी साहेब दिल्ली के रहने वाले थे। ये बीरू साहेब के शिष्य थे। जब बीरू साहेब मर गए तो उनकी गद्दी इन्हें मिली। ये वहीं पर रह कर लोगों को अपने उपदेशामृत से तृप्त करने लगे। इनके नाम से कोई पंथ नही चला जैसा कि कई एक अन्य संतो के नाम से चला। इनका समय सं० १७२५ से १७८० के बीच में कहा जाता है। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद ने इनकी कुछ थोड़ी से बानियां संग्रह करके छपवाई हैं। नीचे इनकी थोड़ी से बानियां उद्धृत की जाती हैं।

शब्द

बिरहिनी मंदिर दियना बार।
बिन बाती बिन तेल जुगुति सो, बिन दीपक उंजियार।
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज संवार॥

सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निरगुन निरकार ॥
गावँहु री मिलि आनंद मंगल यारी मिलि के यार ॥१॥

है। तो खेलौ पिया सग होरी ॥
दरस परस पतिवरता पिय की छवि निरखत भई बौरी ॥
सोरह कला सपूरन देखौ रवि ससि भे इक ठौरी ।
जब ते दृष्टि परो अविनासी लागो रूप ठगौरी ॥
रसना रटन रहत निसिवासर नैन लगो यहि ठौरी ॥
कह 'यारी' भक्ती कर हरि की कोई कहो सो कहौरी ॥२॥

झिलमिल झिलमिल वरखै नूरा । नूर हजूर सदा भरपूरा ॥
रुन झुन २ अनहद बाजै । भँवर गुँजार गगन चढ़ि गाजै ॥
रिमझिम रिमझिम बरखै मोती । भयो प्रकाश निरंतर जोती ॥
निरमल निरमल निरमल नामा । कह 'यारी' तँह लियो बिस्रामा ॥३॥

या विधि भजन करो मन लाई ।
निर्मल नाम लखो बिन लोचन, सेन फटिक रोसनाई ॥
सीप की सुरत आकास बसत जस, चित चकोर चढ़ाई ॥
कुंभक नीर उलटि भरो जैसे, सागर बुंद समुंद समाई ॥
जैसे मृग की रीति परस्पर, लोह कंचन ह्वै जाई ॥
मन गगरी पर बात सखियन सँग, कुम्भ कला नट लाई ॥
तन्न तिलक छापा मन मुद्रा, अजपा जाप निरपाई ॥
भँवर गुफा ब्रह्मण्ड मेखला, जोग जुगति बनि आई ॥
बाँबी उलटि सर्प को खाई, ससि मे मीन नहाई ॥
'यारी' दास सोई गुरु मेरा, जिन यह जुगति बताई ॥४॥

दिन दिन प्रीत अधिक मोहि हरि की ।
काम क्रोध जंजाल भसम भयो बिरह अगिनि लगि धधकी ॥
धुधुकि धुधुकि सुलगति अति निर्मल झिलमिल २ झलकी ॥
झरि २ परत अंगार अधर 'यारी' चढ़ि अकास आगे सरकी ॥५॥

रसना राम कहत तै थाको।

पानी कहे कहुँ प्यास बुझत है प्यास बुझै नहि चाखो॥
पुरुष नाम नारी ज्यो जानै जानि बूझि नहि भाखो।
दृष्टि से मुष्टी नहि आवै नाम निरंजन वाको॥
गुरु परताप साधु की संगति उलटि दृष्टि जब ताको।
यारी कहै सुनो भाई संतो, बज्र बेधि कियो नाको॥६॥

हमारे एक अलह पिय प्यारा है।
घट घट नूर महम्मद साहब जाका सकल पसारा है।
चौदह तबक जाकी रुसनाई झिलमिल जोत सितारा है।
बेन मून बेचून अकेला हिंदु तुरुक से न्यारा है॥
सोइ दरबेस दरस जिन पायौ सोई मुसलम सारा है।
आवै न जाय मरै नहि जीवै 'यारी' यार हमारा है॥७।

लेह स्याही द्वात माहि तौ लो तो अच्छर नाहि;
कुल सेती रूप न्यारो न्यारो निकरि आयो है।
सुन्न के कागद पर मानिक कलम लियो,
चित्त की कसीसी करि अच्छर बनायो है॥
अरथ अच्छर माहि आँधरे को सूझे नाहि,
दाना वीनो जिन पढ़ि के सुनायो है॥
थारी आदि ओकार जासो यह भयों संसार,
अच्छर दवात बीच ढूढ़े नाहि पायो है॥८॥

गैब का तख्त और गैब की बादसाही,
गैब का छत्र नूर जगमग जाते है।
गैब का हुकुम तिहुँलोक पर हाकिमी,
गैब का खजाना देखो काम सार होत है॥
गैब की बिलाइत मे गैब करै बादसाही,
गैब मे बे ऐब, नाहि पाय पुन्न छोत है॥

कहै 'यारी' आय देख सोई है अलख अलेख
ऐसी बादसाही पाय बाद ही तू खोत है ।।९।।

साखी

जोत सरूपी आतमा, घट घट रहो समाय ।
परम तत्त मनभावनो नेक न इत उत्त जाय ।।१।।

रूप रेख बरनो कहा, कोट सूर परगास ।
अगम अगोचर रूप है (कोइ)पावै हरि को दास ।।२।।

नैनन आगे देखिये तेज पुंज जगदीस ।
बाहर भीतर रमि रह्यो सो धरि राखो सीस ।।३।।

बाजत अनहद बांसुरी, तिरबेनी के तीर ।
राग छतीसो ह्वै रहै, गरजत गगन गंभीर ।।४।।

आठ पहर निरखत रहौ सन्मुख सदा हजूर ।
कह यारी घरही मिलै, काहे जाते दूर ।।५।।

बेना फूला गगन में, बंक नाल गहि मूल ।
नहि उपजै नहि बीनसै सदा फूल के फूल ।।६।।

दछिन दिसा मोर नइहरो, उत्तर पथ ससुरार ।
मानसरोवर ताल है (तहं) कामिनी करत सिंगार ।।७।।

आतम नारि सुहागिनी, सुन्दर आपु सवांरि ।
पिय मिलबे को उठि चली, चौमुख दियना बारि ।।
धरति अकास के बाहरे यारी पिय दीदार ।
सेत छत्र तह जगमगै सेत फटिक उजियार ।।८।।

तारन हार समर्थ हैं और न दूजा कोय ।
कह यारी सतगुरु मिलै अचल अमर तौ होय ।।९।।

करीम

(१७५४)

सूदन की नामावली में करीम का नाम आया है। इससे मालूम होता है कि ये महाशय सम्वत् १७५४ के पूर्व हो गये हैं। इनके विषय में और विशेष जानकारी नहीं है। नमूने के तौर पर दो कवित्त नीचे लिखे जाते हैं।

नेत्र वर्णन

रूप रस सारहि सुधा रसोधि साधन के,
कारीगर मैन कोटि विधिन सवारी है।
पानिप दे पान खुरसान नेह सानि धरि
चितवनि अनी हाथ भाव धार धारी है॥
सुकवि 'करीम' देखो देखत ही लागत है,
बेधि बेधि हिये भई अति रतनारी है।
घायल करि डारी ब्रजनारी वैस वारी सारी
अखिया विहारी जू की काम की कटारी है॥

नायकोक्ति

बीर रन दौर पै ज्यों पिक अम्ब-मौर पे ज्यो,
मोर घन घोर पे ज्यों करै नित कूक है।
श्रौन सुभ तान पै ज्यों ग्यानी गुरु ज्ञान पे ज्यों
योगी प्रभु ध्यान पै ज्यों निरट अचूक है॥
वारि पर मीन ज्यों प्रवीन पर प्रवीन ज्यों
'करीम' कवि यामे मीन मेष न कछूक है।
अलि मकरन्द पे ज्यों पपिहा स्वाति बुन्द पै
यो तेरे मुखचन्द पे करेजा टूक टूक है॥

रसलीन

(१७४६—१८०८)

सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी का उपनाम रसलीन था। बिलग्राम का कस्बा जिला हरदोई में है। यह मल्लाये से पांच कोस की दूरी पर स्थित है। बिलग्राम मे बहुत दिनों से बड़े बड़े विद्वान मुसलमान होते आए है और अब भी मौजूद हैं। रसलीन वहीं के रहने वाले थे। इन्होंने अपने को बाकर-पुत्र कहा है। इनका जन्मकाल अनुमान से सम्वत् १७४६ वि० के लगभग जान पड़ता है। इन्होंने सम्बत् १७६४ मे अङ्ग दर्पण और सम्बत् १७६८ मे रस प्रबोध बनाया इन दो ग्रंथों के अतिरिक्त इनके बनाए अन्य किसी ग्रंथ का पता नही चला है। अंग दर्पण में नख शिख का वर्णन है और रस प्रबोध में रसों का। इस ग्रंथ निर्माण के १० वर्ष बाद याद इनका मृत्यु मान ली जाय तो सम्बत् १८०८ के लगभग इनकी मृत्यु हुई होगी। शिवसिंह ने इनको अरबी फारसी का आलिम फाजिल और भाषा कबिता में बड़ा निपुण बताया है। रसलीन ने मुसलमान होने के अतिरिक्त अरबी फारसी का विद्वान होते हुए भी ब्रज भाषा बहुत ही शुद्ध लिखी है। इनकी कविता बड़ी चमत्कार पूर्ण और सराहनीय है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

दोहा

नवला अमला कमल सी, चपला सी चल चारु।
चंन्द्रकला सी सीतकर कमला सी सुकुमारु॥ १॥

सो पावै या जगत में सरस नेह को भाय ।
जो तन मन ते तिलन लो वालन हाथ बिकाय ॥ २ ॥

मुकुत भये घर खोइ के बैठे कानन आय ।
अब घर खोवत और के कीजै कौन उपाय ॥ ३ ॥

तजि सिंहासन राज अरु आसन एक विसेख ।
छुटे न आसन कौन को भौंह सरासन देख ॥ ४ ॥

रे मन रीति विचित्र यह तिय नैनन के चेत ।
विष काजर निज खायके जिय औरन के लेत ॥ ५ ॥

अमल कपोलन स्वेद कन दृगन लगत इहि रूप ।
मानो कंचन कम्बु में मोती जड़े अनूप ॥ ६ ॥

लिखन चहत रसलीन जब दुव अधरन की बात ।
लेखनि की विवि जीय बधि मधुराई ते जात ॥ ७ ॥

नहि मृगंक भू अंक यह नहि कलंक रजनीस ।
तुव मुख लखि हारो कियो घसि घसि कारो सीस ॥ ८ ॥

अद्भुत मय सब जगत यह अद्भुत जुगत निहार ।
हार वाल गर परत ही पस्यो लाल गर हार ॥ ९ ॥

कित दिखाय दामिनि दई कामिनि को यह वाह ।
तरफरात सी तन फिरै फरफरात घन माँह ॥ १० ॥

लालन के मन दृगन को रहै चोप यह आन ।
पहुँची बन पहुँची वहूँ प्यारी के पहुँचान ॥ ११ ॥

मुकुत जड़ी बर आरसी तामे मुख की छांह ।
यों लागत मानो ससी उड़गन मण्डल माँह ॥ १२ ॥

निरखि निरखि वा कुचन गति चकित होत को नाहि ।
नारी उरते निकरि के बैठत नर उर मांहि ॥ १३ ॥

रोमावलि रसलीन वा उदर लसति यहि भांति ।
सुधा कुम्भ कुच हित चली मनो पिपिलका पांति ॥ १४ ॥

एक बली के जोर ते जग मे वास न होय ।
तब त्रिबली के जोर ते कैसे बचि है कोय ॥ १५ ॥

इक तरु दुई दल होत है यह अचरज की बात ।
दुई तरु कदली जंघ में पीठ एक ही पात ॥ १६ ॥

सुनियत कटि सूछम निपट निकटन देखत नैन ।
देह भये यो जानिये ज्यो रसना में बैन ॥ १७ ॥

लिखन चहौ मसि बोरि जब अरुनाई तुव पाय ।
तब लेखनि के सीस को इंगुर ह्वै जाय ॥ १८ ॥

तुव पगतल मृदुता चितै, कबि बरनत सकुचाहि ।
मन में आवत जीभ लौ मनि छाले पड़ि जाहि ॥ १९ ॥

तिय सैसव जोवन मिले भेद न जान्यो जात ।
प्रात समय निसि दौस कै दोउ भाव दरसात ॥ २० ॥

सौतनि मुख निसि कमल भो पिय चख भये चकोर ।
गुरुजन मन सागर भये लखि दुलहिन मुख ओर ॥ २१ ॥

नवला पुरि बैठनि चितै यह मन होत विचार ।
कोमल मुख सहि ना सकति पिय चितवन को भार ॥ २२॥

मुक्त माल लखि धनि कह्यो यह अजगति है नाहि ।
गंग तिहारे उर बसे सिव मेरे उर माँहि ॥ २३ ॥

जब ते मोहि सुनाय तू कही कान्ह की बात ।
तबते दृग मृग लौं चले कानन ही को जात ॥ २४ ॥

सिवा मनावन को गई बिरहिनि पुहुम मँगाइ ।
परसत पुहुम भसम भये तब दै सिवहि चलाइ ॥२५॥

लाजवती परदेसते पिय आयो सुधि पाइ।
निसिदिन मधु के कमल लौ बिकसत सकुचत जाइ ॥ २६ ॥

धरत न चौकी नगजरी याही डर ते लाइ।
छांहपरे पर पुरुष की जिन तिय धरम नसाइ ॥२७॥

रमनी मन पावत नहीं लाज प्रीति को अन्त।
दुहूँओर ऐचो रहै ज्यो बिवितिय को कन्त ॥ २८ ॥

माह सीत यह भीत बिनु करि अनेत लपटाइ।
याते निसदिन अगिन में तन सोधत ही जाइ ॥२९॥

हाव भाव प्रति अंग लखि, छबि की छलकन संग।
भूलत ज्ञान तरंग सब ज्यो कुरछाल कुरंग ॥ ३० ॥

ब्रज बानी सीखन रची, यह रसलीन रसाल।
गुन सुबरन नग अरथ लहि हिय धरियो ज्यो माल
जड़ित आरसी कीर्तिका सोहत अंगुठा साथ।
छले नखन जे अवरतें, छले बने हैं हाथ ॥ ३१ ॥

देह दिप्ति छबि गेह की, किहि विधि बरनी जाय।
जा लखि चपल गगनते छितिपटकत निज आय ॥३२॥

सिवा मनावन को गई विरहिन पुहुप मंलाई।
परसत पुहुप भसम भये तब दै सियहि लाई ॥३३॥

दन्त कथा वा दसन की अवर कही नहि जात।
फूल भरी सी छुटत जब हँसि हँसि बोलत बात ॥३४॥

मुख ससि निरखि चकोर अरु ननयानय लखि मीन।
पद पंकज देखत भंवर होत नयन रस लीन ॥ ३५ ॥

कुमति चन्द्र प्रति द्यौस बढ़ि मास मास कढ़ि आय।
तुव मुख मधुराई लखै फीको परि घट जाय ॥ ३६ ॥

जित देखत तुव अंग दृग तित सुख लहत अपार।
मानो लीनो रूप ही नख सिख ते अवतार ॥ ३७ ॥
यो ऐचति पग मग धरति उरझे उरग अधीर।
ज्यों मद मत्त मत्तंग छुटि खैंचे जात जंजीर ॥ ३८ ॥
अंग छपावत सुरति सों चली जाति यों नारि।
खेलति बिज्जु छटा चितै ढ़ॉपति घटा निहारि ॥ ३९ ॥
स्वेत बसन प्रति जोन्हि मैं यौ तिय दुति दरसाइ।
मनो चलो छरीधि सुधा धीर सिधु मे जाइ ॥ ४० ॥
सजे सेत भूषन बसन जोन्हि माहि न लखाय।
पट उघरत घन बदन दुति चमकि द्वैज सी जाय ॥४१॥
पिय मूरति मेरी सदा राखत दृगन बसाइ।
डरपति गोरी देह यह मत कारी ह्वै जाइ ॥ ४२ ॥
हौ न सहौगी बात अलि तोसो कहति निसंक।
मेरे मुख को चंद कहि लावत लाल कलंक ॥ ४३ ॥
ये रस लोभी दृग सदा रोके हूँ अकुलॉय।
मनभावन मुख कमल लखि परत मधुप लौ जाय ॥४४॥
तेरा प्रान प्रकास वर, नेह बास सरसाई।
मो कारन ल्यायो नहीं आयो आप लगाई ॥ ४५ ॥
धरत धीर नहि काम ते वृद्ध नाहको पाई।
बाल स्वेत अवलोकि मुख वाल स्वेत ह्वै जाई ॥ ४६ ॥
जो सिंगार तिय करति हित नित धन के सुकुमारि।
धनी विरह ते होत सो अँग अंग माहि अंगार ॥४७॥
पिय बिछुरन खिन यों तिया चख असुआ भर आइ।
मनु मधुकर मकरन्द को उगलि गयो फिरि खाइ ॥४८॥

करी देह जो चांद्रिनी हरि नित लाइ सनेह।
विरह अग्नि जरि छिनक मैं हीनि चहत अब खेह ॥४१॥

अब्दुल रहमान

अब्दुल रहमान दिल्ली के रहने वाले और मोअज़्ज़म शाह (कुतुबुद्दीन शाह आलम बहादुर शाह) के मनसबदार थे। इन्होंने यमक शतक नामक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ के लिखे जाने का समय सं० १७६३ से १७ ८ के अन्दर का जान पड़ता है।

दोहा

बानी बानी देत शुभ जस बानी तज रीति।
रहैमान ताको तबै रहैमान चित प्रीति ॥ १ ॥
पलकन मे राखौ पियहि पलकन छाड़ौ संग।
पुतरी सो तै होहि जिन डरपत अपने अंग ॥ २ ॥
करकी करकी चूरिया बरकी वरकी रीति।
दरकी दरकी कंचुकी हटकी हटकी प्रीति ॥ ३ ॥
चुनी चुनी पहिरी सुरँग चुनी सौति दल कीन।
बनो बनो रस सो सरस तना तनी कुच पीन ॥ ४ ॥
बारी बारी बैस मे वारी सौति शृँगार।
हारी-हारी करत है हारी हेरत हार ॥ ५ ॥
नर राची मैना लखी तू कित लिख्यो सुजान।
पढ़ कुरान भौरा भयो सुन राच्यो रहमान ॥ ६ ॥
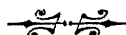
आदिल

(१७८५)

आदिल का जन्म सम्वत १७६० वि० में हुआ। इनका कविता काल लगभग सं० १७८५ के समझना चाहिये। इनका कोई काव्य ग्रन्थ देखने में नही आया। स्फुट छन्द मिलते हैं।

कवित्त

मुकुट की चटक लटक बिबि कुण्डल की,
भौंह की मटक नेकु आँखिन देखाउ रे।
ये हो बनवारी बलिहारी जाँउ तेरी मेरी,
गैल किन आइ नेक गाइन चराउ रे॥
'आदिल' सुजान रूप गुण के निधान कान्ह,
बाँसुरी बजाइ तन तपन बुझाउ रे।
नंद के किशोर चित चोर मोर पंखवारे,
बंशीवारे सांवरे पियारे इत आउरे॥

महबूब

(१७६१)

खोज में इनका जन्म-काल सम्वत १७६१ वि० दिया हुआ है। इनका कोई ग्रन्थ देखने में नही आया, पर फुटकर छन्द बहुत मिलते हैं। इनकी कविता अनुप्रास को लिए हुए जोरदार होती थी और वह पूर्णतया प्रशंसनीय है। मिश्र बन्धुओं ने इन्हें तोष की श्रेणी में रक्खा है।

कवित्त

(१)

मृग मद गन्ध मिलि चन्दन सुगन्ध बहै
केसर कपूर धुरी पूरत अनन्त है।
मौर मद गलित गुलाबन बलिन भौर
भनै 'महबूब' तौर और दरसन्त है॥
रच्यो परपच सरपंच पचसर जू ने
करलै कमान तान बिरही हनन्त है।
छीनि छिति लई ऋतु राजत समाज नई
उनई फिरत भई सिसिर बसन्त है॥

(२)

तलक रीति दीखत सब गलनल पट्टी
अतरन भट्टी मलयानल अमल कै।
कित्तन सुमन चित्त वित्तन हरत हित्त,
मित्तना करत गित्त चाहत अमल कै॥
चित्रित चरित्र तेरी चाहन विचित्र अति
कहै 'महबूब' दिल मिलत उछल कै।
रमो एक कंदरन कन्दर प कन्द आज,
अन्दर बगीचन के मन्दिरन चल कै॥

(३)

जानै राग रागिनी कवित्त रस दोहा छन्द
जप तप तेज त्याग एक सी ग्रतन का।
'महबूब' उरझन देखि सकै मित्र की
विचित्र हरि भाति भै रिझैया नुकतन का॥
जासे जो कबूलै सो न भूलै भूलै माफ करै

साफ दिल आकिल लिखैया हर फनका।
नेकी से न न्यारा रहै बदी से किनारा गहै
ऐसा मिलै प्यारा तो गुजारा चलै मनका॥

(४)

आगू धेनु धारि गेरी ग्वालन कतार तामें
फेरि फेरि टेरि टेरि धोरी धूमरी नगनते।
पोछि पुच कारन अंगौछन सों पोछि पोछि,
चूमि चारु चरण चलावै सुवचन ते।
कहै महबूब धरी मुरली अधर वर
फूकि दई खरज निखाद के सुरन ते।
अमित अनन्द भरे कन्द छबि वृन्दवन
मन्द गति आवत मुकुन्द मधु बनते॥

अब्दुल जलील

(१७६५)

अब्दुल जलील बिलग्राम के रहने वाले थे। इनका जन्म सम्बत १७३८ वि०मे हुआ था। ये औरंगजेब के यहां बड़े पाये पर थे। अरबी, फारसी इत्यादि के अच्छे पंडित थे। भाषा में इनका कोई ग्रन्थ नही है; फुटकर छन्द मिलते है।

बरवे

अधम उधारन नमवा सुनि कर तोर।
अधम काम की बतिया गहि मन मोर॥१॥
मन वच कायक निश दिन अधमी काज।
करत करत मन भरिगा हो महराज॥ २॥

बिलगराम कर वासी मीर जलील।
तुम्हरी शरण गहि गाहे ये निधि शील ॥३॥

—:०००:—

अहमदुल्लाह

(१७७३)

अहमदुल्लाह का उपनाम दक्षन था। ये बहरियाबाद (दिल्ली) के रहने वाले थे। संवत १७७३ वि० में इन्होंने अपने मित्र महम्मद फाजिलअली के लिये दक्षन विलास नामक एक काव्यग्रन्थ लिखा। इसमें नवरस तथा नाइका भेद उत्तम रीति से लिखा गया है। सिहोर निवासी कवि गोविन्द गिल्ला भाई के पास इस पुस्तक की एक हस्त लिखित प्रति है। दक्षन जी ने अनेक स्थानों में भ्रमण किया था। ये फारसी अरबी और भाषा के अच्छे पंडित थे। दक्षन विलास के आरंभ में इन्होंने अपने विषय में निम्न लिखित छप्पय लिखा है—

भाषा काव्य रसाल तामे दत्तन पद पायो।
फारसी काव्य सुदेश, सुभग वालिह पद लायो।
पढ्यो मैं ग्रंथ अनेक, फारसी और अरब्बी।
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण देख्यो मैं सब्बी॥
अहमदुल्लाह निज नाम है, वासी बहरियाबाद को।
शुभ गेश महे मारूफका, करखीपद जो आदिको॥

इसी ग्रन्थ के अन्त में लिखा है—

दच्छन कृत यह ग्रन्थ है, महा सुदेश सुभाइ।
महमदफाजल मीत लगि, दच्छन लिख्यो बनाइ॥
ग्यारह सौ चालिस बरस, हिजरी संवत आहि।
पातशाह दिल्ली तखत हतो महामद शाहि॥
दिल्ली मधि दच्छन लिख्यो, अपने कर यह ग्रन्थ।
भरके सरस कवित्त रस, रसिकन लावन पंथ॥

इनकी कविता सरस और मनोहर हुई है। अरबी और फारसी का विद्वान होते हुए भी इन्हों शुद्ध ब्रज भाषा लिखी है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

सवैया

(१)

रस ऊख पियूख मयूख भरी, सपनेहु न रोष परोस तिया के।
सखि मान के देखिबे की जिये चूक रहे नित खोज प्रवीन पिया के॥
शुभ बोल अमोल खरे चख लोल यें चित्त अडोल डुलाये हिया के।
जुगअच्छन लाज धनी कुल रच्छन 'दच्छन' लच्छन यें स्वकिया के॥

(२)

तुव नैनन लूटि लिये मृग दच्छन बैनन लूटि सुधा की मिठाई।
शर मैन के सैनन लूटि लिये गज गैनन चाल मतग सुहाई॥
कटि लूटि नितंब लियो लट तो हठि लूटि है नागिनि की विषताई।
पल में बट पार हत्यारिन राधे तें लूटि है नन्द किशोर कन्हाई।

कवित्त

(१)

तुम तौ तरनि तेज तारिका हरन वह
गोरी बैस थोरी भोरी कोमल मृनालसी।

वह ज्यो पतंग रंग पौन के लगे हौ भंग
तुम ज्यौ अनंग रति रंगही के लालसी ॥
दत्तन विचत्त वासो धरक मिटी न वक्ष
अत्त तौ अकत्त अंग अंग वास आलसी।
आज वह रूप गानी बानी से सरस बानी,
देखी कुम्हिलानी, मीड़ी मालती की मालसी ॥

(२)

औरे जाति औरे भांति औरे रूप औरे कांति
औरे राग औरे तांति औरे दुति अंग की।
औरे रंग भीजे नैन औरे प्रेम पागे बैन
औरे चाव औरे चैन औरे चोप संग की ॥
औरे चाल डगमग औरे बाल सग बग
औरे 'दत्त' जगमग भूषन के भग की।
और रंग औरे ढंग औरे छवि की तरंग
औरई उमंग गति औरई अनंग की।

(३)

राजै एक सेज पर राधिका कुँवरि हरि
'दत्तन' सुघर बर दोऊ सम रस हैं।
काम की कलोलन सो माठे मीठे बोलन सों,
बाकै चख लोलन सों पीवैं रूप रस हैं ॥
सांवरे सहाई मीत माइके प्रतीति प्रीति
सुरति समर जीति आनन्द बरस हैं।
केलि के चरित्र सारे करत न दोऊ हारे
प्रेम मतवारे एक पक ते सरस हैं ॥

———

आज़मशाह

(७६४-१८०५)

आजमशाह औरंगजेब के ज्येष्ट पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७६४ वि० मे और मृत्यु सं० १८०१ वि० में हुई। ये अरबी फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। भाषा में इनकी स्फुट रचनाएं मिलती है। इनके दरबार मे कई एक विद्वान रहते थे। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

(मुलतानी भीमपलासी)

होरी बामा हरू आदम वक्ते बहार आमद।
मैं पाशवर आरजू चोवा अतर अबार गुलालरा॥
रंग आते जब खूबो करदम रूये गुले रुये लालरा।
आजम ए नाव बम दे शाकी मौसमे अजब बहार आमद॥

(मुलतानी—यत)

शुद गोरत बाग बहार जान रूये तू।
गारत मिस्के ततार नखते भूय तू॥
बुलबुले मद सराय चूं जाहर हस्त हजार हजार बसर रेकूए तू॥

होरी बजाना बालम निश दिन मुझको ध्यान है।
उसका गोशत अजू न जान इन्दराज।
मुद्रा पहरू, भस्म चढ़ाऊं खुदरा चूये बेदागम्।
दिल खुश करके फाग मचाऊ दस्त बगैरदम ओ अदाजम्॥२॥

जौ शीरी सर्वा उसके देखू बरर खुशरो फिरहाद बिनाजम
आस कहौ के होरी खेलो गर बीनद जाना ए जाज्यम॥

नींद हे माते तेरे नैन से एपुनी नेपमा मंड सी मीजम।
सोवूं औघट बनबन जाये गर आयद आनंद निवाजम ॥

—:०००:—

मोहम्मदशाह

(१७७६)

मोहम्मद शाह दिल्ली के दसवें मुगल बदशाह थे। इनकी मृत्यु सं० १८०५ वि० में हुई। ये कविता में अपना नाम सदारंग रखते थे। ये सं० १७८६ वि० में दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठे और २६ वर्षों तक इन्होंने राज्य किया। इतिहासज्ञो ने इन्हें रंगीले मोहम्मद शाह लिखा है। इन्हें गायन वाद्य से बड़ा प्रेम था इन्होंने स्वयं भी कुछ संगीत लिखे हैं।—इनके कुछ गाने नीचे लिखेजाते हैं।

भैरव धमार होली

जे तिय ते सब ठाढ़ि भई आय आय गडुआ बनाय आगे धर दीन्हे
महम्मदशाह दच्छिण के लच्छण छिनक मटोना सो मन बस कर लिन्हे॥
डफ वीण मृदंग रवाव वजावत गावत तान नवीने।
सदारंग नये भीजे ताल लय सुर सब लीन्हे ॥

भैरवी

आओ बलम जी हमारे डेरे, अबीर गुलालमलो मुख तेरे
तेरी के दिल में न मैंना कर फेरे।
महमद शाह पिया चतुर रगीले, दूर बसो और मेरे नेरे ॥

मालकोश धमार

अहो धुन धुकार डफ मृदंग बजत है बिच मुरली धनघोरी
चोवा चंदन और अरगजा केसर रंग में बौरी ।
यक गावत यक बीन बजावत अबिर गुलाल लिये भर झोरी ॥
सदा रंग बरखत गोकुल मे खेलत नंद किशोरी ॥

राग काफी तिताला

मेंहदी मेरे हाथन की कैसी बनी अरे वे लोगवा मछरिया ।
सदा रङ्ग मिलायो सब भूलिया पूजहन काई छरिया ॥

—:०००:—

नूरमोहम्मद

(१७७०-१८३०)

नूरमोहम्मद जायस के रहने वाले थे। इन्होंने जायसी कृत पद्मावत के ढंग पर सं० १८०० वि० के लग भग तीस वर्ष की अवस्था में इन्द्रावती नामक दोहा चौपाइयों में एक परमोत्तम प्रेम ग्रन्थ बनाया है। यदि ग्रन्थ निर्माण के तीस वर्ष बाद अर्थात् साठ वर्ष की अवस्था में इनका मरण काल मानलें तो सं० १७७० वि० के लग भग इनका जन्म और सं० १८३० वि० के लग भग इनका मरण होगा। इन्होंने अपने ग्रन्थ में वावैला आदि फारसी शब्द और तृचिष्टप, खान्त, बृन्दारक, स्तम्बेरम् आदि संस्कृत शब्द भी अपनी कविता में रखे हैं। इन्होंने जायसी की भांति गँवारी अवधी भाषा में कविता की

है परन्तु फिर भी इनकी काव्य छटा अत्यन्त मनमोहिनी है। इनकी रचना से जान पड़ता है कि यह महाशय काव्य के दसों अंगों के जानकार थे। कहीं कहीं पर इन्होंने कूट भी कहे हैं। इन्होने जायसी की भांति स्वाभाविक वर्णन खूब विस्तार से किये है और भाषा भाव, वर्णन बाहुल्य तिनों में अपनी कविता जायसी से मिला दी है। इन्होने प्रेम का अच्छा चित्र दिखाया है। उदाहरण—

स्तुति।

धन्य आप जग सिरजन हारा। जिन बिन खम्भ अकास सँवारा॥
होऊ जगको आपुहि राजा। राज दोऊ जगको तेहि छाजा॥
दीन्हा नैन पंथ पहिचानों। दीन्हा रसना ताहिं बखानों॥
बात सुनै कंह सरवन दीन्हा। दीन्हा बुद्धि ज्ञान तेहि चीन्हा॥
गगन कि सोभा कीन्हे सितारा। धरती सोभा मनुष सँवारा॥

आप गुपुत औ परगट, आप आद औ अंत।
आप सुनै औ देखै, कीन्ह मनुष बुधवंत॥ १॥

अहई अकेल सो सिरजन हारा। जानत परगट गुपुत हमारा॥
कीन्ह गगन रवि ससि महि मेरा। कोउ नाहीं जोरा तेहि केरा॥
कीन्हा राति मिले सुख तासो। कीन्हा दिन कारज है जासो॥
घन सो महि पर भेजत नीरा। पलुआ सूखो भूमि सरीरा॥
सब विनास जाइहि एक बारा। रहै तेहिक मुख रवि उजियारा॥

है स्रोता औ दिष्टा, तेहि सम कोउ न आहि।
जो कछु है महि गगन मंह, सब सुमिरत हैं ताहि॥ २॥

अरे दोऊ जाके करतारा। कित कै सकउ बखान तुम्हारा॥
रसना होइ रोम सब मोही। तबहूं बरन न पारउं तोहीं॥

है अक्खर सार भौ केरा। मोहि करनी को नाव न बेरा॥
कै किरपा मोहि पार उतारो। दया दृष्टि मोहि ऊपर डारो॥
है हमकह आलम्म तुम्हारी। तोहि दया सों मुकुत हमारी॥

है मगु बहुत जगत्त महँ तिन मगु की नहि चाव।
आपन पंथ देखावहु, राखों तापर पांव॥ ३॥

जीव की कहानी

सुनहु मित्र अब जीव – कहानी। जो लिखि गई सहचरी ज्ञानी॥
जीव एक राजा को नाऊं। सो सरीर पुर पायउ ठाऊं॥
रह वह जिव के एक नरेसू। सो दीन्हा जिव को वह देसू॥
जब ठाकुर सो आयसु पावा। तब जिव राय सरीरहि आवा॥
साथी बहुत साथ जिउ लीन्हा। तब सरीर पुर आवन कीन्हा॥

आइ पाट पर बैठा भा सरीर को राय।
देखि नगर की सोभा, रहसा परमद पाय॥ १॥

आधे नगर सरीर मंझारा। दुर्जन नाम नि' बरियारा॥
बूझ बुद्ध सों बोला राजा। एक नगर दुई निर्प न छाजा॥
यह दुर्जन राजा है दुसरा। माया मोह भरम मों परा॥
हमसो अन्त करै चतुराई। कहा सत्रु सो होइ भलाई॥
है यह कांट बांट मों मोहीं। पगमों धसत न दाया वोही।

यह बनाव कैसे बनै, एक नगर दुई राज।
राज करै नहि पावउं, दुर्जन करै अकाज॥ २॥

बुद्ध सयाना मंत्री रहा। राजा साथ बात अस कहा॥
राजा करहु होइ निडर भुवारा। दुर्जन सरवर करइ न पारा॥
जब सो आरउ राजा पाऊं। बसा सरीर पूर हो राऊ।

बुद्ध बूझ जीव कहं समुझावा। तब जिव ध्यान राज पर लावा॥
भा बरियार राज के कीयें। दुर्जन डरा बूझ के हीयें॥

छल संवर पगु राखा, आप न छाड़ेउ राज।
दुर्जन भा जिव सेवक, कीन्हा सेवब राज॥ ३॥

रहा जीव एक पुत्र पियारा। रहो नाम मन रहा दुलारा॥
मन चाहे रूपवंती नारी। पै न मिली कोउ प्रेम पियारी॥
मन यह नित नित व्याकुल रहई। जिउको जिउता नित दुख सहई॥
दुर्जन कह एक दिन हँकारेउ। तासो मन की विथा सुनायउ॥
कहा करहु कछु एक उपाई। जासों मन जिउ को दुख जाई॥

मन को यह प्रकीर्त है, देखि सुरूप लोभाई।
पै न मिली रुपवंती, जो तेहि स्वांत समाई॥ ४॥

बोला दुर्जन आज्ञा पाऊं। तो राजहि एक बात सुनाऊं॥
आज्ञा दीन्हा दुर्जन बोला। मन द्वारा को ताला खोला॥
काया पुर है दरसन राजा। राज गगन पर सूर विराजा॥
तेहि राजा की एक सुता है। रूप नाम सब रूप सरा है॥
एक समय मैं रूपहि देखा। देखत रीझा जीउ सरेखा॥

जो मन पावै रूप को, मानै बहुत अनन्द।
मन परभाकर जोगे, है वह रानी चंद॥ ५॥

दुर्जन रूपहि बहुत बखाना, सुनि राजा जिव को मन माना॥
तासो कहा जतनकस कीजै। रूप मेलाय पुत्र को दीजै॥
कहेउ उपाय आन है कहां। दिष्ट बसीठहिं भेजउ तहां॥
गयेउ दिष्ट कायापुर देसू। काया पति सों कहेउ सदेसू॥
सुनि दरसन मनचिंता कीन्हा। जिउ कंह बलि संजोगी चीन्हा॥

कहा निर्प कन्या सो, जिव संदेसा जाइ।
मन कारन तोहि चाहत, प्रीति संदेस पठाई॥ ६॥

सुनि कै रूप पितहिं समुझावा। जिव राजा एक मनुज पठावा॥
जो राजा मन पुत्र पियारा। है हमार वह चाहन हारा॥
काहें एक बसीठ पठायेहु। काहे न आपुहि मन चलि आयेहु॥
एक मनुज भेजे जउ जाऊँ। छोटा होइ जगत मों नाऊँ॥
दिष्ट साथ तब उतर पठाया। मैं कन्या कँह बहुत बुझाया॥

कन्या कहा न मानत, है नहि दोष हमार।
भरम हमार जनाइ है, जाइ बसीठ तोहार॥ ७॥

जाइ जीव सों दिष्ट सुनायेउ। जिउ के हिए कोप चढ़ि आयेउ॥
बूझै कहा बुद्ध चलि आवै। मोहि संग होइ कयापुर धावै॥
तब लग दुर्जन छल कै भला। जिउ कँह कायापुर लै चला॥
को‌वन्त वह जीउ सयाना। कायापूर जाइ नियराना॥
रूप भेद पावै के कारन। भेजा बुद्ध बसीठ विचच्छन॥

बूझ भेद ले आयेउ, राजहि दीन्ह सुनाइ।
रूप रहै से पट मों, तहां न पवन समाइ॥ ८॥

कबहूँ कबहूँ रूप पियारी। आवत जहँ निर्मल फुलवारी॥
फुलवारी द्वारें दुई बीरा। काढ़े खरग रहै रन धीरा॥
बुद्ध चतुर पहुँचा तब ताईं। कहा बिनय कर सेवक नाईं॥
आप रूप मध पंथ न लीन्हा। मन सखी तेहि मानिनि कीन्हा॥
मोहि असमन लोचन सों सूझा। आवहि जाहि दिष्ट औ बूझा॥

जिउ राजा कँह फेरा, बुद्ध गेयानी नाहि।
दिष्ट बूझ आवा गवन, करहि कयापुर माहि॥ ९॥

चेरा एक रूप के ठाऊँ। रहेउ कटाछ रहेउ तेहि नाऊँ॥
कहा रूप सो भंजहु चेरी। लखि आनै सूरत मन केरी॥

बात पियारी के मन भायेउ । चेरी चितवन नाम पठायेउ ॥
चितवन मन मन देखि लोभाना । रूपवती सो जाइ बखाना ॥
प्रेम बढ़ेउ तब मन के हियरें । भेजा निलज बुद्धि के नियरे ॥

बुद्धपठायेउ लाज कों, मनहि बुझायेउ आय ।
दिन दुइ मन धीरज धरा, पुनि अधीर भा राय ॥

दुर्जन आपन बंधु पठावा । आइ मनहि अभिलाष बढ़ावा ॥
बिनु जिव आज्ञा मन गा तहां । रहा देस काया पुर जहां ॥
साहस सेवक मन को रहा । मन के साथ बात अस कहा ॥
भेंट करै चितवन सो चाही । आपन बिथा सुनावहु ताही ॥
रूप गली निस कँह मन आयेउ । बूझे चितवन बास पठायेउ ॥

चितवन आयेउ मन नियर, मन की बातहिं पाइ ।
जहां रूप बैठी रही, तहां सुनायेउ जाइ ॥ ११ ॥

सुनि मन बात रूप अभिमानी । चितवन ऊपर अधिक रिसानी ॥
कहा मन पास फेर जिन जाहू । मन सो दूर करहु यह चाहू ॥
मन सेवक दरसन ढिग आई । मन के नेह की बात सुनाई ॥
दरसन बात सुता पर थापा । छाड़ेउ आप सो आपन आपा ॥
औ मन राय आस धर हियरे । भेजा प्रीय रूप के नियरे ॥

प्रीत पियारी नारि, गई रूप के ठाउं ।
आपन बास बतायेऊ, निर्मलता पुर गाउँ ॥ १२ ॥

चेरी सभा रही होइ नारी । महल प्रीत रूप की प्यारी ॥
रही पियत धन सुरा सुवासा । मनतेहि गलीगयेउ तजिआसा ॥
चितवन कँह तब प्रात देखावा । चितवन रानी कँह निरखावा ॥
देखि रूप मन रूप लोभानी । मन औ जिउ सो रीझी रानी ॥
मन सनेह दुख जेतो पावा । प्रीत रूप मन पाई सुनावा ॥

सुवा रूप मन को दुख, दाया संवर लीन्ह।
आप सुभावा गवन को, चितवन कहँ तब दीन्ह ॥१३॥

चितवन अपने सदन मझारा। मन राजा कह आनि उतारा।
देवस चार पर रूपहि माना। मन कहं भेटो मन मनमाना॥
पता की लाज रही तेहि हियरे। आवै दूरि दूरि मन नियरे॥
नार एक बिभिचारिन रही। रूप की बात पिता सों कही॥
पिता रूप मन साथ बियाहा। भा दोउ हाथ मिलन को लाहा॥

मन की इच्छा पूजो, भये दोऊ एक ठाऊँ॥
रूप सहित मन भयऊ, पुनि सरीर पुर गांव॥ १४॥

दिन दिन अधिक बढ़ी पर भूता। जनमें मन घर सुत औ सूऊ॥
चिंता गे परमद बडसाऊं। चन्द्र सुरज उतरे घर ठाऊं॥
जिउ रीझा दोउ बालक ऊपर। राज काज सब छोड़ेउ भूधर॥
राज सउँपि दुर्जन कहँ दीन्हा। आप प्रेम को संचर लीन्हा॥
जिउ के सेवक निर्बल भए। दुर्जन दास बसी ह्वै गए॥

जिव कंह बुद्ध बुझाये, जिउ न पुजायेउ आस।
बुद्ध बटाऊँ होइ गयेउ, साहस जोगी पास॥१५॥

साहस तें जिउ मरम सुनावा। सुनि कै तपी उपाय बतावा॥
प्रीतपूर है निर्मल ठाऊँ। तहां महीपत क्रीपा नाऊँ॥
चलहु चलहु क्रीपा की ओरा। होइ सवाँरै कारज तोरा॥
गए दोऊ क्रीपा के पासा। जिनको राज बहोरै आसा॥
क्रीपा आदर बहुतै कीन्हा। ठाऊँ परम मन्दिर में दीन्हा॥

क्रीपा के राजा रहा, सुख दाता तेहि नाउँ।
जीव मनोरथ कारनै, गयेउ महीपत ठाउँ॥१६॥

सुख दाता क्रीपहि बै दीन्हा। करु सोई जो चाहत कीन्हा॥
बिविलोने बुधि संग लगावा। बुधि जिउ निकट तिन्है लै आवा॥

दूलह रूप मुहाना राजा । मन मों प्रेम दमामा बाजा ॥
वे दोऊ जिव कहँ लै आए । झीपा नियरें भेट कराए ॥
प्रेम प्रेम मद प्याला दीन्हा । तब जिउ सुख दाता कँह दीन्हा ॥

होइ दयाल सुख दाता, चार देस तेहि दीन्ह ।
जीव महाराजा भयेउ, पुनि सरीर पुर लीन्ह ॥१७॥

बचन हसावै मनुज कहँ, बचन रोवावै ताहि ।
बचनहिते यहि जगतमों, कीरत परगट आंहि ॥ १८ ॥

प्रेम बढ़ै जो दूई मन, दोऊ एकै होय ।
बिछुरे ते बाढ़त अधिक, बूझे प्रेमी होय ॥ १९ ॥

रहै न एको अन्त कँह, नारंग दाड़िम दाख ।
दिन चार की चाँदनी, फिर अँधियारो पाख ॥२०॥

नूर मुहम्मद जगत मों, रहा न रहिहै कोइ ।
एक बार आवागमन, सब काहू को होइ ॥ २१ ॥

जो प्रीतम होइ निरदई, देइ नरक असथान ।
होइ सोइ बैकुण्ड सम, पति बरता के जान ॥ २२ ॥

जगत मझार सराहिए, भंवर फूल को हेत ।
भँवरहि चिन्ता फूल की, फूल बास रस देत ॥ २३ ॥

प्रेमी ताको जानिए, देइ मित्र पर प्रान ।
मित्र पन्थ पर जिउ दिहे, जुग जुग जिए निदान ॥२४॥

दुइ मानुष थाती धरै, मागे आवे एक ।
थाती ताहि न दीजिए, जो तोहि बुद्धि बिबेक ॥२५॥

बहुत न सोऊ दिवस महं, थोर न रैन मझार ।
उदर भरे पर खादु नहिं, पियहु न निस कइ बार ॥२६॥

जुल्फिकार

(१७१४—१७७६)

शाह सिकन्दर जुल्फ़िकार अमीरुल-उमरा नसरतजंग बुन्देलखण्ड के शासक अली बहादुर के पुत्र थे। इन्होंने बिहारी सतसई की एक टीका भाषा में लिखी है। इनकी अन्य फुटकर रचनाएं भी मिलती हैं। इनका जन्म संवत् १७१४ वि० और मरण सं० १७७० वि० में हुआ था। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे लिखे जाते हैं।

गान

अधरन की लाली कहुँ कहुँ बन रही, मानो जरी लाल चूनी।
पिया के मिलावे को आवत कर दरपन ले,
देखत हंस मुसकानी छबि भई है दूनी ॥
अति रसाल लाल लाल डोरे,
वह छबि मोसो बरनि न जाय सरस सलोनी
शाह सिकदर जुलफिकार सो अतरित मानी
होत जात लाजत तरुनी ॥

अली मुहिब्ब खां (प्रीतम)

(१७८७)

अली मुहिब्ब खां आगरे के निवासी थे। सम्वत् १७८७ वि० मे इन्होंने खटमल बाइसी नामक एक हास्य कविता लिखी। इन्होंने व्रज भाषा मे उत्कृष्ट कविता की है। इनकी कोई पुस्तक देखने में नहीं आई।

खटमल गुण गान

(१)

प्रीतम सों आनि पूछो कविन सुजान मिलि
तीछन है कौन कहो साँची छाड़ि छल को।
चित्त में विचारो तो बज्र ठहराय बान—
अर्जुन की चक्र है त्रिशूल हरहल को॥
पञ्चसरजू के पञ्चसर है सुमन के
पे इनको कहा कहो समान नाही पल को।
वेधत है मर्म वर्म ऊपर कसेई रहे
मेरे जान सदन हदन खटमल को।

(२)

गिर ते गिरन दावानल की दहन कारे—
नाग की डसनि भलो बूड़ जैवो जल को।
गोली को जलन तरवार को लगन कहा
बान घाव कहा तोप गोला हूं है सलको॥
जहर लहर केतो अहर तहर करै
बीज की तरन दुख मान एक पल को।
कोऊ ऐसे नाहि जासो ऐसे दुख होत जात
सब ते बुरो है एक खाट खटमल को॥

(३)

जगत के कारन करन चारो वेदन के
कमल मे बसे है सुजान ज्ञान धरि कै।
पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के
समुद में जाय सोयं सेस सेज करि कै॥

मदन जरायो औ संघारे दृष्टि ही में
सृष्टि बसे हैं पहार वेहू भाजि हरवरि कै ।।
विधि हरिहर और इनतें न कोऊ तेऊ
खाट पे न सोवैं खटमलन को डरि कै ।।

(४)

कोऊ कवि कहै भुव मण्डल की झाईं यह
ताकी कालिमा है बात ग्रन्थन यों चली है ।
कोऊ कहत जम्बू दीप जामुन को तस एक
ताकी परधारी यह अबलौ न हली है ।।
जैसी तैसी मति जाको त्योंही त्यों कहत पर
प्रीतम के मन मानो यहै बात भली है ।
ऊचौं मुख करि दीनी खटमल फूकि कहू
मेरे जान याते छाती निस पति की जली है ।।

(५)

खाट धूप बीच जलै खटमल जरावै को ।
याते सूर भई चित चिन्ता यह कल में ।
मेरी कोई जानि मोपै कोप करि बैठे फिर
होही ठौर नाही तीनो लोक के महल मैं ।।
वरट पै नट जैसे ऐसे कै किरिन पर
कोऊ चढ़ि धावै आय कूदै एक पल मै ।
याही डर दिन कर डोलत है घर-घर
कापत है थर थर देखो जाय जल मै ।।

(६)

बाघन प गयो देखि बनन में रह्यो छिपि
सापन पै गयो तौ पताल ठौर पाई है ।

गजन पै गयो धूलि डारत है सीस पर
बैदन पर गयो काहू दारु न बताई है॥
जब हहराय हम हरी के निकट गए
हरि मोसों कह्यो तेरी मति भूल छाई है।
कोऊ न उपाय भटकत जिन डोलै सुनै
खाट के नगर खटमल की दोहाई है॥

(७)

गढ़ जिन ढाए बड़े रण बिड़राये दस-
दिसन को धारा बस कीने निज बर त।
भट जिन मारे देव छिन में पछारे काज-
कीने भार भारे सब आपने ही कर तै॥
काहू की न सक चित्त बीच काहू मन करि-
प्रीतम सुजान दबे नाहि काहू अरि तै॥
नींद भरि सोवत न ऐसे ऐसे बली निस-
चौंकि चौंकि उठै खटमलन के डरि तै॥

तालिब शाह

(१७६८)

तालिबशाह का जन्म—सम्वत् १७६८ वि० है। इनका कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आया। स्फुट छन्द मिलते हैं। इनकी कविता खड़ी बोली मिश्रत है।

भुजंगप्रयात

महबूब बागे सुहागे बने हैं सुमोहन गरे माल फूलों हिये है।
महारङ्ग माते अमाते मदन के विलोकत बदन खोरि चन्दन दिये है॥

यही भेष हरिदेव भृकुटी तुम्हारे, सुलकुटी भँवर खेल या लख लिए हैं। दिवाना हुआ है नमान दरश का सुतालिब वही श्याम गिरवर लिए है ॥

महताब

(१८००)

महताब का रचना काल लगभग सम्वत १८०० वि०के समझना चाहिए। इन्होंने हिन्दू पति की प्रशंसा की है जिनके यहां दास कवि थे। इन्होंने उन्हें राजा के स्थान पर बादशाह लिख दिया है। इनका बनाया हुआ नखसिख उत्तम ग्रन्थ कहा जाता है।

कवित्त

(१)

कमन चित हरत सरूप के चरण रहो,
श्रवण कहत गुन गाथ से गह्यो करौं।
त्योंहि 'महताब' दोइ मास घर सीखविन,
वैस यों कहत परदेश क्यो रह्यो करौं॥
बैन यौ कहत राना रूर को पढ़ोगों,
ह्याइ नैन हू कहत रूप लाह सों लह्यो करौं॥
कीजिए दुरस न्याउ हिन्दू पति पादशाह,
कौन को उराहनो यौं कौन को कह्यो करौं॥

(२)

सोहत सजीले सित असित सुरंग अंग,
जिन शुचि दे अंजन अनूप रुचि हरै हैं।
शील भरे लसत अशील गुण-साजि कै,
लाज की लगाम काम कारीगर फेरे हैं॥

घूँघुट फरस तामे फिरत फबित फूले,
लोक 'महताब' अवलोकि भये चेरे हैं।
मौर वारे मन के त्यो पन के मरोर वारे,
त्योर वारे तरुणी तुरंग दृग तेरे हैं ॥

(३)

दिया है खुदा ने खुसी करो 'महताब' खूब,
खाओ पीयो देवो लेओ याही रहजाना है।
पातसाही आदले अमीर अमराव भए।
कूच कर गये कुछ लगा न ठिकाना है ॥
देओ लेओ सब से निरंदगी की राह चलो,
जिन्दगी जरा सी तामे दिल बहलाना है।
आवै परवाना फिर बनै न बहाना जग,
नेकी कर जाना फेर आना है न जाना है ॥

तालिब अली

(१८०३)

तालिब अली का उपनाम रसनायक था। ये बिलग्राम के रहने वाले थे। इनका रचना काल सम्वत १८०३ वि० के लगभग समझना चाहिए। इन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, स्फुट छन्द मिलते है।

कवित्त

जल को न घट भरे मग की न पग धरे,
घर को न कछु करै बैठी भरे सासुरी ।

एकै सुनि लोट गई एकै लोट पोट भई,
एकन के दृग ते निकस आये आंसुरी ॥
कहै 'रसनायक' सो व्रजबनितन बधि,
बधि कहाय हाय होइ कुन हांसुरी ।
करिये उपाय वास अरिये कटाय नाहीं,
उपजैगो वास नाही बाजी फेर वासुरी ॥

नेवाज

(१८३०)

नेवाज जाति के जुलाहा और बिलग्राम के रहने वाले थे। इनका जन्म सम्वत १८०४ में हुआ था। इनका कविता काल लगभग सं० ८३० के समझना चाहिए। इनकी श्रृंगार रस की रचनाएं अच्छी होती थीं। इनके फुटकर छन्द जहां तहां मिलते हैं।

सवैया

(१)

तोका तौ चाहत वे चित में अरु तू उनही को हियो ललचावै ।
मै ही अकेली न जानति हौं यह भेद सबै व्रज मंडलि गावै ॥
कौन सकोच रह्यो है "नेवाज" सा तू तरसै औ उन्हे तरसावै ।
बावरा जो पै कलंक लग्यो तो निशंक ह्वै काहे न अंक लगावै ॥

(२)

पोंछि दे पौढ़ि दुराय कपोल को, माने न कोटि पिया उन पोढ़त ।
बाहन बीच हिए कुच दाऊ गहे रसना मनहो मन सोचत ॥

सोवत जानि 'निवाज' पिया कर सो कर दै निज ओर करोटत ॥
नीवी विमोचत चौंकि परी मृग छौनसी बाल विछौना पलोटत ॥

(३)

मुख चुम्बन मैं मुख लै जो भजै पियके मुख मै मुख नायो चहै ॥
गलबाही गोपाल के मेलत ही मुख नाही कहै मन ते न कहै।
नहिं देत निवाज छुवै छतियाँ छतियाँ में लगाये ते लागि रहै ॥
कर खैचत सेज की पाटी गहै रति में रति की परिपाटी गहै ॥

(४)

बांह दुहू की दुहू के उसीसे दुहू हिय सो हिय गाढ़ गहे है।
दूसरी बांह दुहू दुहू ऊपर दोऊ 'नेवाज' जू नेह नहे है ॥
सोहे दूहू के मिले मुख चन्द दूहून के स्वेद के बुन्द बहे है।
खोय कै दोऊ मनोज व्यथा सम अंक समोय के साय रहे है ॥

लतीफ

(१८३४)

लतीफ का कविता काल सम्वत १८३४ वि० के लगभग समझना चाहिए। इनके स्फुट छन्द मिलते हैं।

सवैया

(१)

सबरै निज श्रीहरि के संग राधिका वासर वास उतारति है।
अति आलस वन्त जम्हाति तिया अंगराति भुजानि पसारति है ॥
सर की अंगिया जु हरे रंग की सुलतीफ महाछवि पारति है।
मनु है जु पुरैनि के पातन में उरझौं चकवा तेहि टारति है ॥

(२)

चन्द ते आगरि है मुख ज्योति बड़े बड़े नैन विलोल है दोऊ ।
मूदत हाथ में आवत नाहि ने कैसे के जाय छिपे कहो कोऊ ॥
मावस रैनिको पून्यो करै बलि थोरक सो मुख खोलत सोऊ ।
देखि 'लतीफ' झुकी सब बाल सु आवतरी वह खेल की खोऊ ॥

प्रेमी यमन

(१८३५)

प्रेमी यमन दिल्ली के रहने वाले थे। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म सम्वत १७६८ दिया है मिश्र बन्धुओं ने इनका कविता काल १८३५ लिखा है। इनका बनाया ग्रन्थ केवल अनेकार्थ माला देखने में आता है ।

चन्द्रशब्दार्थ

चन्द्रमन इस तार तारिका औ कस्तूरी,
चन्दन और पृथ्वी गंगा मन्थन गहत है।
बानर औ कुशलता ब्रजनाथ अवधपुरी,
लका सांप कामदेव जग में चहत है॥
खगा रिपु ग्रहजन रवि मंडलो प्रमान ,
मेघ इते शब्द चन्द्रमाहु के लहत हैं।
चन्द्रमा सुनर जानि भजो राम रहिमान,
नाही तो तवा समान ताही को कहत है॥

कारेखां फ़कीर

(१८४३)

सागर जिले में रहली एक तहसील का कस्बा है । यही कारे खां की जन्म भूमि कही जाती है। ये रंगरेज थे। इनको मित्रता एक ब्राह्मण-पुत्र से हो गई थी। अनायास ब्राह्मण-पुत्र की किसी रोग से मृत्यु हो गई। कारे उस समय घर मौजूद न थे। घर आने पर यह दुःखद समाचार सुनकर बिना किसी से कुछ कहे पहले वे मित्र के घर पर गये। वहां मालूम हुआ कि लोग उनके मित्र के शव को श्मशान भूमि में ले गये हैं। कारे वहां पहुंचे। देखा कि लोग शव को चिता पर रखने जा रहे हैं। कारे ने दूर ही से ललकारा 'खबरदार ज़िन्दा आदमी को चिता पर मत रक्खो' लोगों ने समझा कि कारे ऐसा मोहवश कह रहे हैं। तब तक कारे शव के पास पहुंच गए और कहा—"मित्र! उठो। मैं आ गया।" मित्र की ओर से जब कोई उत्तर न मिला तब आपने सब लोगों से जो वहां उपस्थित थे थोड़ी देर ठहरने को प्रार्थना की और खड़े खडे १०८ कवित्त (कृष्ण-स्तवन में) कहे। प्रत्येक कवित्त की अंतिम समस्या "क्यों मेरी बार बार की।"—रखी थी। जब १०८ वां कवित्त पूर्ण हुआ, ब्राह्मण-पुत्र सोए आदमी के समान महा निद्रा से जाग पड़ा। लोग आश्चर्य में डूब गए। इस किंवदन्ती में कहां तक सचाई है इसे ईश्वर ही जाने। परन्तु ऐसा होना असम्भव नहीं। बहुधा मृत्यु के कुछ घंटे बाद आदमियों को पुनः जीवित होते देखा गया है। सय्यद अमीरअली मीर ने इनका कविता काल उन्नीसवीं शताब्दि (इस्वी) के आरम्भ में लिखा है जो विक्रमीय संवत १८४३ के लगभग

होगा। इनके संपूर्ण कवित्त अभी तक नहीं मिले है मुझे कुल चार कवित्त मिले हैं जो उदाहरण—स्वरूप नीचे दिये जाते हैं।

कवित्त

(१)

माफ किया मुलुक मताह दी विभीषन को,
कही थी जुबान कुरबान ये करार की।
बेठिबे को ताइफ तखत दै तखत दिया,
दौलत बड़ाई थी जुनार दार यार की॥
तब क्या कहा था अब सरफराज आप हुए,
जब कि अरज सुनी चिरी मार ख्वार की।
'कारे' के करार माहि क्यों न दिलदार हुए,
एरे नन्दलाल क्यों हमारे बार बार की॥

(२)

छल बल करि थाक्यो अनेक गजराज भारी,
भयो बल हीन जब नेक न छुड़ा गयो।
कहिबे को भयो करुना की कवि 'कारे' कहैं
रही नेक नाक और सब या डुबा गयो॥
पंकज से पायन पयादे पलग छाड़ि
पावरी बिसारि प्रभू ऐसो परि पाग यों।
हाथी के उरमांहि आधो हरि नाम सोह
गरे जौ न आयो गरुणेश तौ लो आ गयो॥

(३)

स्वमी शिशु पालहूँ की गारी सही शत्रु सम
गारी दई मारी लात सोई सिर प्यार की।

भीरि परी पारथ पै अनेक भूपाल मारे
भारई के मंडल कूँ घंटन समार कीं॥
राजा दुरजोधन के मेवन को राजी नहीं
बिदुर की भांजी महाराज के अहार कीं।
भन्य नन्द के कुमार हाथ जोर कहू बार बार
क्यों वे नन्दलाल क्या हमारी बार बार की॥

(४)

वृन्दावन कीरत विनोद कुंज कुंजन में,
आनन्द के कन्द लाल मूरति गुपाल की।
कालीदः कवि कारे पताल पैठि नाग नाथ्यो,
केतकी के फूल तोरि लाये माला हार की॥
परसत ही पूतना परम गति पाय गई,
पलक ही पार पारयो अजामिल नार की।
गीद गुद गान हार छांडि के उगान यार,
आयी ना अहीर क्या हमारी बार बार की॥

दीनदरवेश

(१८७५)

दीन दरवेश गुजरात में पालनपुर राज्य के अन्तर्गत किसी गांव के रहने वाले मुसलमान लोहार थे। ये अँगरेजी फौज़ में मिस्तिरी का काम करते थे और बराबर फौज के साथ ही रहते थे। किसी युद्ध में अङ्गरेजी छावनी में शत्रु पक्ष की ओर से एक गोला आया इससे इनका एक हाथ कट गया

ओर यह काम करने योग्य न रहे। इन्हें बेकाम जान अङ्गरेजी सरकार ने अपने यहां से निकाल दिया तभी से ये फकीर हो गए और अपना नाम दीनदरवेश रक्खा। इनका पहला नाम क्या था यह विदित नही।

घूमते घामते ये बड़नगर शहर में पहुंचे यहां अतीत बावा बालनाथ का प्रख्यात आश्रम था। आश्रम से कुछ गरीबों को नित्य प्रति रोटी मिलती थी। इससे ये यहीं रह गए और बालनाथ को अपना गुरु मान कर उनसे पढ़ने लगे। इससे इनकी बुद्धि विकसित हुई और हिन्दी भाषा में कविता करने लगे। इनके बुद्धि का विकाश और चमत्कार देख लोग इन्हें महात्मा कहने लगे। अब ये केवल बड़नगर में ही नहीं रहते थे किन्तु गुजरात काठियावाड़ आदि चारो तरफ घूम घूम कर अपनी कविता में धर्मोपदेश करने लगे। इनके साथ चार पांच साधु भी रहते थे।

कुछ लोगों का कथन है कि इन्होंने कुण्डलिया छन्द में दीन प्रकाश नामक एक ग्रन्थ बनाया और कुछ लोगों का विचार है कि भजन भड़ाका नामक एक भजन की पुस्तक रची किन्तु ये पुस्तकें अब तक देखने में नहीं आई। हां, इनकी फुट कर रचनायें मिलती हैं। ऐसा एक कथा प्रचलित है कि गुजरात में सिद्धपुर के मेले में दीन दरवेश और कान्ह कवि अपने अपने बनाये कुण्डलियें तीन दिन एक दूसरे के उत्तर प्रति उत्तर में पढ़ते रहे। जब दीन दरवेश वृद्ध हुए तो काशी में चले आये और यहीं इनकी मृत्यु हुई।

दीन दरवेश की कविताओं के देखने से ऐसा जान पड़ता है कि ये सम्वत १८७५ के लगभग हो गए हैं।

कुण्डलिया

(१)

बन्दा बहुत न फूलिए, खुदा खिवेगा नांहि।
जोर जुलम कीजे नहीं, मिरत-लोक के माहि॥
मिरत लोक के माहि, तजुरबा तुरत दिखावे।
जिहि नर करै गुमान; सो नर खत्ता खावे॥
कहे 'दीनदरवेश' भूल मत गाफिल गंदा।
मिरत लोक के मांहि फूलिये बहुत न बन्दा॥

(२)

बन्दा बाजी झूठ है, मत साँची कर मान।
कहा बीरबल गंग हैं, कहा अकब्बर खान॥
कहां अकब्बर खान भला की रहत भलाई।
फतेहसिंह महराज देख चल गए सब भाई॥
कहे 'दीनदरवेश' अचल एक नाम रहन्दा।
मत साँची कर मान झूठ है बाजी बन्दा॥

(३)

बन्दा जाने में करौं करन हार करतार।
तेरा किया न होयगा होगा होवन हार॥
होगा होवन हार बोझ नर योहि उठावे।
ज्यों विधि लिख्यो लिलाट प्रतच्छ फल तैसा पावे॥
कहे दीन दरवेश हुकुम से पान हलन्दा।
करन हार करतार क्या तू करिहे बन्दा॥

(४)

माया माया करत है खरच्या खाया नाहि ।
सो नर ऐसे जाहिंगे ज्यो बादल की छांहिं ॥
ज्यों बादल की छांहि जायगा आया ऐसा ।
जाना नहि जगदीश प्रीति कर जोड़ा पैसा ॥
कहे 'दीनदरवेश' नाहि कोइ अम्मर काया ।
खरच्या खाया नाहि करत नर माया माया ॥

(५)

मेरु[1] नगर मे मर गए जूने गर दीवान[2] ॥
पोर बंदर मे प्रेमजी[3] सुरग पटन सुलतान ।
सुरग पटन सुलतान काल की कोइ न बूझी ॥
आठ पहर था अमल सोह की बात न सूझी ।
कहे 'दीनदरवेश' घसड़ गया माया मेरू ॥
भजले सीताराम नगर मे मर गये मेरू ।

(६)

पालन पुर का शेरखां छोड़ चले छिन मांहि ।
तुच्छ जीवन के कारने लियो भल्लपन नाहि ।
लियो भल्लपन नाहि कुटुम्ब से कीन बुराई ।
साहेब साखी नाहि साहिबी बनी पराई ॥

---

(१) काठियावाड़ के हालार प्रान्त में जामनगर राज का मेरूखवास अमीर था ।

(२) काठियावाड़ के सोरठ प्रान्त में जूनागर राज्य का अमर जी दीवान था ।

(३) काठियावाड़ के पोर बन्दर राज्य का प्रेमजी दीवान था ।

कहे 'दीनदरबेश' रह्या को आमद सरखो।
छोड़ चले छिन माहि शेखखां पालन पुरको॥

(७)

राजा रावण मर गये, कट गये कुम्भकरन्न।
इन्द्रजीत भी उठ गये, हरणाकेश हरन्न॥
हरणाकेश हरन्न, बाण सहसा बीलाये।
एसे कोटि अनंत, सभी राचस सौआये॥
कहे दीन दरबेश, प्रकट तुम देखो परखा।
मानवि केतिक मान रहा नहि रावण सरखा॥

(८)

गड़े नगारे कूच के, छिन भर छाना नाहि।
को आज को काल को, पाव पलक के मांहि॥
पाव पलक के माहि समझ ले मनवा मेरा।
धरा रहे धन माल, होयगा जंगल डेरा॥
कहे 'दीनदरबेश' गर्व मत करे गुमारे।
छिन भर छाना नाहि कूंच के गड़े नगारे॥

(९)

रूपैया तोहि रंग है जगत भगत वश कीन।
सच्चा तुझकूं तो कहूँ, जो वश करले दीन॥
जो वश करले दीन, दाम कछु दिन पलटावै।
धन्य ताहि अवधूत झपट मे कबू न आवे॥
कहे 'दीनदरवेश', दीन क्यों नही तपैया।
जगत भगत वश कीन रंग है तोहि रूपैया॥

(१०)

राम रुपैया रोक है, खर्च्या खूटत नाहि ।
साहेब सरखा सेठिया, बसे नगर के माहि ।।
बसे नगर के मांहि हुंडिया फिरे न कच्ची ।
और साख सब झूठ साख सत गुरु की सच्ची ।।
कहै 'दीनदरवेश' त्याग बैराग रखैया ।
खर्च्या खूटन नाहि रोक है राम रुपैया ।।

(११)

हिन्दू कहे सो हम बड़े, मुसलमान कहे हम्म ।
एक मुंग की दो फाड़ है कुण जादा कुण कम्म ।।
कुण जादा कुण कम्म कबी करना नहि कजिया ।
एक भगत हो राम दूजो रेमान से रजिया ।।
कहे 'दानदरवेश' दोय सरिता मिल सिन्धू ।
सबदा साहब एक, एक मुसलमान हिन्दू ।।

(१२)

पावैये के शहर मे, गणिका किया दुकान ।
तेल जमाया गॉठ का, कछ्र न पामी मान ।।
कछ्र न पामी मान, रैन सारी भर रोई ।
इस गाडू के शहेर, इजत अब्रु सब खोई ।।
कहे 'दीन दरवेश' भाव क्या भावइओं का ।
नहि जान्या नायका, शहर है पावैगो का ।।

(१३)

दाता नहि शूरा नही, नही धरम नहि नेम ।
सो आया संसार में, जान जनावर जेम ।।

जान जनावर जेम, करी नहिं सुकृत करनी ।
ज्ञान्या नहि जगदीस, भार मारी है जननी ॥
कहे 'दीन दरवेश' जीवता अवगत जाता ।
नहीं धरम नहि नेम, नहीं शूरा नहिं दाता ॥

(१४)

डबिया राखो दंत की. मांहि भरो तपवीर ।
एक चपट भर सूंघिये, मिटे मगज की पीर ॥
मिटे मगज की पीर नेन में निन्द न आवे ।
काम दाम हुसियार, अंग ही आलस जावे ॥
कहे 'दीन दरवेश' रेन, औ दिन ही जांखो ।
माहि भरो तपकीर, डबियां दंत की राखो ॥

(१५)

छारू जैसी छीकणी, ताका व्यसनी बोत ।
एक चिमट भर सूघियें (पण) देतां आवे मोत ॥
देता आवे मोत, डबीया गोद छुपावे ।
बेइमान हो जाय, झूठ सोगन बहु खावे ॥
कहे 'दिन दरवेश' आपसे, अकल विचारूं ।
ताका व्यसनी बोत, छीकणी जैसी छारू ॥

(१६)

होंका राके हाथ में, तम्बाकू के चोर ।
गूल पराये ढूंढते, ठाली रखते ठोर ॥
ठाली रखते ठोर, और कूडम बरताते ।
कसुम्भ के यार नीत, उठ मावा खाते ॥
कहे 'दीन दरवेश' इनके मन धर गयो धोखा ।
तम्बाकू के चोर हाथ, में रखते होका ॥

इन्शा अल्लाह खां

(१८७४)

इंशा अल्लाह खां के पिता का नाम माशा अल्लाह खां था। ये लखनऊ के नवाब सआदत अली खां के समय में थे। Mr beali के कथनानुसार इन्होंने चार दीवान लिखे हैं। इनकी पुस्तकों में दराय लताफत बहुत प्रसिद्ध है। मैने इनका केवल उदयभान चरित और रानी केतकी की कहानी देखा है। सन १३२३ हिजरी अर्थात् सं० १८७४ वि० में इनकी मृत्यु हुई।

सवैया

(१)

जब छांड़ करील की कुंजन को हरि द्वारकाजीव मां जाय बसे।
कुल धूत के धाम बनाय घने महाराजन के महराज भये॥
तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहि नाते को जोड़ लये।
धरे रूप नये किये नेह नये और गइयां चरायेबो भूल गये॥

(२)

रानी को बहुत सी बेकली थी। कब सूझती कुछ भली बुरी थी॥
चुप से चुपके कराहती थी। जीना अपना न चाहती थी॥
कहती थी कभी अरी मदवान। है आठ पहर मुझे वही ध्यान॥
यहां प्यास किसे लगी किसे भूख। भूखा देखूं हूं वाही हरे हरे रूख॥
टपके का डर है अब यह कभी। चाहत का घर है अब यह कभी॥
अमराइयों में उनका वह उतरना। और रात का सांय सांय करना॥
औ चुपके से उठके मेरा जाना। और तेरा वह चाह का जताना॥
उनकी वह उतार अंगूठी लेनी। और अपनी अंगूठी उनको देनी॥

आखों में मेरे वह फिर रही है। जाका जो रूप था वही है॥
क्योंकर उन्हें भूलूं क्या करूं मैं। कब तक मां बाप से डरूं मैं॥
अब मैंने सुना है अय मदन बान। बन बन के हिरन हुये उदयभान।
चरते होंगे हरी हरी दूब। कुछ तू भी पसीज सोच में डूब॥
मै अपनी गई हूं चौकड़ी भूल। मत मुझको सुंघाय डह डहेफूल।
फूलों को उठाके यहां से लजा। सौ टुकड़े हुआ मेरा कलेजा॥
बिखरे जी को न कर इकट्ठा। एक घास का लाके रखदे गट्ठा॥
हरियाली उसी की देखलूं मै। कुछ और तो तुझको क्या कहूं मैं।
इन आंखों में है भड़क हिरन की। पलकें हुई जैसे घास बन को॥
जब देखिय डबडबा रही है। ओसे आंसू की छा रहो है।
यह बात जो जा में गड़ गई है। एक ओससी मुझ पै पड़ गई है॥

—❀—

आज़म

(१८६०)

'आज़म का कविता काल सम्बत १८६० के लगभग समझना चाहिए। इनके जन्म, मरण निवासस्थान आदि का कुछ पता नही चलता। इन्होने दो ग्रन्थ लिखे है (१) नख शिख और (२) षट ऋतु।

कवित्त

बस सन्धि नवला नबोढ़ा बाला श्यामा अरु
कहिए किशोरी जाको जोवन जगमगात।
बरस बरस आभरन रस बस लगि
अबला तरुनी दूनौं रस रस सरसात॥

विद्या गृह वाढ़ी युवती जु प्रौढ़ा दूनो,
कला सकल हिये मे वसे'आजम'सदा सुहात।
जैसे मणि मदिर में छोटी बड़ी मणिन मे ॥
एकै रूप प्रति विम्ब पूगै सबको लखात ॥

रसिया

(१८६६)

नजीब खां (रसिदा) का मिश्र बन्धु विनोद में महाराज पटियाला के यहा होना लिखा है। इनका कविता काल लग भग संवत १८६६ के समझना चाहिये। मैं ने इनकी कोई पुस्तक नही देखी है।

सवैया

जबते रितुराज समाज रच्यो तबते अवली अलिकी चहकी।
सरसाय के शोर रसाल की डारिन कोकिल कूकै फिरै बहकी ॥
रसिया बन फूले पलाश करील गुलाबकी बास महा महकी।
बिरही जन के दिल दागिबे को यह आगि दशो दिशि तें दहकी ॥

अनीस

(१९१०)

अनीस का कविता काल लगभग सम्वत १९११ वि० के समझना चाहिए। इन्होंने कोई ग्रन्थ नही लिखा। फुटकर छन्द दिग्विजय भूषण मे मिलते हैं ॥

कवित्त

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम
राखिहो हमै तो शोभा रावरी बढ़ाइ है।
तजिहो हरखि कैतो बिलग न सोचै कछू
जहां जहां जैहै तहां दूनो यश गाइ है॥
सुरन चढ़ैगे नर सिरन चढ़ैगे पर
सुकवि 'अनीस' हाथ हाथ में बिकाइ है।
देश में रहेगे परदेश में रहेंगे काहू
वेश में रहेगे तऊ रावरे कहाइ है॥

खान सुलतान

(१९२५)

खान सुलतान का कविता काल सम्वत् १९२५ के पूर्व समझना चाहिए। मैंने इनकी कोई पुस्तक नहीं देखी है। और न इनकी जीवन घटनायें ही मालूम है।

कवित्त

चातक नशीर वीर बकसी समीर धीर
पुरवाई महाबीर केकिन को मान है।
दादुर दरोगा इन्द्र चाप इतमाम घटा
जाली बगजाल ठाढ़ो 'खान सुलतान' है॥
गरजन अरज कदन निज मनसिज
जिन सब जेर किये देश देश आन है।

मेघ आम खास जामें दामिनी तखत वह
पावस न होय पंचबान को दिवान है ॥

हफ़ीजुल्ला खां

(१९१३—१९५०)

हफीजुल्लाखां जाति के अफगान थे। ये करजई (जि० हरदोई) के रहने वाले थे और मदर्सा बन्नापुर बघौली में अध्यापक थे। उनका जन्म सम्बत् १९१३ में करजई में हुआ था और १९५० वि० तक थे। इनकी नीचो लिखी हुई पुस्तकें मेरे देखने में आई है (१) नवीन संग्रह (२) हजारा (३) प्रेम तरंगिणी (४) मन मोहनी और (५) रसिक संजीवनी। ये कविता में अपना नाम "हाफिज" रखते थे।

सवैया

(१)

चात्रिक मोर करें अति शोर उठी घन घोर है श्याम घटा।
चमकै बिजरी अति जोर भरो अरु लागि झगी जिये ठाट ठटा ॥
शोक भरी पछतावै खरी बिरहागि जरी शिर खोले लटा।
काहि के हाथ करै पछिताय सो 'हाफिज' देखि कै सूनी अटा ॥

(२)

हमे चित चैन नहीं पलहूँ जब ते वह प्रान पियारी सिधारी।
फीकी लगै सिगरी सुख सम्पति ऐसी भई बिरहा अधिकारी ॥

युक्ति नहीं मिलने की चलै अरु प्रेम प्रवाह उठै नित भारी।
लागी सो लागि गई अखियां हिय प्रेम बनो रखियो तुम प्यारी॥

(३)

आज बजी यमुना तट फेरि कहूं मुरली जग मोहिनि हारी।
ध्यान छुटे मुनि आदिन के अरु भूलि गई रम्भा नृतकारी॥
मोहिके 'हाफिज़' धाय चलै सब ओर कहै मन मे य विचारी।
हाय य तान पड़ै जब कान रहै नहि ज्ञान औ ध्यान संभारी॥

(४)

कासो कहो मन की कुविथा अपनो तन आप जरानो परो।
खेशो बुजुर्ग अकारिब राह मे देखत खूब लजानो परो॥
बाकी मुहब्बत उल्फत में हमें 'हाफिज़' हाय बिकानो परो।
दिल रफ्त जे दस्त शुदा दिल मस्त अफसोस महा पछितानो परो॥

(५)

जा दिन ते यमुना तट वाहि बजावत बाँसुरी नेक निहारो।
होशम रफ्तन मांद बदस्त भरोस रहै दिन रैन तिहारो॥
'हाफिज' फिक्र कुदाम नुमायम् कोई उपाय चलै न हमारो।
हे सखि कोउ उपाव रचौ फिर बारक देखिय नन्द दुलारो॥

(६)

बन्शी बजी बलबे यमुना चलो चलिये सखी सब मिलके बहम।
तान बसी चूं नकशे नगी अब चैन नहीं क्षण पल बदिलम्॥
शर्मो हया कुल की तजिके करलो दर्शन चलि निज़ दे सनम्।
'हाफिज़' हाथ सो हाथ मिलाय के प्रीत करैं हिर्दै हम तुम॥

(७)

हर्गिज लाल किसी की नहीं सब हाफिज़ है तकसीर हमारी।
वक्ते विदा न किसी ने कहा हम साथ चलै कि रहैं बनवारी॥

सो कहते न बनी कछु हाय करें अब का ब्रजनारि गवाँरी।
देखि चले सो सब कहियो अब उद्धव जी तुम्हरे बलिहारी॥

कबित्त

(१)

फूल बिन बाग जैसे, वाणी बिन राग जैसे,
पानी बिन तड़ाग अरु रूप बिन अंग है।
धन बिन साज जैसे शोचे बिन काज जैसे,
राजा बिन राज जैसे नदी बिन तरंग है॥
एक अंगी प्रीति जैसे वेश्या बिन रीति जैसे,
प्रेम बिन मीत जैसे शोभा बिन रंग है।
प्यारी बिन रैन जैसे 'हाफिज' विचारि देखो,
शील बिन नैन अरु साधु बिन संग है॥

(२)

नारनी को शीलवान घरनी को धनवान,
करनी को ब्रत दान कहत जहान है।
रूपवान नारीनि की द्वारे ब्याह गारीनि की,
शीतल बयारिनो को तेजवान मान है॥
विष बुझो तीर बुरो वैद्‌बिन पीर बुरो
ताल बिन नीर अरु मौनी विद्यावान है।
रोगी बुरो तान बिन खग्ग खड्ग सार बिन,
'हाफिज' अधिक बुरो मित्र को पयान है॥

(३)

प्यारे जी वियोग में तिहारे चित चैन गयो,
भूलो खान पान सब मुरझाई छाई है।

घूमि घूमि प्रेम सों निहारिबे की गौन समै ।
तेरे हाय एक पल सुधि नहीं जाई है ॥
पंखहूं न दीने राम कैसे उड़ि मिलौ जाय,
'हाफिज' चलत अब कोऊ ना उपाई है ।
मिलिबो बिछुरी और मिलि के बिछुरि जैबो,
बिधना के वश हो तासो का बसाई है ।

नज़ीर

(१६३७)

नजीर अकबराबाद (आगरे) के रहने वाले थे । कुछ लोगो के कथनानुसार इनका नाम शेखवली मुहम्मद था किन्तु जिन्दगानी बे नजी के मत से उनका नाम मुहम्मद फर्रुख पाया जाता है । इनका जन्म कब कहां और किस मां के पेट से हुआ था इसका कुछ पता नहीं । इन्होंने किसी की शिष्यता नहीं की थी । इनकी सारी कवितायें कुल्लियाते नजीर में संग्रहित है । वास्तव में तो ये उर्दू के कवि थे किन्तु इनकी भाषा अधिकांश बोल चाल की हिन्दी है । इनका कविता काल लगभग सं० १६३७ के समझना चाहिए ।

कृष्ण का बाल चरित

यारो सुनोयह ऊध कन्हैया का बालपन ।
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन ॥
मोहन सुरूप कृत्य करैया का बालपन ।
बनबन के ग्वाल गऊ चरैया का बालपन ॥

ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥ १ ॥

ज़ाहिर में गो वः नन्द जसोदा के आप थे ।
वरना वह आपी माई थे औ आपी बाप थे ।
परदा में बालपन के यह उनके मिलाप थे ।
ज्योतिः स्वरूप कहते जिसे सो वः आप थे ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥२॥

उनको तो बालपन से न था काम कुछ ज़रा ।
संसार की जो रीत थी उसको रखा बजा ॥
मालिक थे वह तो आपी उन्हें बालपन से क्या ।
वां बालापन जवानी बुढ़ापा सब एक था ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥३॥

मालिक जो होवे उसको सभी ठाट या सरै ।
चाहे वह नंगे पाऊं फिरें या मुकुट धरै ॥
सब रूप है उसी के जो कुछ चाहे सो करे ।
चाहे जवां हो चाहे लड़कपन से मन भरै ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥४॥

होता है यों तो बालपन हर तिफल का भला ।
पर उनके बालपन में तो कुछ औरो भेद था ॥
इस भेद की भला जो किसी को खबर है क्या ।
क्या जाने अपने खेलने आये थे क्या कला ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥५॥

बाले हो बीरज राज जो दुनिया में आ गए।
लीला के लाख रंग तमाशे दिखा गए ॥
इस बालपन के रूप मे कितनो को भा गए ।
इक यह भी लहर थी कि जहां को जता गए ।
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ।६॥

राधा रमन के यारो अजब जाये गौर थे ।
लड़को मे वह कहां है जो कुछ उनमे तौर थे ॥
आपी वह प्रभू नाथ थे आपी वह दौर थे ।
उनके तो बालपन ही में तेवर कुछ और थे ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥७॥

पत्थर भी एकबार तो बन जाता मोम का ॥
उस रूप को गियानी जो कोइ देखता जो आ ।
दण्डौत ही वः करता माथा झुका झुका ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥८॥

परदा न बलपन का वः करते अगर जरा ।
क्या ताव थी जो कोई नजर भर के देखता ॥
झाड़ और पहाड़ देते सभी अपना सिर झुका ।
पर कौन जानता था जो कुछ उनका भेद था ॥
ऐसा था था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥६॥

मोहन मदन गोपाल करे व्यसन मन हरन ।
बलिहारी उनके नाम पर तेरा यः तन बदन ॥

गिरधारी नन्दलाल हरीनाथ गोबरधन ।
लाखों किये बनाव हज़ारों किये जतन ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहू मै कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥ ०॥

पैदा तो मुद्दतों में हुये श्याम श्री मुरार ।
गोकुल में आके नन्द के घर मे किया करार ॥
नन्द उनको देख होवे था जी जान से निसार ॥
पानी जसोदा पाती थी पानी को बार बार ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥११॥

जब तक की दूध पीते रहे ग्वाल बिरजराज ।
सबके गले में कठुले थे और सबके सिरताज ॥
सुन्दर जो नारियां थी वः करती थीं काम काज ।
रसिया का उन दिनों तो अजब रस का था मिजाज ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मै कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥१२॥

बद शक्ल से तो रो के सदा दूर हटते थे ।
और खूबरू को देख के हंस हंस चिपटते थे ॥
जिन नारियों से उनके ग़म व दर्द बटते थे ।
उनके तो दौड़ दौड़ गले से लिपटते थे ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥१३॥

अब घुटनियों का उनके मैं चलना बयां करूं ।
या मीठी बातें मुंह से निकलना बयां करूं ॥
या बालकों में इस तरह पलना बयां करूं ।

था गोदियों मे उनका मचलना बयां करूं ॥
ऐसा था बासुरी के बजेया का बालपन ।
क्या क्या कहू मै कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥१४॥

पाटी पकड़ के चलने लगे जब मदन गोपाल ।
धरती तमाम हो गई एक आन में निहाल ॥
वासुकि चरन छुवन को चले छोड़ कर पताल ।
आकाश पर भी धूम मची देख उनकी चाल ॥
ऐसा था बांसुरी के बजेया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया क बालपन ॥१५॥

थी उनकी चालकी तो अजब और चाल ढाल ।
पांओं मे घुंघरू बाजते सर पर कँडूले बाल ॥
चलते ठुमुक ठुमुक के तो वे डगमगाती चाल ।
थाम्हे कभी जसोदा कभी नन्द लें संभाल ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपान ।
क्या क्या कहूं मै कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥१६।

पहने झगा गले में जो व दखिनी चीर का ।
गहने में भर रहा गोया लड़का अमीर का ॥
जाता था होश देख के शोहा वजीर का ।
मैं किस तरह कहूँ इसे छोरा अहीर का ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया काब ालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥१७॥
जब पावों चलने लगे विहारी नवल किशोर ।
माखन उचक्के ठहरे मलाई दही के चोर ॥
मुंह हाथ दूध से भरे कपड़े भी सराबोर ।
डाला तमाम बृज को गलियों मे अपना शोर ॥

ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूं मै कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥१८॥

करने लगे यः धूम जो गिरधारी नन्द लाल।
इक आप और दूसरे साथ उनके ग्वाल बाल॥
माखन दही चुराने लगे सब के देख भाल।
दी अपने दूध चोरी की घर घर मे धूम डाल॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहू मै कृष्ण कन्हैया का बालपन॥१९॥

थे घर जो ग्वालनो के लगे घर से जा बजा।
जिस घर को खाली देखा उसी घर मे जा छिपा॥
माखन मलाई दूध जो पाया सो खा लिया।
कुछ खाया कुछ खराब किया कुछ गिरा दिया॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥२०॥

कोठी में होवे फिर तो उसी को ढंढोरना॥
मटका हो तो उसी मे भी जा मुख को बोरना॥
ऊँचा हो तो भी कन्धे पै चढ़ के न छोडना।
पहुँचा न हाथ तो उसे मुरली से फोड़ना॥
ऐसा था बासुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन या का बालपन॥२१॥

गर चोरी करते आ गई ग्वालन कोई वहाँ।
और उसने आ पकड़ लिया तो उससे बोले वाँ॥
मैं तो तेरे दही की उड़ाता था मक्खियां।
खाता नही मै उसको निकाले था चीटियां॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।

क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥२२॥

गर मारने को हाथ उठाती कोई ज़रा।
तो उसकी आंगिया फाड़ते घूसे लगा लगा ॥
चिल्लाते गाली देते मिचल जाते जा बजा।
हर तरह वां से भाग निकलते उड़ा छुड़ा ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥२३॥

गुस्से में कोई हाथ पकड़ती जो आनकर।
तो उसको वह स्वरूप दिखाते थे मुरलीधर ॥
जो आपी लाके धरती वह माखन कटोरी भर।
गुस्सा वह उनका आन मे जाता वहां उतर ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥२४॥

उनको तो देख ग्वालिने जो जान पाती थी।
घर में इसी बहाने से उनको बुलाती थीं ॥
जाहिर मे उनके हाँथ से वह गुल मचाती थी।
पर दे सब वह कृष्ण की बलिहारी जाती थीं ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥ २५ ॥

कहती थी दिल में दूध जो अब हम छिपायेंगे।
श्री कृष्ण इसी बहाने हमें मुंह दिखायेंगे ॥
और जो हमारे घर में यः माखन न पायेंगे।
तो उनको क्या गरज है वः काहे को आयेंगे ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥ २६ ॥

सब मिल जसोदा पास यह कहती थी आके बीर।
अब तो तुम्हारा कान्हा हुआ है बड़ा शरीर॥
देता है हमको गालियां और फाड़ता है चीर।
छोड़े दही न दूध न माखन मही न खीर॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मै कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ २७॥

माता जसोदा उनकी बहुत करतीं मिन्तियां।
और कान्ह को डरातीं उठा पन की सांटियां॥
तब कान्ह जी जसोदा से करते यही बयां।
तुम सच न मानो माता यह सारी है झूठियां॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मै कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ २८॥

माता कभी यह मुझको पकड़ कर ले जाती हैं।
औ गाने अपने साथ मुझे भी गवाती हैं॥
सब नाचती हैं आप मुझे भी नचाती हैं।
आपी तुम्हारे पास यः फरियादी आती हैं॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ २९॥

माता कभी यह मेरी छगुलिया छिपाती हैं।
जाता हूँ राह में तो मुझे छेड़े जाती हैं॥
आपी मुझे उठांती हैं आपी मनाती हैं।
मारो इन्हे यः मुझको बहुत सा सताती हैं।
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ ३०॥

इक रोज मुंह में कान्ह ने माखन छिपा लिया।

पूछा जसोदा ने तो वहीं मुंह बना दिया ॥
मुंह खोल तीन लोक का आलम दिखा दिया ।
इक आन मे दिखा दिया और फिर भुला दिया ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥ ३१ ॥

थे कान्ह जी तो नन्द जसोदा के घर के माह ।
मोहन नवल किशोर की थी सबके दिल में चाह ॥
उनको जो देखता था सो करता था वाह वाह ।
ऐसा तो बालपन न किसी का हुआ है आह ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥३२॥

सब मिलके यासे कृष्ण मुरारी की बालो जय ।
गोविन्द छैल कुंज बिहारी की बालो जय ॥
दधिचोर गोपीनाथ बिहारी की बोलो जय ।
तुम भी 'नजीर' कृष्ण बिहारी की बोलो जय ॥
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥३३॥

रोटी की प्रशंसा

जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियाँ ।
फूले नहीं बदन में समाती हैं रोटियाँ ॥
आंखे परी रूखों से लड़ाती हैं रोटियाँ ।
सीना ऊपर भी हाथ चलाती हैं रोटियाँ ॥
जितने मजे है सब यह देखती हैं रोटियाँ ॥ १ ॥

रोटी से जिसका नाक तलक पेट है भरा ।
करता है फेरे क्या ही उछल कूद जा बजा ॥

दीवार फाँद कर कोइ कोठा उछल गया।
ठट्ठा हंसी शराब सनम साकी इस सिवा।
सौ सौ तरह की धूम मचाता है रोटियां ॥ २ ॥

जिस जां पर हाड़ी चूल्हा तवा और तनूर है
खालिक की कुदरतो का उसी जा जहूर है।
चूल्हे के आगे आंच जो जलती हुजूर है ॥
जितने है नूर सब में यही खास नूर है ॥
इस नूर के सबब नज़र आतो है रोटियां ॥ ३ ॥

आंव तवं तनूर का जिस जा जवां पर नाम।
या चक्की चूल्हे का जहां गुलज़ार हो तमाम॥
वां सर झुकाकर कीजिए दण्डवत और सलाम।
इस वास्ते कि खास यह रोटी के है मुक़ाम।
पहिले इन्हीं मकानों मे आती है रोटियाँ ॥ ४ ॥

इन रोटियों के नूर से सब दिल है पूर पूर।
आटा नहीं है चलनी से छनछन गिरे हैं नूर ॥
पेड़ा हर एक इसको है बर्फी व मोतीचूर।
हरगिज़ किसी तरह न बुझे पेट का तनूर ॥
इस आग को मगर यह बुझाती है रोटियाँ ॥ ५ ।

पूछा किसी ने यह किसी कामिल फ़कीर से।
यह मेहरो माह हक ने बनाये हैं काहे को ॥
वह सुन के बोला बाबा तुझको खेर है।
हम तो चांद समझे न सूरज है जानते ॥
बाबा हमें तो यह नज़र आता है रोटियाँ ॥ ६ ।

फिर पूछा उसने कहिये यह है दिल का नूर क्या
इसके मुशाहिदे में है खुलता जहूर क्या ॥
बोला वह सुन के तेरा गया है शऊर क्या।

कश्फुल्कलूब और यह कश्फूल कबूर क्या ॥
जितने है कश्फ सब यह दिखाती हैं रोटियां ॥ ७ ॥

रोटी जब आई पेट में सो कैर खुल गए।
गुलजार फुले आखो मे और ऐश तुल गए॥
दो तरन वाले पेट में जब आके ढुल गए।
चौदह तरफ के जितने थे सब भेद खुलगए॥
यह कश्फ यह कमाल देखाती है रोटियां ॥ ८ ॥

रोटी न हो पेट मे तो कुछ जतन न हो।
मेले की सैर ख्वाहिशे बागो चमन न हो॥
भूखे गरीब दिल को खोदा से लगन न हो।
सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो॥
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियां ॥ ९ ॥

अब जिसके आगे मालपुए भरके थाल हैं।
पूरे भगत उन्हें कहो साहेब के लाल हैं॥
और जिनके आगे रोगनी और शीर माल हैं।
आरिफ वही हैं और वही साहेब कमाल है॥
पकी पकाइ अब जिन्हे आती हैं रोटियॉ ॥ १० ॥

कपड़े किसी के लाल हैं रोटी के वास्ते।
लम्बे किसी के बाल हैं रोटी के वास्ते॥
बांधे कोइ रूमाल है रोटी के वास्ते।
सब कश्फ और कमाल हैं रोटी के वास्ते॥
जितने हैं रूप सब यह दिखाती है रोटियां॥ ११ ॥

रोटी से नाचे प्यादा कवायद दिखा दिखा॥
असवार नाचे घोड़े को कावा लगा लगा॥
घुघुरू को बाधे पेक भी फिरता है नाचता।
और इस सिवा जो गौर से देखा जो जाबजा

सौ सौ तरह के नाच नचाती हैं रोटियां ॥ १२ ॥
रोटी के नांच तो हैं सभी खल्क में पड़े।
कुछ भांड़भंगेते यह नहो फिरते नाचते ॥
यह रंडियां जो नाचे हैं घुंघट को मुह पर ले
घुंघट न जानो दोस्तों तू जोनहार उसे ॥
इस परदे में यह अपने कमाती है रोटियां ॥ १३ ॥
दुनियां में अब बदी न कहीं और निकोई है।
या दुश्मनी वा दोस्ती या तुन्द खूई है ॥
कोई किसी का और किसी का न कोई है।
अब कोई है उसी का कि जिस हाथ कोई है
नौकर नफर गुलाम बनाती है रोटियां ॥ १४ ॥
रोटी का अब अजल से हमारा तो है खमीर
रूखी ही रोटी हक मे हमारे है शहदो शीर ॥
या पतली होवे मोटी खमीरी हो या फतीर।
गेहूं जुआर बाजरे की जैसी हो "नजीर" ॥
हमको तो सब तरह की खुश आती हैं रोटियां ॥१५॥

करीम बख्श

(१६४५)

करीम बख्श (करीम) कसबा मानिकपुर तहसील कुन्दई जिला प्रतापगढ़ के रहने वाले थे। ये बांकपुर में सदर कानूनगो थे। इनके पीर (गुरू) का नाम शाह मोहम्मदी अता था। नगमये मोहब्बत नाम की इनकी एक पुस्तक मैंने फारसी लिपि में देखी है। इसमें के लिखे हुए करीब २ सभी गाने हिंदी

के है। यह पुस्तक सं० १६४५ की छपी हुई है। अस्तु यही समय इनके कविता काल का भी समझना चाहिए। इनकी रचनाएं बहुत साधारण हुई है। उदाहरणतः इनके कुछ गाने नीचे दीये जाते हैं।

प्रभु—प्रताप

ऐ मेरे रब! पाप हरैया। संकट में किरपा के करैया॥
मेरे रहीम रहम करो साहेब। मेरे करीम करम करो साहेब॥
मुझ पापी का पाप छुड़ाओ। डूबत नैया पार लगाओ॥
झंझरि नाव पतवार पुराना। यह डर मोरे हिये समाना॥
जो तुम सुधि नहि लैहो मोरी। बैरि माझि मोहि दैहे बोरी॥
तुम्ही खलील को नार डकायो। पर्वत पर मूसा को चढ़ायो॥
ईसा को वह ज्ञान बतावा। मुये हुए को जासों जिलावा॥
युसुफ को बाजार बिकायो। प्रीत दियो याकूब रोवायो॥
दियो बैरि एक सग लगाये। जो सीधे पथसों बहकाये॥
देत दोहाई हौं अब तोरा। होहु सहाय विपत मा मोरा॥
ऐसी जून वियापी मोपर। कठिन काज छोड्यों हौं तोपर॥
आपन न्याव तुम्ही पर छाड़ा। लाद चलेगो जब बंजाड़ा॥
यह सब कुछ पर आस है हमकू। हिय पूरन बिसवास है हमकू॥
हमरो करनी सब बिसराई। देऔ बिगड़ो काज बनाई॥
देत तुम्ही औ दिलावत तुमही। मारो तुम्ही औ जिलावौ तुमही॥
सब कुछ तज 'करीम' हौ तोको। ध्यावों होय न जासों धोको॥

गाना

(१)

ना जानो सइयां सो का होय बतियां।
उनके मन की जुगत नहि सीखेऊँ,

यहै जिय सोच रहै दिन रतियां।
वहां न कोऊ को कोऊ पूछत,
सुन सुन हाल फटत है छतियां।
और सखी पिया अपने मिलन की,
करत 'करीम' है लाखन घतियाँ॥

(२)

कैसे तुम आ नैहरवा भुलानी।
सइयां का कहना कबहुं नहि मानी॥
काम कियो नित निज मन-मानी।
पिया की सुधि काहें बिसरायो।
गोरी का तोरे हिय में समाना॥
टेढ़ी चाल अजहूं तज मूरख।
चार दिना की तव जिन्दगानी॥
गुन ढग सो जो पिया को रिझावे।
'करीम' वही है सखी सयानी।

(३)

तुम्हे देखन को हिय है बहु व्याकुल।
कौन दिना तुम दरस देखै हो?
दिले मन चूं कबाब बरिश्तः शुदः।
अब मोहि जराय के का तुम पैहो।
अय जान जहां अज खान रोबी।
मेरे हीय सों निकल कहां तुम जैहो॥
दरीं रोज अगर न खलाल कुनी।
'करीम' तो कैसे न तुम पछतैहो।

फ़कीरुद्दीन

(१६५०)

कवि कहानजी धर्मसिंह ने साहित्य रत्नाकर नाम का एक सग्रह छपवाया है उसमें फ़कीरुद्दीन की एक कविता आई है जिसे मैं नीचे लिखता हूं। इस कविता के पढ़ने से मालूम होता है कि फकीरुद्दीन बम्बई प्रान्त के सूरत नगर के रहने वाले थे और इसमें अपने किसी विशेष घटना का परिचय दिया है। इनका कविता काल लग भग सं० १६५० के समझना चाहिए।

कवित्त

सूरत को सार गयो लोक को व्योहार गयो,
रोजगार डूब गयो दशा ऐसी आई है।
टूट गये साहूकार उठ गई धीर धार,
नहीं कोई किसी का यार बैरी सगा भाई है॥
खाने कूं जहर नाहि रहने कूं घर नाहि,
बात कहा कहूं यार सबी दुखदाई है।
कहत 'फकीरुद्दीन' सुनो हो चतुर जन,
टूट गये तो भी पक्क सूरती सिपाई हैं॥

तेग़ अली

(१६५०)

तेग़ अली का केवल एक बदमाश दर्पण नामक ग्रंथ देखने में आया है। ये काशी के किसी म्युनिसिपल स्कूल में अध्यापक थे और कुश्ती इत्यादि हिंदुस्थानी कसरतों के बड़े प्रेमी थे।

इनका खोला हुआ एक अखाड़ा अ ग भी नेलिया नाला मुहाल में मौजूद है। इनका कविता काल लगभग सं० १९५० वि० के समझना चाहिए।

बदमाश दर्पण से

(१)

आंख सुन्दर नाही यारन से लड़ावत बाट ऽ।
जहर क छूरी करेजा मे चलावत् बाट ऽ॥
सुरमा आंखों में नाही तू ई घुलावत् बाट ऽ।
बाढ़ दुतर्फी बिछुआ प चढ़ावत बाट ऽ॥
अत्तर देहि मे नाही ई तू लगावत बाट ऽ।
जहर के पानी में तरुआर बुझावत बाट ऽ॥
रोज कह जालऽ कि आईला से आवत बाट ऽ।
सात चौदऽ के ठेकाना तू लगावत् बाट ऽ॥
सच कहऽ बूटी कहां छानलऽ सिंघा राजा।
आज कल काहे न बैठक में तू आवत् बाट ऽ॥
तार में बूटी के मिल्लऽकि तुहे ले गेली।
लामे लामे जे बहुत सान बुझावत बाट ऽ॥
धै के कोदो तू करेजा पै दरलऽ बरबस।
ई हमन्नन के भला काहें मुआवत बाट ऽ॥
ई छलावा न रही पर ले बचा देवबऽन।
पिरथी मूड़े प तु काहे के उठावत बाट ऽ॥
रोज खोजीला नाही मिलत ऽ बुरा हो लच्ची।
"तेग़" के लटट्र मतिन काहे फिरावत बाट ऽ॥

(२)

चाई चकार चोर और नटखट तोरे बदे,

हो गेले सारे सैकड़न् चौपट तोरे बदे ।
देखीला केतने सारन से चटपट तोरे बदे,
जलसाई क अजोर हौ मरघट तोरे बदे ॥
बिन चुक चुकौले लोहू न छोड़ब तोहे रजा,
गोजा से बा कपार गयल फट तोरे बदे ॥
सिखली है एक फकीर से कुन्नन बनावे हम,
सोने का सज देइला छपरखट तोरे बदे ॥
गंगा के तीर दाल के मड़ई मे बहरी ओर,
मेला बाय एक भीर हो जमघट तोरे बदे ।
घर से नगर से जात कुटुम संगी भई से,
केसे भयल बिगार-न खटपट तोरे बदे ॥
रोईला रोज माटी पै माथा पटक पटक
लेईला जब कि रात के करवट तोरे बदे ॥
बुंदिया बसौंधी बर्फी बतासा ले आईला ।
धूरे के रसरी रामधै हम बट तोरे बदे ॥
जरदोजी जूता टोपी डुपट्टा बनारसी ।
सहुआ से लेहलीं आज रजा जट तोरे बदे ॥
घुइरले सारे छूरे मे तोहके और हम रजा ।
ढेउआ खरिच करीला खटाखट तोरे बदे ॥
बैठक मे बूटी छानऽ निराले मे आयके ।
रामधै लगल बा राम सेईं रट तोरे बदे ॥
कहली कि कहवा जालऽ छलावा बदल रजा ।
हंस के कहै जे सब बा बनावट तोरे बदे ॥
बच्छा हो क महल न होई पूछाऽ 'तेग' से ।
जैसन सजब वा रजवा छपरखट तोरे बदे ॥

———

सैयद अमीर अली "मीर"

(१६३०)

हिन्दी के आधुनिक मुसलमान कवियों में सैयद अमीर अली "मीर" का आसन सर्वोच्च है। ये मध्यप्रदेश के रत्न हैं इनका जन्म कार्त्तिक बदी २, सम्बत १६३० वि० में सागर मे हुआ। इनके पिता का नाम मीर रुस्तम अली था। इन दिनों ये छत्तीस गढ के अन्तर्गत उदयपुर राज्य मे पुलीस विभाग के सर्वोच्च कर्म्मचारी के पद की शोभा बढ़ा रहे हैं।

इनका स्वभाव बड़ा ही शान्त, मिलनसार, विनयी और अभिमान रहित है। हिंद और हिंदी से इनका बडा अनुराग है। इनके "स्वावलंबन" "देशी रोजगार" "स्वदेश प्रेम" "व्यापारोन्नति" आदि रचनाओं से यह बात भली भांति प्रमाणित हो जाता है। इन्हे प्रख्यात साहित्य संस्थाओं से साहित्य रत्न, काव्य रसाल आदि पदवियां प्राप्त हुई हैं। इनके बनाए कुछ ग्रंथों के नाम ये हैं—

बूढ़े का ब्योह, बच्चे का ब्याह, नीति दर्पण।

सदाचारी बालक, काव्य संग्रह, गद्य लेख माला! नीचे इनकी कविताओं के कुछ नमूने दिये जाते है—

प्रार्थना

सबसों मीर गरीब है, आप गरीब निवाज।
कोर कृपा कर फेरबी, वे दिन व सुख साज ॥ १ ॥

जान तुम्है करुणा अयन, कर करुणा युत बैन।
विनवहु करुणा करहु अब जासों पावहुँ चैन ॥२ ॥

दीन बन्धु तुम दीन मै तुम्हारो ही मुहताज ॥

टेक नाम की राखिए रहे दोउ की लाज ॥ ३ ॥
तुम तो दाता सुमति के, सुमति दीजिए मोहिं ।
जासो परहित करत मैं, भजत रहूँ नित तोहिं॥ ४ ॥
जाचे बिन फल देहु जो, दाता अहौ उदार ।
करम देखि त्यों तारिहौ, तो कैसे करतार ॥ ५ ॥
भटक्यो मृग जल मे फिर्‌यो अब भ्रम भागी मोर ।
व्यर्थ आस तजि लीन्ह गह मीर भरोसो तोर ॥६॥
जोलौं द्रवहु न नाथ तुम तौलो द्रवहि न और ।
और कहा कहु मिलतना ठाढ़ भये को ठौर ॥ ७ ॥

अन्योक्ति पंचक

(१)

मैना तू बन वासिनी, परी पींजरे आनि ।
जान देवगति ताहि में, रहे शान्त सुख मान ॥
रहे शान्त सुख मान बान कोमल तें अपनी ।
सब पच्छिन सरदार तोंहि कवि कोविद बरनी ॥
कहैं 'मीर' कवि नित्य बोलती मधुरे बैना ।
तोभी तुझको धन्य, बनी तू अजहूं मैना ॥

(२)

तोता तू पकड़ा गया जब था निपट नदान ।
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया तौभी रहा अजान ॥
तौ भी रहा अजान ज्ञान का मर्म न पाया ।
जीवन पर के हाथ सौंप निज घर बिसराया ॥
कहैं "मीर" समुझाय, हाय ! तू अब लों सोता ॥
चेता नहिं जो आप किया क्या पढ़ के तोता ॥

(३)

जाने कीन्हो शमन है, मत्त मतंग न मान।
हाय दैव वश सिंह सो, पर्यो पींजरे आन॥
पर्यो पींजरे आन श्वान के गन ढिग भूंकै।
विहसै ससा सियार कान पे आके कूकैं।
'मीर' बात है सत्य लोक ये कहिगे स्याने।
का पै कैसो समय, कबै परिहै को जाने॥

(४)

कैदी होने के प्रथम था अलि "मीर" स्वतंत्र।
उसे पवन ने छल लिया कहके मोहन मंत्र॥
कहके मोहन मंत्र तंत्र सा फिर कुछ करके।
उसे गई ले खींच पासमें गहरे सर के॥
पड़ा प्रेम मे अचल वहां लकड़ी का भेदी।
था जो कोमल कमल बनाया उसने कैदी॥

(५)

बगला बैठा ध्यान में प्रातः जलके तीर
मानो तपसी तप करे मलकर भस्म शरीर।
मलकर भस्म शरीर: तीर जब देखी मछली।
कहै "मीर" असि चोंच समूची फौरन निगली।
फिर भी आवै शरण बैर जो तजके अगला।
उनके भी तू प्राण हरे, रे! छी! छी! बगला॥

आज और कल

दया सिन्धु की दया प्राप्त कर हुए अगर तु धन शाली।
बनो विनत पाओगे शोभा जैसी अली फल वाली॥

महालसी होकर हे भाई कभी न अपयश सिर लेना।
कल की बात त्याग शुभ कृति में दान आज ही दे देना॥
यदि विचार के प्रौढ़ पने से न्यायाधिप का पद पाओ।
तो तुम हंस न्याय की उपमा सच्ची करके दिखलाओ॥
जब तक हो अभियोग सशंकित तब तक पातक से डरना।
आज रोक कर उस निर्णय को कल निश्चय करके करना॥
किसी कला मे कुशल बने तुम अथवा विद्याके भंडार।
तो कल्पद्रुम की समता कर करना लोगों का उपकार॥
होना तब तक शान्त कभी ना-होना-जब तक सुखी समाज।
कल का मन मे ध्यान न लाना सीख उसे सिखलाना आज॥
बड़ा समझ कर अगर किसी ने कुछ भी तुमसे लिया उधार।
किसी हेतु से दिया न तुमको तो तुम रहना बने उदार॥
जो कल देने कहता है तो हित घृत में क्यों आवे आंच।
आज उसे ना कभी सताना कलही करना उसको जांच॥
अपना जो अनुकूल मित्र हो करै दोष तो जाना भूल।
लेकिन उस पर लक्ष्य चाहिए जो रहता हरदम प्रतिकूल॥
छलबल कौशल से यदि वश हो तो फिर रखना उसे सम्भाल।
बदला कल पर नहीं छोड़ना लेना देखो आज निकाल॥
बुद्धि दैव ने दी है हमको धन्यवाद दे उसको लक्ष।
हित अनहित अपना पहिचाने भावी भूत और प्रत्यक्ष॥
कहै कोई कुछ होगा जिससे कलह पाप आदिक उत्पात।
सुनकर बात आज तो उसका नित्य कहो कल उससे तात॥
हाथ पांव में जब तक बल है आंखों में है तेज प्रकाश।
श्रवण शक्ति है बुद्धि उपस्थित मन जब तक न हुआ निराश॥
दान धर्म उपकार आदि का तब तक करलो सग्रह साज।
क्या जाने कल रही न कल तो क्यों जाने देते हो आज॥

सब कामों का समय नियत है कहते हैं ऐसा धीमान।
बोते हैं लुनते फिर जैसे समय देखकर चतुर किसान ॥
आज उचित करना है जिसका करो आज उसको धरधीर।
कल का जो हो काम आज क्यों ? कल ही करना उसको 'मीर' ॥८५

संध्या

जब क्षितिज के गर्भ में छिप भास्कर प्रतिभा गई।
तब प्रतीची व्योम में आकर अरुणिमा छा गई ॥
देख कर उसकी प्रभा को यों उठी जी में तरंग।
छोड़ जाते हैं बड़े जन अन्त यश अपना अभंग ॥१॥

भानु तो चलता हुआ लेकिन प्रभाली रह गई।
रम गया जोगी कहीं है खाक खाली रह गई ॥
रात को दिन से मिलाने आ गई सन्ध्या सदेह।
हां सखी-सम्बोध से है बर-बधू मिलते सनेह ॥२॥

यह अरुणिमा भासनी मानो निशा की सहचरी।
देख कर रवि का पराभव हंस रहे मुख से भरी ॥
कह रही जग से निरातम रात का है यह प्रताप।
कुजन पहले आपको सूचित किया करते अपाप ॥३॥

रात ने पाया विजय जम केतु यह फहरा रहा !
या उसी के राग का है सिन्धु यह लहरा रहा ॥
छिप गया सूरज तदपि है कुछ प्रभा छाई अभी।
न्यायी नृपति के बाद भी जाता न उसका यश सभी ॥४॥

पूर्व से पहले प्रकाशित थी हुई पश्चिम दिशा।
हाय अब उस ओर से दौड़ी चली आती निशा ॥
मूंद ली आंखे कमल ने देख कर तमका विकास।
मौनही रहते सुजन है दुर्जनो को देख पास ॥५॥

है प्रतीची ने अरुण पट प्रेम से धारण किया ।
हो गया अन्दाज कुदरत ने बदल परदा दिया ॥
घट चला आलोक अब बढ़ने लगा है अन्धकार ।
हा प्रतीची को निगल जावे न प्राची एक बार ॥६॥

उल्लुओं चिमगादड़ों की देखलो अब बन पड़ी ।
निशि समागम से खुशी है जार चोरो को बड़ी ॥
एक दो करके चमकने अब लगे तारे तमाम ।
होता कुपूतो से नही है वेश कोई नेक नाम ॥७॥

देखते थे सब अभी तो फिर कहां वह छिप गई ।
अन्त सबकी तरह निर्जीव संध्या भी हुई ॥
'मोर' चुपके हो रहो अब रात का है अन्धराज ।
फिर उदय होगा प्रभाकर फिर सजेगा साज बाज ॥८॥

सैय्यद छेदाशाह

(१६३७–१६७४)

कानपुर जिला मे पौहार नामक एक गाँव में श्री सैय्यद गजनफरशाह अंतिम यवन--सम्राट के शासन काल में एक प्रतिष्ठित क़ाज़ी हो चुके हैं सैय्यद छेदाशाह का जन्म इन्ही के वंश में सं० १६३७ वि० में हुआ था । इनके पिता का नाम सैय्यद जाफर शाह है जो अब तक जीवित हैं और उसी पौहार नामक गाव में रहते हैं ।

सैय्यद छेदाशाह जब पांच वर्ष के हुए तो इनके पिता ने इनका विद्यारंभ कराया । बहुत दिनों तक ये घर पर ही हिन्दी, उर्दू और फारसी का अभ्यास करते रहे । इसके बाद

अपने गाँव के निकटवर्ती नर्वल टाउन पाठशाला में भर्ती हो गए और १५ वर्ष की उमर में हिन्दी मिडिल की परीक्षा पास की। इसके बाद शाहजी ने घर पर ही अरबी फारसी अंगरेजी, बंगला, मरहठी संस्कृत आदि भाषाओं का थोडा बहुत अध्ययन किया। आरंभ से ही हिन्दी पाठशाला में शिक्षा पाने के कारण शाहजी का हिन्दी पर विशेष अनुराग हो गया था। रामायण तथा रामचंद्रिका के प्रति आपका विशेष प्रेम था, संवत १९६० में साहित्य का सांगोपांग अध्ययन कर आपने काव्य परीक्षा पास की, और उसी समय से 'रसिक मित्र,''रसिक रहस्य 'रसिक लहरी' ''काव्य सुधानिधि, 'कवीद्रं वाटिका ''प्रियंवदा,' आदि तत्कालीन हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में निकलने वाली समस्याओं की पूर्ति करने लगे। अपनी सुंदर समस्या पूर्ति के कारण उस समय के कवि समुदाय में आपकी अच्छी ख्याति थी।

हिन्दी मिडिल की परीक्षा पास करने के बाद शाहजी जीवन निर्वाह के लिये कुछ दिनों तक शिक्षक का कार्य करते रहे फिर खडवा में रेवन्यू इंसपेक्टर हो गए। परन्तु ईश्वर की इच्छा अधिक दिनों तक आपको इस पद पर रखने की नहीं थी। आपके पिता को इसी समय एकाएक मोतियाबिंद हो गया और वे नेत्र विहीन हो गए अस्तु अब गृहस्थी का सारा भार शाहजी के ही सिर आ पड़ा। आपने अपनी नौकरी से इस्तीफा देकर घर पर ही वैद्यक का अभ्यास करना आरंभ किया। इसमें आपको पूरी सफलता प्राप्त हुई। आपकी उत्तम चिकित्सा को देखकर तत्कालीन अनेक सरकारी अफसरों ने आपकी प्रशंसा की।

खंडवा में श्री शाहजी की कवित्व शक्ति का विशेष रूप से

प्रकाश हो चुका था। जिन दिनों आप वहां रेवन्यू इंसपेक्टर के पद पर थे उन दिनों कविवर श्री जगन्नाथ प्रसाद।जी 'भानु' तथा श्री चंपालाल जी "सुधाकर" के सुयोग से एक भानु कवि-समाज की स्थापना हुई थी, इस कवि समाज के मंत्री श्री शाहजी ही थे यहां पर आपको अपनी कवित्व शक्ति को स्फुरित करने के लिए अच्छा सुयोग मिला। कवि समाज के एक वार्षिकोत्सव पर शाह जी ने अपने एक कवित्त द्वारा 'भानुजी' की बड़ी अच्छी प्रशंसा लिखी वह कवित्त यह है।

कवित्त

आम में न जाम में न जामुन ललाम में
न दाड़िम बदाम में न मिसरी सुखानी में।
ऊख में मयूख में न रसदार रूख में
न सुघरे पियूख में न नारीकेल पानी में॥
छीर में न खीर में न खाड़ पड़े नरि में
न चंदन उसीर में न पूरी कंद सानी में।
"शाह" मेरी जान में न ऐसो स्वाद आन में
सु जैसो गुरु भानु जू की मोद भरी बानी में॥

नौकरी छोड़ने के बाद घर पर शाहजी वैद्यक का भी अभ्यास करते थे और साहित्य सेवा भी। इसी समय आप की प्रशंसा सुनकर और आपकी प्रतिभा पर मुग्ध हो कर रीवां के बारी नामक गाँवके निवासी प्रसिद्ध कवि और रईस श्री गोस्वामी भोलानाथ लाल 'नाथ' ने सांग्रह आपको अपने यहां बुला लिया। शाहजी के प्रयत्न से बारी गांव में भी एक कवि समाज का आयोजन हुआ जिसके उपसभापति का स्थान आप ही को मिला था। अनेक धुरंधर कवियों की इच्छा

से कवि समाज द्वारा आप को साहित्येंद्र की उपाधि भी मिली थी।

थोड़े दिनों के बाद गोस्वामी जी की मृत्यु हो गई। तब शाहजी जब्बलपुर चले आए और वहाँ के कवि समाज में योग देने लगे। अभी तक शाहजी "छेदाशाह" के नाम से समस्या पूर्ति तथा कविताएं किया करते थे तत्कालीन श्री कुंअर देव नारायण सिंह जू "देव" ने छेदा नाम कर्ण—कटु समझ कर आपसे केवल शाह नाम से समस्याओं की पूर्ति करने का आग्रह किया तबसे आप बराबर शाह उपनाम से ही पद्यों की रचना करते रहे।

विद्वान सज्जन शाह जी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। एक बार जब वे प्रयाग के फूलपुर गांव की पाठशाला में टीचर थे, वहां की पंडित मंडली में किसी धार्मिक प्रसंग पर एक बहुत बड़ा वाद बिवाद खड़ा हो गया अंत में न्यायतः शाहजी की ही जीत हुई। इस पर आपको उदार पंडित न्याय कर्त्ताओं की ओर से आदर पूर्वक "गीता" तथा "पंडित" की उपाधि मिली।

एकबार शाह जी की कबिता पर मुग्ध होकर प्रयाग निवासी श्री पं० राधाकान्त जी मालवीय, पं० मदन मोहन मालवीय के पितामह ने उन्हे एक अच्छी पुस्तक उपहार स्वरूप प्रदान की थी। तत्कालीन विद्वानो में आप की कबिताओं का विशेष आदर था। एक सज्जन ने आप की प्रशंसा में निम्न लिखित दोहा कहा है।

छेदा शाह सुकाव्य में, है प्रिय परम प्रवीन।
ता मुख से जो सीखिहै, ह्वै है कवी अकीन ?॥

शाहजी बड़े सरल स्वभावके व्यक्ति थे। आपकी रहन

सहन बहुत सादी थी। अपने मीठे वचन के कारण आप सब के प्रेम—भाजन हो गए थे। दीन दुखियों की दशा देख कर आपको मर्म्मान्तिक पीड़ा होती थी। असहायों की सेवा के लिये आप सर्व्वदा तत्पर रहते थे। दुःख और सुख दोनों ही अवसरों पर आप एक सा रहते थे, कभी किसी अभाव के कारण आपका चित्त अशान्त नहीं हुआ। आप बड़े हंस मुख और शान्ति प्रिय मनुष्य थे। धर्मिक बातों में आपके विचार बड़े उदार थे। धर्म्म सम्बन्धी बनावटी ढोंग भारी बातों से दूर रह कर आप अपनी आत्मा के विचारानुसार धर्म्म के वास्तविक तत्वों का ग्रहण करते थे। मुसलमान होते हुए भी शाह जी की हिंदू धर्म की अनेक बातों पर बड़ी श्रद्धा थी। आप कृष्ण के बड़े भक्त थे। कृष्ण गुणानुवाद में रचित पद्यों को पढ़ पढ़ कर आप विह्वल हो जाया करते थे। आपके हिन्दुओं जैसे आचार विचार और कृष्ण की परम भक्ति देख प्रयाग के अनेक पंडितों ने आपको 'पंडित' की पुनीत उपाधि से सम्मानित किया था।

सं०१६७४ वि० में शाह जी आमवात रोग से अत्यंत पीड़ित हुए और इसी रोग की चपेट में पौषमास के कृष्ण पक्ष में (सन १६१७ ई) आप कृष्ण लोक के पथिक हुए। शाह जी की चार संताने है जिनमें से ३ कन्याए और १ पुत्र है जिनका नाम सैय्यद केशरीशाह है। ये भी अपने पिता के समान ही सरल चित्त और कविता प्रेमी है। जब तब कुछ लिखने का प्रयास भी करते हैं संभव है कालपाकर अपने पिता के समान ही सुकवि हो जाय। इस समय ये अध्यापन का कार्य्य करते हैं।

मृत्यु से कुछ दिन पहले शाह जी ने "शान्ति सरोवर तथा" राष्ट्रीय स्वराज्य गीत "नामकी दो पुस्तकें लिखी थीं जो

अभी तक अ प्रकाशित हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त शाहजी ने अनेक अन्य पुस्तकें भी लिखी थी जिन के नाम क्रमशः नीचे दिये जाते है। (१) ज्ञानोपदेश शतक (२) पुरुषार्थ प्रकाश (३) क्षत्रिय भेट (४) काव्य शिक्षा सटीक ३ भाग (५) श्री कान्य कुब्ज पुष्पांजलि (६) भक्ति पंचाशिका (७) करुणा बत्तीसी (८) हरगंगा रामायण सात काण्ड (६) काव्यशिक्षा सटीक १२ भाग (१०) गंगा पंचाशिका (११) श्री कृष्ण पंचाशिका (१२) मारकंडय बंशावली (१३) आनंद प्रकाश (१४) पंडा पचीसी (१५) कुन्ती का संदेशा (१६) विदुषी बाला काव्य (१७) बाबा काव्य (१८) नीति (१६) क्षत्रिय माला (२०) टीका भगवद्गीता (आत्मबोध) (२१) नवरस काव्य संग्रह (२२) शोक प्रकाश(२३)लव—कुश बीरता।

शाहजी की उपरोक्त रचित पुस्तकों मैं से आरंभ की पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। शेष पुस्तकें अप्रकाशित पड़ी है। मैने इन पुस्तकों में पुरुषार्थ प्रकाश के अतिरिक्त और कोई पुस्तक नही देखी है। नीचे आपकी कुछ रचनाएं दी जाती हैं:—

सवैया

(१)

कासों कहौं को सुनै समुझै कछु और ही भांति दिसै समयो है।
आवतो नाकहि मोहिं अजौं भ्रमलावतो आचरजो उदयो है॥
शाह धौं कौन सों योग जुरयो ततकाल परयो इमि हाल नयो है।
लाल घनो न बनो मन रागी अहो मिलि श्याम सों स्वेत गयो है॥

(२)

थित देखत ही बहु भायन सों परतो करि पायन[२] [१]चांयन आयकै।
पुनि छूंछ दिखावतो पेट खलाय डुलावतो पूँछ विमोह जनाय कै॥

कहि शाह सदा सिर सूघतो प्यार सों जार लगातन दीनता छाय कै।
मुख चाटतो है फल और कहा खलश्वान सों पैहो सनेह बढ़ाय कै॥

(३)

ललकै बिन देखे लखे पुलकै शुचि प्रीति प्रतीति दिपैदृग जोत है।
गुण मंडित मंजु प्रशंसित पंडित दिव्य अखडित ज्ञान उदोत है॥
मृदुबैन सुधा समशाह भनै जे गन वसुधा को सदा नितगोत है।
अस सज्जन संत महंतन सो निलिवो बड़ी भागही सो कबौं होत है॥

(४)

लहि दैव: संयोग दुकाल परे प्रण पालक शाह बड़े कुल वारे।
सहि संकट लंघन साधि अनेक बचावन को निज प्राण पियारे॥
ग्रह फेर तें मानसरोवर को तजि मोतिन को मन आसरो धारे।
छिछरे छिछरंहि तलैयन।में दिन काटत हैं सुमराल विचारे॥

(५)

समुझे बिन आशय। केते ।महाशय सज्जन। सभ्य कहावत है।
कहि शाह दशा लखि भारत की वश आरत आंसु गिरावत हैं।
प छुदाम के नाम ही पी कै मठा अस कानन आंगुरी ।नावत हैं।
मुख बावन हूंकर और कहा कबों कूकर कौर न पावत हैं॥

(६)

बपुरे विधि जावस हाय कुलाल सों अंड कटाह बनवाते हैं।
हरि जू अवतारन धारन माहि मुहुर्मुहु संकट पावते हैं॥
शिव मांगत भीख कपार लिये नभ चक्कर भानु लगावते हैं।
हमहूं परि हाथ में शाह सदा तेहि कर्म को माथ नवावते हैं॥

कवित्त

(१)

एरे । ऋतुराज धन्य रावरो समाज
साज सुखमा अनंत दिग अंत लो बिहारी है।

कुसुमित पल्लवित मंजुल प्रसून पुंज
कुंजवन रम्यता पे शाह बलिहारी है ॥
ग्रीषम लगत बंक किंशुक प्रसूनन की
लालिमा के ऊपर यों कालिमा निहारी है।
मानों भौरं झुंड पावक में पैठि २ करत
वियोग भक्ति प्रगट तिहारी है ॥

(२)

सम्यक सजीलो रम्य रहस रसीलो रच्यो
रंग २ साज की अतोल झलकन पे।
मंजुल बदन चंद्र चंद्रवत कान्ति पुंज।
चिर श्रम संकुल कपोल पलकन पे ॥
हेरनि हंसौ है भौहैं फेरनि चलाँकी बांकी
शाह गनि लोल मृदु बोल ललकन पै।
सुरभि सकैना रह्यो उरभि रंगीलो मन,
बाँकुरे बिहारी की अमोल अलकन पै।

(३)

गरल कलंक सिंधु पंक अंक छिद्र तम राहु
रद मृग मद मानभ धँसी रहै ॥
काहू मन माहीं महि छांहीं और नाहीं
कछु काहू मते राम श्याम मूरति लसी रहै।
मेरे जान विरचि विरंचि आदि उडु वृंद
चन्द्रगादि पाछे आछे यों मति फँसी रहै ॥
शेष जो मसालो बचो शाह धरि दीन्हो
तामें ताही की शशी में मसी संतत बसी रहै।

(४)

दाड़िम खुलन छीनी कुंद की फुलन छीनी

हीरा की झलन छीनी ओप मुकरान की ।
बीजुरी चमक छीनी जुगनू दमक छीनी
मोतिन झमक छीनी सान खडगान की ॥
शोभा की शान छीनी कंचन की खान छीनी
जोति शशिभान छीनी छवि मुसकान की ।
शाह सुख पेटी सब सुखमा लपेटी रति
रति की उपेटी भेटी बेटी वृषभान की ॥

(५)

जसुदा दुहाई तोरि भाखहुँ न राई झूंठ
करत कन्हाई अब दूंद निशि दिन है ।
ग्वालन लिवाई कभुं घेर मग जाई कहैं
दान कछुलाई कितु आई दधि बिन है ॥
नरम कलाई कभुं धरि मसकाई कबौ
बोली सुहराई कहैं काह तोरे हिन है ।
अबति खिसाई अति करौं काह माई मोहिं
परत लखाई वृज रहनो कठिन है ॥

(४)

वकि २ अली तुम खाली न मगज करौ
खैहोनतु गाली मेरी टेव बलिहारी है ।
एक बार कहौ कि हजार बार कहौं शाह
विनहिं जराये हाय छाती जलिहारी है ॥
लाख बात ताख धरौ करौ पनसाख दूरि
और को सिखाओ देखी केती छविहारी है ।
मायदेवे गारी चहै वाप दें निकारी
पर साँवरे बिहारी पर तन बलिहारी है ॥

॥ इति ॥

परिशिष्ट (क)

नीचे कुछ ऐसे कवियों की संक्षिप्त जीवनवृत्ति दी जाती है जिनके कवि होने का प्रमाण तो मिलता है परन्तु उनकी कविताएं मेरे देखने में नहीं आई हैं।

मसऊद—सुलेमान के पौत्र और साद के पुत्र थे। ये हिंदी भाषा के अच्छे विद्वान और कवि थे। इनका कविता काल सं० ११८० के लगभग समझना चाहिए। इन्होंने दो दीवान फारसी के और एक दीवान हिंदी का बनाया था।

कुतुबअली -ने हिंदी में छंदोबद्ध अल्हनपुर के महाराज सोलंकी सिद्धराज जयसिंह देव को इस विषय का प्रार्थना पत्र भेजा था कि लोगों ने उसकी मसजिद खोद डाली। महाराज ने मसजिद फिर से बनवा दी। इन महाराज का राजत्व काल सं० ११५० से १२०० पर्यन्त रहा। अस्तु, यही समय इस कवि का भी समझना चाहिए।

अकरम फैज – डीडावाणा, मारवाड़ के रहने वाले थे। सं० १२०५ से १२५८ तक वर्तमाल काव्य की और वृत्तरत्नाकर की रचना की। इनके आश्रयदाता महाराज माधवसिंह जयपुर नरेश थे। इनका जन्मकाल सं० ११७६ में सुनने में आया है।

मुल्ला दाऊद–खुसरो के समकालीन थे सुलतान फिरोज तुगलक के राजत्वकाल में मुल्ला दाऊद ने 'नूरक और चंदा" के प्रेम का हिंदी काव्य बनाया था, जिसको उस समय के लोग बड़े प्रेम से पढ़ते थे, और शेख "तकीउद्दीन" उपदेशक दिल्ली की जामा मसजिद में व्याख्यान देते हुए उसके

दोहा और कवित्त पढकर लोगो को मुग्ध कर देता था। एक दिन किसी मौलवी ने कहा कि मसजिद में यह हिंदी कविता क्यो पढी जाती है तो शेख ने कहा कि इस के भाव सब सूफ़ियों और कुरान की शिक्षाओं से मिलते हुए हैं । इस से यह सिद्ध होता हैं कि हिदी की कविता उस समय मुसलमानों में खूब समझी जाने लगी थी। इनका कविता काल सं० १२६० वि० के लगभग है।

फैजी—सम्राट अकबर के दरबारी थे इन्होंने फुटकर रचना की है। इनकी मृत्यु सं० १६५२ वि० में हुई इनका कविता काल सं० १६०० वि० है।

फहीम—शेख अबुलफजल के छोटे भाई थे। इनका रचना काल लगभग सं० १६०७ के कहा जाता है। इन्होंने स्फुट दोहे लिखे हैं।

इब्राहीम आदिलशाह—बीजापूर के राजा के लिये इन्होंने रस और रागों पर नौरस नामक एक ग्रंथ बनाया था जिस की तारीफ जहूर ने की है। इनका रचना काल सं० १६०८ के लगभग समझना चाहिए।

इब्राहिम सैयद, पिहानी, जिला हरदोई के रहने वाले थे। ये कादिर कवि के गुरु थे। इनका रचना सम्वत १६५१ के करीब है।

काजीकदम, सन्त समप्रदाय के थे इन्होंने साखियाँ लिखी है इनका रचना काल सं० १७०६ से प्रथम है।

दराशाह—दिल्ली के प्रसिद्ध सम्राट शाहजहां के ज्तेष्ठ पुत्र थे। इन्होंने दो ग्रंथ बनाये हैं,—(१) दोहास्तव संग्रह और (२) सार संग्रह। ये दोनो ही अब तक देखने में नही

आये । इनका रचना काल सम्वत १७१० के लगभग है। इनकी मृत्यु सं० १७१६ वि० मे हुई ।

दानिशमन्दखां—औरंगजेब के दरबारी थे। इन्होंने स्फुट छन्द बनाये हैं। रचना काल सम्वत १७३७ के लगभग है।

आसिफखां—का रचना काल सं० १७३८ है।

करीम–का रचना काल १७५४ के पूर्व है इनका नाम 'सूदन' ने लिखा है ।

याकूबखां ने रसिकप्रिया की टीका की है और रस भूषण नामक अलंकार का एक ग्रंथ बनाया है । इनका कविता काल १७७५ वि० है।

रहीम—का कविता काल १७८० के पूर्व है इन्होंने स्फुट रचनाये की है।

युसुफखां ने सतसई और रसिक प्रिया की टीका लिखी है। इनका जन्म सम्वत १७६१ और कविता काल सम्वत १८२० है।

मीर अहमद विलग्राम के रहने वाले थे। इन्होंने स्फुट छन्द लिखे। इनका रचना काल सम्वत १८०० के लगभग है।

किशवर अली – ने सार चन्द्रिका नामक एक ग्रंथ बनाया।

अकबर खां—अजयगढ के रहने वाले थे। इनका कविता काल लगभग १८८६ के हैं। इन्होंने एक योग दर्पण सार नामक वैद्यक पद्य ग्रंथ लिखा था।

अनवरखां—पठान सुलतान के भाई थे । इनका कविता काल लगभग १७८५ के है। इन्होंने अनवर चन्द्रिका नाम से विहारी सतसई की एक टीका लिखी है।

आजमखां—दिल्ली के रहने वाले थे। इन्होंने सं० १७८६ में दिल्लीश्वर मुहम्मदशाह की आज्ञा से शृंगार दर्पण नामक एक नाइका भेद का पुस्तक लिखी थी।

अब्दुलजलील-बिलग्राम के रहने वाले थे। ये दिल्लीश्वर औरंगजेब के दरबारी थे। इनका जन्म सं० १७३८ में हुआ था।

परिशिष्ट (ख)

अब कुछ ऐसे मुसलमान कवियों की कविताएं नीचे दी जाती है जिनकी कविताएं मुझे मिली है परन्तु समय अज्ञात है।

अख्तर

(ठुमरी भैरवी)

सैंया जाओ जाओ मै नहि बोलती देखी प्रीत तिहारी।
'अख्तर' लाख करो तुम विनती, चुलया के बद नहीं मैं खोलती ॥

अजब रंग

सैयां मोरे बाला जोबन रंग जाय हो !
'अजब रंग' पिया पिया तोरे अनूठी मार रंगा मोहे न गुहार हो।
हम जो कहे पिया मानही रे बहुरिया हमारी के उनहि साथी सहाय हो ॥

अजमत

(होली-पोलू)

देखो देखो री होरी को खिलैया ।
निपट निलाज लाज नहि दैया ॥

झुनुक झुनुक पद घूंघर बजावत।
नाचत ताथई थई तथई ताथइया ॥
दई गारी मारी पिचकारी—
चुनर फार डारी सारी कन्हैया ॥
बरजोरी मोरी बहियां मरोरी।
सारी रंग बोरी दधि की मलैया ॥
परबस हूँ मैं आन फसी हूँ।
पिय 'अजमत' मोसे करत हंसैया ॥

अजमेरी

वैदुल्ला सरीफ अल्ला अमी कुदरत
रट दूसरो कीन्हो रसूल जगत सुहाग
आप करतार कर सूत हैदर दियो नबीको ॥
तुम कर बसी सुधारो उमद को
दीन भजब तुम मदीन इलम आली
वहां हसन हुसैन दोऊ करत सेवा बंदगी ॥
हक आखदीन आख दसा मूद वाकर
जाफर काज मरजात की हकीत को न
कौतक वादी न अंश करा आश पूरण मे
हदी महम्मद हादी रदनुमा ॥

अजीज दीन

पिय के संग एरी नार चौसर क्यों नहि खेले
इस चौसर का निरट सार जोबना यह दिन है तिन चार
जो जीते तो पिय संग जीते जो हारे तो रहे पिय लार
तेरी तो सब तरह जीत है जीते हेत कर सोच विचार

आप तू अड़ी चौवग चले है कर धोधन रार।
जब छक्के पजे छूट जावेंगे तेरे तब क्या करैगो खेलार॥
आठ जाम इनकी सुध राखो यह जो खुले दस द्वार।
तेरे भलाई सजी मै प्यारी किसमे नरद मारो दश हैं द्वार॥
और पाँच तीस है इन पनरे को निहार।
चौदह भवन तब ही खुले तोकौ जब तै इनको संवाँर॥
ग्रीषम भरि रित में प्यास बुझावे दधो केऊ बोवार।
नव सिद्ध करि रिद्ध सिद्ध होय तवाई जो तू तजै अहंकार
वारा है वार आरा है पेड़ा और चालिस झार।
तू चल गुरु की बताई चाल पै याहिते उतरोगी पार॥
अब तू रंग निकार रंगि रहि ज्यो उन करत करार।
जाको जाको सत रहे सो लहै पियको क्यों न करे पियको प्यार
अब कुछ पासो पे पास हाथ एकन के मुक्तार।
वाहिको कछु और आवे कछु और पाहि ते ना वार॥
ऊपर चाल कर होत सुजे हे हम के क ह मत डार।
जुग जग जीव अजीज दीन ऊपर उठना है एक वार॥

अफ़सोस

अफसोस लखनऊ के रहने वाले थे।

(होली खम्माच)

का संग फाग माचाऊँगी कुब्जा संग गिरधारी रहत हैं।
असुंअन को सखि रंग बनायो, दोउ नैना पिचकारो रहत हैं॥
विरह में कल न परत पल छिन हूँ व्याकुल सखियाँ सारी रहत हैं
निस दिन कृष्ण मिलन को सखियों आस लगाये ठारी रहत हैं॥
'अफसोस' पिया की श्याम सुरतिया निरखत नर औ नारी रहत हैं

अलमस्त

कवित

पैसे बिन बाप कहे पूत तो कपूत भयो,
पैसे बिन भाई कहे जी को दुखदाई है।
पैसे बिन यार कहे मेरो यह यार नाही,
पैसे बिन सासु कहै कौन को जमाई है।
पैसे बिन बन्दे की प्रतीत नही पंचन में,
पैसे बिन आय घर रोय रोटी खाई है।
कहै 'अलमस्त' सज बजे रहौ आठौ जाम,
आजु के जमाने में पैसे की बड़ाई है॥

अल्ली

कवित

तू ही भूले धन धाम ये तो नहि आवे काम,
जप लैहो जिन नाम जाते काम आवेंगे।
काहू के हिचोरे हाथी नाहिन भये हैं साथी।
दिया की शिखा में पल माँहि मुरझावेंगे॥
जौ लो घट प्रान तौ जो ध्यान धर साहिब का,
आवे कलि काल तब परे वर लावेंगे।
अल्ली कहे लाख कोटि मर गए जोर जोर,
बाँधि मूठि आये पे पसारे हाथ जावेंगे॥

आलम

(ठुमरी-खम्माच)

हां जोरा जोरी मोरी ।बहियां मरोरीरे ।
बरजोरी कर पकरत पिया छतियां छुअत ॥
देखो देखो मोरी सारी चुरियां करक गई ।
अगियां मसक गई ऐसी कोई करत ठठोरीरे ॥
लाजमरूं कछुबानि नहि आवे मोरा जिया डरपावे ।
'आलम' दिनन की मै थोरी रे ॥

आशक

(भैरवी-धीमा तीताल)

(१)

रांझे देनाल करार मेरावे की करां जिनही लगदा मेरा ।
राझे दी सूरत मेरे मन परवस दीवे सोण राझे देनाल—
मन पगदावे, आशक डसे मत आन ज्यो बदनाम न होवे-
दीवाना वोहि है आये मन होवै ॥

(२)

आमिल रांझा जानवे मैंतो तैड़े सदके बीकीती ।
आशक दे माशुक करम करे सा डरी जान
इस जग विच यौवन मिजमान जान ॥

(३)

लैली दिल मजनू की ताहम फिरे मस्त हो सहरा वसेरा कूबकू ।
मदहोशी से शागीने जिस दम लब लब आप शुमरी नयली ॥

इमदाद

(असावरी)

कसकत मसकत कैसी चलन चाल।
तोरी साँवरी सूरत घूंघर वाले बाल ॥
बेंदी भाल नयन बिच काजर।
कहत 'इमदाद' गोरी जुबना सम्हाल ॥

इश्कदीन

नैन-वर्णन

अति है रसीले नैन बढ़ी तलवार जैसे,
छूटत कमान वान मारे दिन रैन हैं।
नेह के नगर माहि चौकी नित देत रहे,
काहू से न डरे ऐसे आशक सुख चैन हैं ॥
बीजुरी की धार मानो फौज के संहारिबे में,
लरिबे में शूर वीर लरिबे मे ऐन है।
कहे यार 'इश्क दीन' दिल मे विचार देखो,
जोबन पातशाही मे सिपाही दोऊ नैन है ॥

इशक

(भैरवी-धीमातीताला)

(१)

अन मेल इश्कदेनाल मूल गवाया, चठदी व नेजे पीया।
राझे देनाल साड़े इश्क महोवत रांभण सिर दासाया ॥

चलो सइयों असी बेखण जइये राम्भण योगी हो।
दा कानन कुण्डल नल विच सेली हीर हीर कहै रोदां॥
चलो सइयां असी बेखण जइये राम्भण देयो रारा।
हिरणी जानी इटे ढ़ोदी राम्भण ढ़ोदे गारा॥
चाना सइया असी बेखन जइये राम्भन देनी खोली।
ना कोई रोलो ना कोई चाली ना कोई मीठी बोली॥
राम्भे राम्भे ही बुकदे आपही राम्भे हुइया।
मायन कर सानू घायल कीता राम्भण सानू पेया॥

(२)

केहिया गम जालाइया वै मेनु मेड़ा महेरम
सॉवला प्यारी जानी वे।
इस्क लगा तेड़ा वे कि तवल ढूढदा वे सीणा।
तूने नाल गुजारिया नीवे।

उलफत राय राजा "मस्तपिया"

राजा उलफत राय उर्फ मस्तपिया लखनऊ के रहने वाले थे। ये जाति के कायस्थ थे किन्तु कि ी मुसलमानिन वेश्या के प्रेम में फं न कर इन्होंने इस्लाम मजहब स्वीका(कर उससे निकाह कर लिया और अपने कुटुम्ब से अलग हो ग ए। इनके वंशधर अब भी मिर्जापुर में विद्यमान हैं और कायस्थ बिरादरी में सम्मिलित है। इनकी एक पुस्तक "रोबाब मगनी" नामकी मैंने फारसी लिपि में देखी है। इसमे इनके बनाये हुए गानो का संग्रह है जो प्रायः हिन्दी के है। दो तीन गाने यहां नमूने के तौर पर दिये जाते है।

(ठुमरी पीलू)

ऐरी सखी कैसे पहुंचू पास री मस्त पिया के मै।
चहूँघन घटा घेर रही अँधियारी, दहमारी रैन में॥
बीच मे नदिया अगम धार है निकसत डर से न साँसरी।
दामिनी दमक चमक डरपावत सूनी सेज पर नींद न आवत॥
थरथरात पग धरही न जावत विरहा ने खायो है मांसरी।

(ठुमरी देश)

ऊधो तुम कहियो मेरो जाय यही।
जाय रहे कुबरी के घर तुम हमरी सुध विसरी।
हम तड़पत तुम आवत नाही कैसे चेन परी॥
बिरह विथा की य मारी मरत हूं नैनन नींद गई।
खिसकत हों जिया निकसत नाही, जोपर आय बनी॥
मस्त रहत आवहीं तुम्हारी निसिदिन सुध तुमरी।
संकट मोहि पर आय पर्यो है पत राखो मेरी॥

(ठुमरी)

तिरछी चितवन मतवारी चाल जियामा मोरे बस गई रे।
पग धरत धरत मन मोहे लेत, कर मधुर बचन दुख मोहे देत॥
लट लटक लटक सुधि खोये देत, नागिन ह्वै डस गई रे।
इन मन मोहन मन लीन छीन धर अधर मधुर बंसी नवीन।
टोना सा कछु पढ़ फूँक दीन, बौरानी सी ह्वै गई रे॥
लोचन विशाल दोउ लाल, मन मस्त मस्त भयो देख भाल।
कर प्रेम जाल कीन्हो बेहाल, बेबस हो फंस गई रे॥

कदर

(ठुमरी पीलू जंगला)

"कदर" को कैसे भेजू मैं पाती ।
एक तो सूनी सेज नागिन सी दूजे कारी रैन पापिन,
जे मेरा बाला जिया डस—डस जाती ॥
एक तो आधी रैन अन्धेरी दूजे मोहे बिरहा ने घेरी,
तीजे पपीहा की धुनि सुनि नींद न आती ॥

काजिम

(होली-खम्माच)

फाग खेलन कैसे जाऊ सखी री हरि हाथन पिचकारी रहत है ।
सबकी चुनरिया कुसुम रंग बोरी, मोरी चुनरिया गुलनारी रहत है ॥
कोई सखी गावत कोई बजावत, हमको तो सुरत तिहारी रहत है ।
कहत है काजिम अपनी सखी से, सेयां की सुरत मतवारी रहत है ॥

काजम वा कायम

(भैरवी यत)

(१)

कजरवा देके हम पछतानी ।
पिय बिन कौन सिंगार कजरा को जब हम मीचई वानी ॥
एक दिन अंखिया मोरी खजुवानी ।
औषध जानके काजर दीन्हा तिहुंमें सास रिसानी ॥

कारेते डरिये क्योकर मरिये जियही जिय मे मानी।
काजम पिया को अपने मे पाऊँ मेरे गुन औगुन जानी॥

(२)

गुरु विन होरी कौन खेलावे कोई पथ लगावै।
जाका जाको निरमल कर माया मनते छुड़ावे॥
फीके रंग जगत के ऊपर पीके रंग चढ़ावे।
लाल गुलाल लगावै हाथ सो भरम अबीर उड़ावे॥
तीनलोक माया फूंक के को ऐसो फग रमावे।
हरि हेरत मे फिरत बावरी हरि नयनन मे कब आवै॥
हरिको लखि काजम दिया सो काहे न धूम मचावै।

(कल्याण-मत)

(१)

मैं गवने नहिं जैहौ राम।
सासुर मैं जो कहो भल होइये लाज संग शरमाई हूँ राम॥

(२)

गुइयाँ बर जोरी कुच गहे मुख मीड़े फिर फिर आवत मोरी छइया
काजम अपनी ओर निवारो बरबस झगरा ठइयां॥

(जंगला तिताना)

बटोहिया हमरा जियरा तू कहाँ लेके जइयोरे।
छतीस कोटि बइतरनारी कौन गली छिप रैइयोरे॥
हमसे तुमसे लगन लगी है कहा करेगो कोइ योरे।
छूरी कटारी सो मारके गला काट मरजैइयोरे॥

(दादरा भूपाली)

ए नयें विषन भरे उर बेधत करेजो बेन
नही रन दिन इतलाल सतावे
कारिय विष खाय निकस क्यों न जात जीव कोन
वह मार पर घाव बल लगावे ।
एकतेरी चितवन घायल कीन्ही दूजे बंशी
की तान जादू चला वै ॥
कहा मुख बासरी काजम मृदुहासरी तेरे बाके
बीच निपट ऐसे बनावे ॥

कादर करीम

(भैरवी धमार)

प्रभु कैसी होरी मचो सब जग देखत गुलाल रंग से बादर ।
एकै ्गटै भई छवि देखत उनकावला जाने की कोऊकरन आदर ॥
उनही केसर रंग डारियत जे सबही मैनादर ।
अबकी जे फाग जगत में माच्यो सदा रँगीले कादर ॥

कुतुब

जन्नत मे खड़े हैं रसूल ।
माई उड़े फुआरे नबी के नूर के, जन्नत में खड़े हैं रसूल ।
हूर परियां फागन मागे, ऊमद माँग रसूल ॥
लाहे इल्ला का कोट बनाया, बिसमिल्ला भर पूर ।
गौस कुतुब मिलि खेलत होरी सब में सरस हैं रसूल ॥

खलील १

जोबनवा बारे से तज दीन।
ब्याह कियो गौना नहि लीनो, कौन खता हम कीन।
मात पिता सब्ही तज दीनो, संग न एको लीन।
खलील पिया तुम रोवत काहे, जो बिधना लिख दीन ॥

खलील २

भारत जननि तेरी जय तेरी जय हो।
तू शुद्ध औ बुद्ध तू प्रेम आगार ॥
तेरो विजय—सूर्य माता उदय हो।
हो भीष्म सा वीर अर्जुन समा धीर
अकबर शिवाजी का फिरभी उदयहो ॥
गांधी रहे और तिलक फिर भी आवें
अरविंद शौकत मोहम्मद की जय हो
आवे पुनः कृष्ण देखै दशा तेरी
सरिता सरो में भी बहता प्रणय हो
तेरे लिये जेल हो स्वर्ग का द्वार
वेणी की झनझन में बीणा का लय हो
कहता खलील य हिंदू मुसलमां
गावें सभी मिलके जननी तेरी जय है ॥

खालस

(१)

तुम नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?
क्रोध न छोड़ा झूठ न छोड़ा सत्य वचन क्यो छोड़ दिया ?

झूठे जग मे दिल ललचाकर; असल वतन क्यो छोड़दिया ?
कौड़ी को तो खूब सम्हाला, लाल रतन क्यों छोड़ दिया ?
जिन सुमिरन से अति सुख पावै तिन सुमिरन क्यों छोड़ दिया?
'खालस' एक भगवान भरोसे, तन मन धन क्यों छोड़ दिया ?

(२)

जिन्हों घर झूमते हाथी, हजारों लाख थे साथी
उन्होंको खा गई माटी, तू खुशकर नींद क्यों सोया ?
नकारा कूच का बाजे, कि मारू मौत का बाजै,
ज्यो सावन मेघला गाजै, तू खुशकर नीदक्यों सोया ?
कहां गये कहा मद माते, जो सूरज चांद सो जाते,
न देखे वहां वो आते, तू खुशकर नींद क्यों सोया ?
जिन्हों घर लाल ओ हीरे सदा सुख पानकर बीड़े,
उन्हों को खा गये कीड़े, तू खुशकर नींद क्यों सोया ?
जिन्हो घर पालकी घोड़े जरी जरवफ्त के जोड़े,
वही अब मौत ने तोड़े, तू खुशकर नींद क्यों सोया ?
जिन्हा संग नेह था तेरा, उन्हों किया खाक मे डेरा,
न फिर वो करन गे फेरा तू खुशकरकर नीदसोया।

(३)

रे सम्हाल प्यारे कौन बात त बिचारी।
गोटा पहने तिला पहने और कबून कनारी
रेशन और दरियाई पहने हरि की तै सुध बिसराई।

खुशहाल

राग सोरठ यत

मोरी सुरंग चुनरिया बोरी रे।
तोसे अब न खेलो कान्हा हारी रे॥

निपट ढीट नंदलाल सांवरो।
काहे को करत बरजोरी रे॥
बरज रही बरज नहि मानत।
लागोहि आवत औरी री॥
ख्याल खुशहाल करत चित चाहत।
कुंज निकुंजन ठौरी री॥

खैराशाह

खैराशाह जाति के जुलाहे थे। इनकी बनाई केवल बारह मासा नाम की एक पुस्तक मेरे देखने में आई है। इनकी कविता साधारण है।

श्रावण

सावन आवन कहि गए, उमँग चले बहु नीर।
जो अबके पिय दरस दे, (तो) शीतल होय शरीर॥

सावन अजब ये मास मौसम तीज ऋतु है क्या भली।
सेज पर गल लाग सोती गूंधती चम्पा कली॥
हित प्रेम डोरी बाध प्रीतम मिल सहेली झूलती।
मैं अकेली झूलती गले लाग रो रो भूलती॥
चोला जो पहरा रैन अंधेरी बूंद वर्षा अति झरी।
जोग जुगत अनेक कीन्ही हाय किस्मत क्या करी॥
ओढ़े कसूमी चूनरी जो है सुहागन पीव की।
सावन कठिन दुख दे चला गति कौन मेरे जीव की॥

सावन कहे सुन री सखी उठी न मौसम देख।
उनसे जोरी ना चले, (जो) लिखे कर्म के रेख॥

सावन कहे सुन बावरी कर याद बैठी हर घड़ी।
शायद कभी फिर भी करे तुम पर करम की वो घड़ी ॥
जल धार बर्षें मेघ जल अरु कोकिला कुल्हात है।
जिन पर पिया का प्यार है वे तीज खेलन जात है॥
जिस वख्त डाला था हिंडोला पी रंगीले बाग में।
उस वक्त तू क्यों ना गई भर रंग अपनी मांग में।
ओढ़े कूसूमी चूनरी पहरे जो साथिन सब हंसे।
जिन पर पिया का प्यार है वो रात दिन मन में बसे॥

ताबां

ठुमरी भैरवी

पिया आवन की भई बेरियां दरवजवा ठाढ़ी रहूं।
'ताबां' पिया से वेग मिलाओ निकसत जात जिया हो पिया॥

दादन

दोहा

अलि पतंग मृग मीन पुनि इकरस लो पति जोय।
दादन प्रेम सु क्यों तजे पांचो रस जिहिं पीय॥

नज़्म

[ठुमरी-पर्च]

चली झमक झमक ब्रजनारी।
रही झूम झूम मतवारी॥
नैनों से जादू डाला।

सैनों से मार गई भाला ॥
चितवन बूंगी की कटारी ।
कहे नजम गले सोहे हरवा ॥
सर गगर गगर पर करवा ।
जल भरन चली पनिहारा ॥

नज़ीर

[ठुमरी--खम्माच]

चलो हटो छाड़ो न सताओ मोंहे सैयां रे ।
देखो देखो मुरक न जाय मोरी बहियाँ रे ॥
खाय सौगध नज़ीर कहत हूँ,
नेह लगावत तुमस डरत हूं,
ओछे की प्रीत को ऐसो सुनत हूँ,
जैसे रहत तरवार की छयाँ रे ॥

नबी

नबी का बनाया हुआ नखशिख बहुत उत्तम है ।

कवित्त

मृग कैसे मीन कैसे खंजन प्रवीन कैसे
अंजन सहित सित असित जलद से ।
चर से चकोर से कि चोखे कांड कोर से
कि मदन मरोर से कि माते रते मद से ।
नबी कबी नयना से कि और नयन नयना से
कि सीपड़े सलोना मध्य राखे मृग मद से ॥

पय से पयोध से की और सोधे सौध से
की कारे भौंर केसं अनियारे कोक नद से ॥

निज़ामी

[एमन]

शंकर शिव बम बम भोला, कैलाश पती महराज राज ।
ओढ़े मृग छाल, गले व्याल माल, लोचन विशाल है, लाल लाज
लघु मंड भाल सोहे ज्यों ताज । शंकर शिव ० ॥
अर्द्धङ्ग रूप, ज्यो छांह धूप, निरखत अनूप, भये छकित भूप
करि डिमक डिमक गत डमरु बाज ॥ शंकर शिव ० ॥
तन सकल नंग, छवि अंग अग, लिये गौरि संग, सोहे सीस गंग
पिये भंग ढग सो करैं काज ॥ शंकर शिव ० ।
कहै दास निज़ामी कर जोर २ दे भक्ति दान राख मान मोर
पद अभय तोर कहां जाउं त्याज ॥ शंकर शिव ० ॥

[ठुमरी खमाच]

पनघट पर मोरी गागरिया निर्दई श्याम ने फोर दई ।
जब नीर भरन घर से निकसी इक काग बोल गयो मागरिया ॥
दहिने दहजार बिलार गयो बायें कर छींकत छागरिया ।
मोरी संग की सखी सब निकस गई जो सब गुन पूरी आगरिया ॥
मोहे जान अकेली छेक लियो सर बाधे टेढ़ी पागरिया ।
मेरी अरज बरज एको नहि मानी बसत कौन धौं नागरिया ॥
मन उठै क्रोध तन थर थराय, पग पड़े सुद्ध नहि डागरिया ॥

निज़ामुद्दीन औलिया

[ठुमरी विहग]

(१)

बहुत कठिन है डगर पनघट की।
जो कोई जाय वही जाय भटकी ॥

घर से जो निकसी पनिया भरन को, कैसे कँधवा भरवाऊँ मटकी।
बेर भई पिया सोचत होई है, जान पड़त काहू और सों अटकी ॥
निजामुदीन औलिया मोरेमनमा बसत हैं लाजे राखो मोरे घूघटकी

(२)

परबत बास मगाव मोरे बाबुल नीके मड़वा छावरे ॥
सोना दीन्हा रूपा दीन्हा बाबुल दिल दरियावरे।
हाथी दीन्हा घोड़ा दीन्हा बहुत बहुत मन चावरे ॥
डोलिया फंदाय पिया लै चलि है अब संग नहि कोइ आवरे।
गुडी खेलन माता के घर रहे गये नहि खेलन दावरे ॥
निजामुद्दीन औलिया बहिया पकरि चले धरिहों वाके पावरे।

नूर

सवैया

(१)

दाड़िम देख तपोवन सेवत मानिक सिंधु समाय गये हैं।
मंगल के कुलके मनो बालक "नूर" कहे ये अकास छये है ॥
तू तरुनी रंग दन्तन तें सुमुनीन हू मन मोल लये हैं।
लाल कहा उपमा बरनो रद लाल लखे रंग लाल भये हैं ॥

(२)

यौवन छत्र पती के मनो सर कंचन छत्र सों आनि छये हैं।
काम के त्रास मनो शिव के सिर कामिनी सुंदर विंदु दये हैं॥
ओफन मे मनो कोऊ विहंगम कौलन के दल तोरि गये हैं।
लालो अली कुच अग्रज को लखि "नूर" सुलाल के चूर भये हैं॥

कवित्त

कोक कला पढ़िबे की पोथी सी बनाई काम,
कैधों नवो रसन की भूमि उपजाई है।
परम प्रबीण रूप भारति है मेरे जान,
कण्ठ से निकसि मुख बारिज में आई है॥
प्रेम को सो मंच है मयंक मुख सपुट में,
पूछे कहि बोले 'नूर' ऐसी प्रभुताई है।
रानी षट रसन को सुवरण उरझानी,
एते रससानी तऊ रसना कहाई है॥

फ़क़ीर हुसेनशाह

(भैरवी खेमटा)

चरखा ला ते मोरीरे ते मोरी नींद गमाई।
कातत कातत सब निशि बीती इस्कदी तार लगाई॥
सगरी उमर मोरि कातत बीती अब साहेब मान बढ़ाई॥
साह हुसेन फकीर रब्बाना बिन मसलत उठ जाई॥

(भैरवी खेमटा, यत)

मतलबी कौन कतेनी मागे हानू ईश्कते हाल॥
केतने के हा घायला मायल फिरूं दिवानी।
नेन साइ देर ते लग ईस्क छूट गई मसलत॥

विरस गए पंज सर तानी ।
साह हुसेन फकीर खाना साईंदे नाल घोल घतानी ।

फरहत

फरहत की कविताएं नग़मय दिलकश मे बहुत सी संग्राहित हैं इनकी कविताओं से जान पड़ता है कि ये हिन्दी, उर्दू और फारसी, के अच्छे ज्ञाता थे तथा अंग्रेजी का भी उचित ज्ञान रखते थे। कुछ नमूने इनकी कविताओं के नीचे दिये जाते हैं।

(होली काफी)

मारो मारो रे श्याम पिचकारी हो।
ताक लगाये खड़ी सखियन संग, ओट लेत राधा प्यारी हो ॥
देखो देखो श्याम उहै कोउ आवत, अबीर लिये भर थारी हो ।
इक पिचकारी और प्रभु मारो, भीज जाय तन सारी हो ॥
'फरहत' निरख निरख यह लीला, हरि चरनन बलिहारी हो॥मारो०॥

(होली पर्व)

कोई उत जिन जैयों ठाढ़ो श्याम चित चोर।
रोके छैल गैल पनघट की, बशी बट की ओर।
जो निकसत तेहि रंग भिजोवत, बहियां देत मरोर ॥
जो भटकी फटकी सो बची मानो, अटकी सो भइ सरबोर।
झटकी पटकी सरकी मटकी हटकी तो पट लियो छोर।
नीर भरन मैं उत जा भटकी खटकी सुन यह शोर।
सुध न रही घूंघट की सटकी मटकी चली सखि छोर ॥

एक की दौर मरोरी बांगर यक गागर दई तोर ।
कहै 'फरहत' यह सब गुन आगर नागर नवलकिशोर ॥

(हिंडोला देश)

आनंद कद ब्रज चंद साथ वृषभान नंदनी झूलैं अली। सारद गनेस नारद दिनेस सनकादिक ब्रह्मादिक सुरेस हुलसत महेश बमभोले नाथ ॥ कोयल समान सखियन की कूक फहरत चँदरावलि देत झूंक श्री नंदनद गले डाल हाथ।

(ध्रुपद खम्माच)

बंसी मुख सों लगाय ठाढ़े श्री राधा वर।
मधुर मधुर बजत धुन सुन सब गोपी बेहाल ॥
थिरक थिरक नाचे मानो घन बिच दामिनि चमके।
कारे मतवारे रतनारे दृग लटक चाल ॥
सीस मुकुट चमके मकराकृत कुडल दमके।
'फरहत' अति प्यारी घुघुरारी अलक तिलक भाल ॥

(ठुमरी पर्च)

छाड़ो रे मोरी बहियाँ, मै तो परत तिहारे पैयां।
तुम चंचल छयल गिरिधारी, ब्रज रसिया चतुर खिलारी ॥
मै तो हूँ अबला निपट अनारी अति बारी बैस लरिकैयां।
मोरी चोलिया मसक गई सारी, सारी टूक टूक कर डारी।
कहा आन फसी दइ मारी, यही बार बार पछतैयां ॥
नट नागर गागर फोरी, कीनी बीच डगर बरजोरी।
मेरो नाजुक बहियां मरोरी, पत राख ले आज गुसेयां।
मुसक्यात प्रेम बस कीनो, मोरी नस नस कर रस लीनो ॥
'फरहत' गोरस छीनो, लागत या ब्रज सहियां ॥

फ़ाज़िल अली

फाजिल अली ने फाजिल अली प्रकाश नामक एक संग्रह ग्रन्थ की रचना की है जिसमें इनकी भी कुछ कविताएं संग्रहित हैं।

जय जय गण नायक सिद्धि बिनायक बुद्धि विधायक भय हरणम् ।
जय जय खल दाहन बिघन बिगाहन मूषक बाहन जन शरणम ॥
जय जय गुण आगर सब सुख सागर अवनि उजागर दुवन दमो ।
जय जय जग बन्दन कलि मल कन्दन गिरिजानन्दन नमो नमो ॥

दोहा

जेती पर पृथु रथ फिर्‍यो, जेती धरी फणीश ।
तेती जोती अवनि है, औरंगजेब दिलीश ॥ २ ॥
दाता ज्ञाता शूरमा, सुमति इनाइत खान ।
अति फ़ाज़िल फाजिल अली तिनके भये सुजान॥३॥
रची कपिल मुनि कपिलाबसत , सुरसरी तीर ।
निशि दिम जामे देखिये, कविकोविदकी भीर ॥४॥
अलह यार खां भुजबली, सुमति शूर शिरताज ॥
जिन्हें दिया कविराज पद, बड़े गरीब नेवाज ॥ ५॥

बाज़िन्द

बलख़ बुखारा की तरफ़ के किसी बादशाह के शाहजादे थे। ये अपनी लश्कर में एक ऊँट को मरा हुआ देखकर इस संसार को असार जान फ़क़ीर हो गए और भजन भक्ति मे सारी उम्र बिता दी।

(१)

सुन्दर पाई देह, नेह कर राम से ।
क्या लुबधावे काम, धरा धन धाम से ॥
आतम रंग पतंग, संग नहि आवसी।
जमहूं के दरबार, मार बहु खावसी ॥

(२)

गाफिल मूढ़ गमार, अचेतन चेत रे ।
समजी सत सुजान, शिखामन देत रे ॥
विषया मांहि बेहाल लगा दिन रैन रे ।
शिर बेरी जमराज, न सूझे नैन रे ॥

(३)

दिल के अन्दर देख कि तेरा कौन है।
चलै न भोला साथ अकेला गौन है ॥
देख गेह धन दार, इनुं से चित्त दिया।
रट्या न निश दिन राम, काम तें क्या किया ॥

(४)

देह गेह में नेह निवारे दीजिए ।
राजी जासे राम काम सोइ कीजिए ॥
रह्या न वेसी कोय रंक अरु राव रे।
कर ले अपना काज बन्या हद दाव रे ॥

(५)

मेरी मेरी करत फिरत मगरूर में ।
काया माया काज कमाया क्रूर में ॥

पलक माँहि ग्रह आद्य होय सब पार का।
होयेगा तें कीर शरीर तमार का ॥

(६)

बंछत ईश गुणेश एइ नर देह को।
श्रीपति चरण सरोज बढ़ावन नेह को॥
सो नर देही पाय अकाज न खोइये।
सांई के दरबार गुनाही होइये ॥

(७)

केती तेरी जान किता तेरा जीवना।
जैसा स्वपन बिलास तृषा जल पीवना।
ऐसे सुख के काज अकाज कमावना।
बार बार जब द्वार मार बहु खावना ॥

(८)

नहि हे तेरा कोय नही तू कोय का।
स्वारथ का संसार बना दिन दोय का॥
मेरी मेरी मान फिरत अभिमान में।
अतराने नर मूढ़ एहि अज्ञान में ॥

(९)

कूड़ा नेह कुटुम्ब धनं हित धायता।
जब घेरे जमरा न करे कोय साह्यता ॥
अंतर फूटी आंख न सूझे आंधरे।
अबहूं चेत अजान हरी से साध रे ॥

(१०)

तात मात सुत भ्रात किया हित नारथी।
नहि तेरा है निदान, सबे निज स्वारथी॥
याके संग अबूज खोर सब आवरे।
अजहूं चेत अजान हरी गुन गावरे॥

(११)

बार बार नर देह कहो कित पाइये।
गोविंद के गुन गान कहो कब गाइये॥
मत चूके अवसान अबे तन मां धरे।
पाणी पेजी पाल अज्ञानो बांध रे॥

(१२)

झूठा जग जंजाल पस्या तें फंद में।
छूटन की नहि करत फिरत आनंद में॥
यामे तेरा कौन समां जब अन्त का।
ऊबरने का उपाय शरण एक संत का॥

(१३)

मन्दिर माल विलास खजाना मेडियां।
राज अवर सुख साज के चंचल चेडियां॥
रहता पास खवास हमेश हजूर में।
ऐसे लाख असंख्य गये मिल घूर में॥

(१४)

मछराले मगरूर के मूंछ मरोड़ते।
नवल त्रिया का मोह छनक नहि छोड़ते॥

तीखे करते तरक गरक मद पान में ।
गये पलक में ढ़लक तलब मैदान में ॥

(१५)

सुख में करते शोक के गोखे जांखता ।
देख पराई नार नजारां नाखता ॥
लोचन रहते लाल अमले आ करे ।
सो भी गये विलाय गई उड़ खाक रे ॥

(१६)

पुष्पे सेज बिछाय के तापर पोढ़ते ।
आछे डुपटे साल दुसाले ओढ़ते ॥
लेके दर्पण हाथ नीके मुख जोवते ।
ले गये दूत उपाड़ रहे सब रोवते ॥

(१७)

बांकी पाघ बनाय के छोगा रालते ।
छके रहे ते छेल खुशी दिल ख्यालते ॥
झुलते तिय के संग के आठू जाम रे ।
पल में गये बिलाय रह्या नहि नाम रे ॥

(१८)

जा के मूंछां शीश के नीबू छेरते ।
वकर दटां के वीछ के। भाला फेरते ॥
जुध बेले जूझार न माते जरद में ।
ऐसे जोध असंख्य गये मिल गरद में ॥

(१६)

अत्तर तेल फुलेल लगाते अङ्ग में।
अंध धुंध दिन रैन तिया के संग में॥
महल अबासा बैठ करंता मोज रे।
ऐसे गये अपार जड़े नहि खोज रे॥

(२०)

जाके आगे राग गुणी जन गावते।
मेवा अरु मिष्टान्न के भोजन भावते॥
खासी में हरि संग करता खूबियां।
मिल गइ माटी माहि के ऐसी सूबिया॥

(२१)

खान अरु सुलतान बड़े जग कावते।
देश विदेशा माह्य के हुकुम चलावते॥
खाग तणे बल भोम बया की खाटियां।
जीव गये जम झाल मिले तन माटियां॥

(२२)

जीमत रोज जरूर मिठाई ताजियां।
चौसर चौपाट ढ़ाल, रमंता बाजियां।
छल बल चतुरां छेल अबी छल नारियां
ठेले आतम खेल फटाका वारियां।

दर्पण में मुख देख के मुछवा तानता ।
जग में बांका काय नाम नहि जाणता ।

(२४)

महल फुवारा होज के मोजूं मानता ।
समरथ आप समान और नहिं जाणता ॥
पोरस तेज प्रताप चलंता पूर में ॥
भला भला भूपाल गया जमपूर में ।

(२५)

सुन्दर नारी संग हिंडोले भूलते ।
पेर पाटम्बर अंग फरंता फूलते ॥
जोते खूबी खेल के बेठ बजार की ।
सो बी हो गए छेल देरी छार की ॥

(२६)

करते रंग बिलास बैठ कूं छेड़िया ।
मरद छरद मनवार, कसुंबी केरियां ॥
भोजन नवली भात सावदु साक के ।
उड़ गये तूर समूर, के जैसे आक के ॥

(२७)

अण कजाया मेल, भंडारी ऊडियां ।
देश विदेशा माहि चलंती हुंडियां ॥
जाके आगे देश कमाता बेठिया ।
हो गये फना मकाम के ऐसा शेठिया ॥

(२८)

गादी तकिया नाख रहे ते गमर में।
रेशम धोती पेर कंदोरा कुमर में॥
ज्याका चलता हुकुम, मसवे मलक में।
कोटिधज शाहुकार बिलाने पलक में॥

(२९)

सब दिन चाकर पास रहंते साखते।
काम काज कर नार के बो तो गुमास्ते॥
लेखा करते रोज हजारों लाख के।
हो गये छिन एक माह्य के ढ़गले राख के॥

(३०)

राज कचेरी माह्य के आदर पामते।
करते हकमक रूप पटेली कामते॥
पाग धनी की बांध के रहते अकड़ते।
रहे धरे धन मान गये जम पकड़ते॥

(३१)

इन्द्रपुर सा मान बसंती नगरियां।
भरती जल पनिहार कनक सिर गगरियां॥
हीरा लाल झवेर बेकता तास ही।
ऐसी पुरी उजाड़ भयंकर हो गई॥

(३२)

होती जाके शीश के छत्रो छांइयां।
अदल फिरन्ती आण दशो दिश माहियां।

उदे अस्त लूं राज जिनुका कावता ।
हो गए ढेरी धूर नजर नहि आवता ।

(३३)

नित जाके दरबार जड़न्ती नोबतां ।
मंत्री पास प्रवीन करन्ता मोवतां ॥
चतुरा जीना चोज तरक अति सूजतां ।
तीना ई का जगत नाम नहि बूजता ॥

(३४)

जँह आगे मल रोज अखाड़ा मंडते ।
खग बल खाते खड बड दराडा दराडते ॥
थता कचेरी थाट छटा रंग छाय के ।
सूता तारां सोड मसाणुं जाय के ॥

(३५)

धरे रहते रोज के अब के राव के ।
मछराले मे बास के को धन मावते ॥
कनक छड़ी ले हाथ नकी पोकारते ॥
धरे रहे सब राज गये जख मारते ॥

(३६)

बंका किला बनाय के तोपां साजियां ।
माते मैगल द्वार केत ते ताजियां ॥
नित प्रति आगे आय नचंती नायका ।
याकू गये उपाड़ दूत जम राय का ॥

(३७)

माणक हीरा लाल खजाना मोतियां ।
सज राणी शरणगार सनमुख जोतियां ॥

दिन दिन अधिक सुगंध लगाते देह में।
ऐसे भोगी भूप मिले सब खेह में ॥

(३८)

जोगी करते जोग के आसन सांधते।
अखंड भभूत लगाय जटा सिर बांधते ॥
साधि कलप केदार के तत्पर होय रे।
काल व्याल की झपट बचा नहि कोयरे ॥

(३९)

आ तन रंग पतंग काल उड़ जायगा।
जम के द्वार जरूर खता बहु खायगा ॥
मन की तज रे घात बात सत मानले।
मनुषाकार मुरार तहि कूं जान ले ॥

(४०)

भजे सुआ हरि नाम के बैठा ताक में।
दिना चार का रंग मिलेगा खाक में ॥
साहेब बेग सम्हाल काल सों रार है।
जम के हाथ गलेल फटक्का पार है ॥

(४१)

यह दुनिया 'बाजिद' पलक का पेखनां।
यामें बहुत बिकार कहौ क्या देखना ॥
सब जीवन का जीव जगत् आधार है।
जो न भजे भगवंत छूटी में छार है ॥

(४२)

दो दो दीपक बाल महल मे सोवते।
नारी से कर नेह जगत नहि जोवते ॥

सूंधा तेल लगाय पान मुख खायंगे।
बिना भजन भगवान के मिथ्या जायंगे॥

(४३)

राम नाम की लूट फबै है जीव को।
निस बासर कर ध्यान सुमर तूं पीव को॥
यहै बात परसिद्ध कहत सब गाम रे।
अधम अजामिल तरे नारायण नाम रे॥

(४४)

गाफिल हूए जीव कहो क्यों बनत हे।
या मानुष के सास जो कोऊ गनत हे॥
जाग लेय हरि नाम कहां लो सोय हे।
चक्की के मुख पस्रो सुमैदा होय हे॥

(४५)

आज सुने के काल कहत है तूझ को।
भावै बैरी जान के जो तूं मूझ को॥
देखत अपनी दृष्टि खता क्या खात है।
लोहे कैसा ताव जन्म यह जात है॥

(४६)

केते अर्जुन भीम जरा जसवन्त से।
केते गिने असंख बली हनुमंत से॥
जिनकी सुन सुन हांक महा गिर फाटते।
तिन धर खांयो काल जो इन्द्रहि ठाठते॥

(४७)

हो जाना कछु मीठ अन्त कँह तीत हे।
देखो देह विचार या देह अनीत है॥

पान फल रस भांग अन्त कह रोग है।
प्रीतम प्रभु के नाम बिना सब सोग है॥

(४८)

नबियोंदा सिरताज खंभ दरगाह दा।
सब ना दाम कबूल रसूल खुदाह दा॥
उग्मत दे पुत जिवन, ऊसदी जान सर।
कौन साहिबनू अक्खै यो नहि यौ कर॥

(४९)

बिना बास का फूल न ताहि सराहिए।
बहुत मित्र की नारि सौं प्रीत न चाहिए॥
सठ साहिब की सेवा कबहू नहि कीजिए।
विद्या बिद अरु जिन्द अकाज नहि दीजिए॥

(५०)

इक राम कहत कलमा न डूबा कोइ रे।
अर्ध नाम पाषान तरा निर लोइ रे॥
कर्म की केतिक बात बिलग ह्वै जांयगे।
हाथी के असवार कुत्ते क्यो खांयगे॥

(५१)

कुंजर मन मे मत्त मरे तो मारिये।
कामिनि कनक कलेस टरे तो टारिये॥
हरि भक्तन सों नेह पले तो पालिये।
राम भजन में देह गले तो गालिये॥

(५२)

जेती बोली बानी सो तो वह रही।
हृदय कपट की बात तो मुख से का कही॥

बोले बोली बेल बुलाई पीव की ।
ऊपर की सब जूठ फलेगी जीव की ॥

(५३)

घड़ी घड़ी घड़ियाल पुकारे कही हे ।
बहुत गई हे अवध अलप ही रही हे ॥
सोवे कहा अचेत जाग जप पीव रे ।
चलि हे आज कि काल बटाऊ जीव रे ॥

(५४)

जो जिय मे कछु ज्ञान पकर रह मन को ।
निपट हि हरि को हेत, सुभावत जन को ॥
प्रीति सहित दिन रैन राम मुख बोलई ।
रोटी लीये हाथ नाथ सग डोलई ॥

(५५)

पानी लगे न ताहि तहां लागोय रे ।
रीते हाथ न जाय जगत सब जोय रे ॥
यह माया 'बाजीद' चले क्या साथ रे ।
बहते पानी पूर, पखाले हाथ रे ॥

(५६)

पाहन कोरा रहे बरसते मेंह में ।
घाल धरी 'बाजीद' दुष्टता देह में ॥
उसे औचका आय, मूंड गहि रोइये ।
सर्पहि दूध पिलाय वृथा हो खोइये ॥

(५७)

बदन बिलोकत नैन भइ हो बावरी ।
धारे दण्ड विभूत पगन द्वै पावरी ॥

कर जोगन को भेख सकल जग डोलिहों ।
ऐसो मेरे नेम पीव पीव बोलिहों ॥

(५८)

एकै नाम अनंत किहूँके लीजिए ।
जन्म जन्म के पाप चुनौती दीजिए ॥
लेकर चिनगी आन धर तूं अब्ब रे ।
कोठी भरी कपास जाय जर सब्ब रे ॥

(५९)

नेकि बदी का नाम, के सैया मानसी ।
डार पाउं जंजीर बधे मुख टांगसी ॥
मोह कम देसी मार आंख भर लोन सें ।
(तुं) समझे नहीं गमार काम है कोन सें ॥

(६०)

पंचरंगी है पाग, के जामा जरकसी ।
हाथ में लाल कमान के बाँधा तरकी ॥
वो नर चले चतूर झलकती आरसी ।
वा नर चाले जरूर पढ़ंते फारसी ॥

मकसूद

मकसूद का एक बारहमासा फारसी लिपि में मेरे देखने में आया है ।

भादों

लगा भादों मुझे दुख देने भारी ।
घटा चहुँ ओर झुक आई है सारी ॥

भरी जल थल चढ़ीं नदियों की धारे।
सखी अब तक न आये पी हमारे॥
घटा कारी अंधेरी नित डरावे।
पिया बिन नींद बिरहिन को न आवे॥
कड़क सुन सुन के निस दिन दामिनी की।
कंपत है देह थर थर कामिनी की॥
सखी घर घर सभों के कंत आये।
मेरे बालम सखी किस देस छाये॥
अरे कागा तू उड़ कर जा विदेसा।
सलोने श्याम को लेकर सदेसा॥
यह सब हालत वहां तकरीर कीजो।
मेरा साबित गुनः तकसीर कीजो॥
कि उस बिरहिन को तुम क्यों छोड़ बैठे।
तरफ उसकी से मुंह क्यों मोड़ बैठे॥
मुझे गम दिन ब दिन खाने लगा है।
अजल का दिन नजर आने लगा है॥
न जानू दरस पी का कब मिलेगा।
कंवल इस मेरे जी का कब खिलेगा॥
सखी यह मास भादो भी सिधारा।
न आया आह वह पीतम ! पियारा॥
बिरह आतिश से छाती गल गई अब।
हुई बेकल मेरे सब कल बाइ अब॥
अरी सखियों रहे ताला उन्हों के।
पिया नित साथ रहते हैं जिन्हों के॥
दिवानी पी की मैं मेरा पिया है।
पिया का नाम सुमिरन मैं किया है॥

मुलतान आलम

(ठुमरी)

लंगर तोरा चतुर सुजान जान
मैं अपनी दधि बेचन निकसी, सास ननद की चोरी।
धर बहियाँ झकझोरी पकर मोरी छीन मटुकिया फोरी॥
बन बन आवत बीन बजावत नाचत गत चित चोरी।
'मुलतान आलम' घर जान न दूंगी (मोरी) मुतियन की लर तोरी॥

मीरन

मीरन का बनाया केवल एक नखशिख मिलता है।

(१)

हौ मन मोहन सों मिलिके करती उहा केलि घनी तरु छांहीं।
सो सुख मीरन कासो कहौ मन मारि मिसूस लिही मुरझांहीं॥
पात गये झरि धूम के पुंजन कूद परी सिगरे बन मांही।
गांउ के लोग महा निरदय जो पलासन कोउ बुझावत नांही॥

(२)

सुमन में बास जैसे सुमन में आवें कैसे,
नाही नै कहात नाही हां कह्यो चहत है।
सरस्वती सुरसरि सूरतनया में जैसे,
बेद के बचन बाचे साचे उचरत है॥
परिवा को इन्दु कला जैसे बसे अम्बर में,
परिवा को लच्छन प्रतच्छ ना लहत है।
बुद्धि अनुमान परमान परब्रह्म जैसे,
तैसे कामिनी की कटि 'मीरन' कहत है॥

(३)

धूर कपूरि सी पूरी रही अंग दूरि ते देखि है दामिनि ज्यों घन।
कोमल कंज से हाथ औ पांय है खेलत खेल के बीच दिये मन॥
चाल चितौन बढ़ै कबि 'मीरन' कालिही ते कछु और भयो तन।
सैसव में झलक्यो इमि जोबन भाल में जैसे पताल भरयो धन॥

(४)

आए हो आज भले बनि मोहन सोहति मूरत मैन मई है।
आरस सों रस सों अनुराग सों रूप सों रीस सों दीठ दाई है॥
रावरे ओठन अंजन देखत 'मीरन' मो मति नेह नई है।
जानति हैं उहि भावति और सो बोलन को मुख छाप दई है॥

(५)

पौढ़ि हुती पलिका पर मे निशि ग्यान अरु ध्यान पिया मन लाए।
लागि गई पलकै पलसों पल लागत ही पल मे पिय आए॥
ज्योहि उठी उनके मिलवे को सु जागि परी पिय पास न पाये।
"मीरन" औरतो सोयके खोवत हौं सखि प्रीतम जागि गमाए॥

(६)

जब लगि हिय में धर सको, तब लगि धरो जु धीर।
'मीरन' अब कैसी बनी, अधिक पिरानो पीर॥

(७)

'मीरन' बिछुरत ही पिया, उलट गयो संसार।
चन्दन चन्दा चाँदनी, भये जरावन हार॥

(८)

मीरन प्यारे अस कह्यो, सपने देखो मोहि।
तुम बिन नींद न आवही, कैसे पेखो तोहि॥

नैन रंगे सब रैन जगे तें लखे मन को ललचावन।
मेरी यों रीसि किधों पिय प्यारे को रूप खरो लगे रीझ रिझावन।
मीरन आज की आऊन ऊपर पीवन छ्वै करिए करि पावन॥
आये कहूं अनतें रति के मन भावन लागे तऊ मन भावन॥

मुश्तरी

मुश्तरी लखनऊ की रहने वाली एक मुसलमान वेश्या थीं। नग्मये दिलकश में इनकी बहुत सी कविताएं संगृहीत हैं। ये हिंदी और उर्दू की साधारणतः अच्छी कविता कर लेती थीं। इनकी कविताओं के देखने से पता चलता है कि इन्होंने फारसी भाषा की भी शिक्षा पाई थी। नमूने के तौर पर इनकी कुछ रचनाएं नीचे दी जाती हैं।

(होरी–काफी)

नन्द के नन्द देखो होरी मचाई।
मैं जमुना जल भरन जात थी मारग बीच लगाई॥
खीच लई मोरी नाजुक बहियां, सारी गगरिया बहाई।
देत मैं राम दोहाई॥
सब सखियां मिल फाग खेलत हैं, उनमे अचानक आई।
जात रही मोरी माथे की बिंदियां, ढूढ़ फिरी नहि पाई॥
सास औ ननद रिसाई॥
लपट झपट मोरी फारी अँगिया, ऐसी कीन्ही रुसाई।
कर गहि जोरी छीनी मुंदरिना, नाजुक मुरकी कलाई॥
पिया को लाज न आई॥

(होरी-काफी)

होरी खेलत मै तो श्याम सों हारी ।
तोड़ दई मोरी सर की गगरिया, भीज गई तन सारी ॥
अबिर गुलाल भरयो बरजोरी, रंग की भरि पिचकारी ।
अचानक मुख पर मारी ॥
मुश्तरी पिया के मैं बल जाऊं बतियां करत प्यारी प्यारी ।
अंचरा पकड़ मोरी बहियां गहत हैं, हंस हंस देत है गारी ॥
कहों का लाज की मारी ?

(होरी-खम्माच)

फाग खेलत मो मुख मत मीजो चेरी मै तोरी भई रे भई ।
बहियां मरोरी श्याम बिहारी, सान बान मोरी गई रे गई ॥
आग लगे सखि फाग मे ऐसे, गलियां झंकावत नई रे नई ।
'मुश्तरी' उनही से आस लगी है, जिन मोरी बहियाँ गहीरेगही ॥

(देश)

पिया छाय रहे मधुबन मे ।
क्यों न आग लगे मेरे तन में ॥
देवरा हमारे जुबना तकत हैं कैसे फिरूं आगन में ।
मुश्तरी पिया से बस न चलत है हूक उठत मोरे तन में ॥

(गजल)

बोसा उस बुत की जबाँ का लिया चंदन होकर ।
हुआ हमदोश में जुन्नार बरहमन होकर ॥
चश्मे मरदुम से है आपको परदा मंजूर ।
मेरी आंखो में रहा कीजिए अन्जन होकर ॥

खून आशिक का पड़ा है इसे बेढब चस्का।
जुल्फे पुरपेंच न काटे कहीं नागन होकर॥
आप रखिये तो जरा सीनए सदचाक प हाथ।
दिले पुर शोर अभी बजने लगे अरगन होकर॥
गोरा रुख चमके हम जुल्फ का बोसा लेंगे।
पहुंचेगे किशवरे तातार में लन्दन होकर॥
बरसा करते हैं जुदाई में तेरी बरसों से।
अब्रदीदा कभी भादों कभी सावन होकर॥
साफ रुख बोसा से नीला हुआ उरगैज से सुर्ख।
नसतरन बन गया लाला गुले सोसन होकर॥
लूटने को गुलेज्जार ये रुखसार सनम।
परदये दीदये तर फैले है दामन होकर॥
खानये चश्मे आप आये जो ए परदा नशी।
पलकें दरपरदा छिपा लें अभी चिलमन होकर॥
दस्त रस पा न सका जब किसी ढब से है हात।
पहुंचा दिल साइदे महबूब में कंगन होकर॥
दोस्ती की दिलेइमदर्द ने हमबेदर्द से आह।
दुश्मनी दोस्त ने की 'मुशतरी' दुशमन होकर॥

मौजदीन शाह

(सिंधु यत)

इतनी कोई कहो हमारी, मन मोहन ब्रजराज कुँअर सो नारी।
पाव परस कर दरशन कीजो, हूजो जोर दोऊ कर ठारी।
फिर पाछे इतनी कहि दीजो क्यों सुध लीन्ह न एकहु बारी॥

फागुन आयो झाझ डफ बाजे भीर भई अति भारी।
मोहे तो आस तिहारे मिलन की भूल गई सुध सारी ॥
पिया तरफत हूं न्यारी ॥

मोहे गुलाल लाल बिन तोरे भई है रेन अंधियारी।
अंसुअन को अब रंग बनो हैं नैन बने पिचकारी ॥
पिया छोड़त हूं हारी।

बृन्दावन की कुञ्ज गलिनमे ढूढ़त ढूढ़त हारी।
दैहो दरस मोही अपनी मौज से ऐहो कृष्ण मुरारी ॥
पिया मेहे आस तिहारी ॥

वहजन

(झन्झौटी–यत)

साँवरे ने मरोरी गोरी बहियाँ मोरी।
मेरो रंग मेरी पिचकारी और अबीर गुलाल की झोरी।
कर झकझोरी छीन छीन के हंस हंस और सखियन सो खेलत होरी ॥

कारी कहूं कछु बस नहि आवे घर सों निकसो थी सासु की चोरी
नाहि तो 'वहजन' ऐसो रिझावती जात भूल सगरी बरजोरी ॥

(होली–काफी)

करावें कौन बहाना गवन हमरा नगिचाना।
सब सखियन मों चुनर मोरी मैली दूजे पिया घर जाना।
तीजे डर मोहे सास ननद का चौथे पिया दैहै ताना ॥
प्रेम नगर की राह कठिन है वहां रंगरेज सियाना।
एक बोर दे दियो चुनरी मे तासो पिय पहिचाना ॥

राह चलत सत गुरु मिले 'वहजन' उनका है नाम बखाना।
जब उनकी कृपा हुई है मोपर तबही लगिहै ठिकाना॥

वहाब

वहाब का केवल एक बारहमासा नामक ग्रन्थ देखने में आया है।

ज्येष्ठ मास

लगा ग्रीषम पड़ें चहुँओर लूकैं। मेरे लेखे पड़ें मानो भभूकैं॥
सखीरी जेठ ये अब को बचा। जबै वह घाम सिर ऊपर तपैगा॥
तिहू पर आग न तन को बुझानो। हुआ जरि स्यामसयमुनाकापानो॥
पड़ें जल में अगिन के जो झकोलैं। सखी पूछ सभो लागी मझोलै॥
चहुँ दिशि घाम लूकैं देन लागा। सखोयहकामअबजिवलेनलागा॥
कठिन पापी हमारा जीव है री। एते दुख पर सखी घट पर रमैरी॥
न भावै धूप ना छाही हमन को। पवन पानी अधिक जारै हमनको॥
करूं क्या मैं सखो केहि देश जाऊं। सजन के देश मैं पत्री पठाऊं॥
धुआंमुझदेहकानिकसनजोलागा। भएजरश्यामकोयलऔरकागा॥
कहू किससे सखो अपनो कहानी। गिरीषम ऋतु हमै ऐसो बितानी॥
सखी भरसालतलफतहमकोबीता॥ न जानौ कौन दिन भर नैन मीता॥
कहानी मैं कहू सखियों बिथा की। सुनो चितलाय बातें इस कथा को॥
कहानी का सखी जो भेद पावै। सकलजगतनकेरीवकाध्यानलावै॥
कहै औहाब सो परबोण चेला। महम्मद है गुरू जिसका अकेला॥

वाहिद

'सुन्दर सुजान पर, मन्द मुसकान पर,
बांसुरी की तान पर ठौरन ठगी रहैं।

मूरति बिशाल पर, कञ्चन की माल पर,
खंजन सी चाल पर खौरन खगी रहै ॥
भौहे धनु मैन पर, लोने युग नैन पर,
शुद्ध रस बयन पर 'वाहिद' पगी रहै ।
चञ्चल से तन पर, सांवरे बदन पर,
नन्द के नन्दन तर लगन लगी रहै ॥

लतीफ हुसैन

मोहन-मोह

ऊधौ ! 'मोहन'—मोह न जावै;
जब-जब सुधि आवत है, रहि-रहि तब-तब हिय बिचलावै ।
बिरह-बिथा बेधत है उन बिन, पल-छिन चैन न आवै;
काह करौ ? कित जाउँ ? कौन बिधि तनकी तपनि बुझावै ।
व्याकुल ग्वाल-बाल अति दीखत, ब्रज-बनिता घबरावै;
गाय-बच्छ डोलत अनाथ सम, इत-उत, हाय, रभावैं ।
कंस त्रास भीषण लखि, सिगरो धीरज छूटो जावै;
कौन बचाव करैगो, अब तो यह दुख असह लखावै ।
जब लौं अवधि कंस-गृह पूरी करिकै मोहन आवैं;
तब लौं कौन उपाय करैं हम, कोऊ नाहि बतावै ।

शाद

(ठुमरी-काफी)

भोरी डगरचल तपतलीनीआज । तुम्हे श्यामबिहारी न आवे लाज॥
कर बरजोरी मोरीबहियांमरोरी । ऐसी ढिठाई पर पड़े री गाज ॥

सब ग्वालिन सो दान मांगतु है । क्या ब्रज में है तुम्हारो राज ॥
'शाद' पिया हरि के गुन गायो । याही ते सब तोरे बनिहैं काज ॥

सनद

(ठुमरी पर्च)

सखी अब क्या करूं न माने री
मोर मुकुट वाला ढीठ लंगरवा,
डगर चलत, पनिया भरत मोसे करत ठठोरी ।
"सनद" पिया मोरा नेक न मानै
बरज थकी बार बार आय करत बरजोरी ॥

(ठुमरी खम्माच)

मैका डगर चलत दीन्ही गारी रे ।
ऐसो ढीठ बनवारी गुइयां,
बिनती सकल करि हारी रे ॥
नीर भरन सब सखियन संग मिलि,
चली हौ धाय सो प्यारी रे ।
"सनद्" पिया मग छेक खड़ो भयो,
निरखत सगरी पनिहारी रे ॥

सुन्दर कली

सुन्दर कली का बनाया एक बारह मासा देखने में आया है ।

फागुन

जो आया मासफागुन का सुहौना। सुहौना मास सखियोंका लिखौना
सखी सब घर घर खेले है होरी। सलोनी साँवली सब रंग गोरी ।।
किसरिया रंग पिचकारी मे भरकर। सभी डाले हैं अपने पी के ऊपर।।
बजावें दफ़ व मिरदङ्गी मजीरा। पिया के सीस पर डारैं अबीरा ।।
अबीर अबरक बदन ऊपर छिड़कते।कि ज्यों तारे गगन ऊपर चमकते।।
जरद कपड़ा सभों का रंग बरग है। सभी कोई तो अपने पीके संग है।।
कुसुभी सोहे सारो सब किसोको।किसरिया रग अपने पी के जी को ॥
मेरा दिल ए पिया बिरहा का माता। इन्हो क खेलसे है दिल तड़पता।।
अछोतरहो सेती होली मची है। सखी की पीके संग बाजी लगी है ।।
सखी हारे तो वो पीकी कहावै। जो पी हारे तो पीको जीत लावै।।
हमारी जीत की बाजी को भूला दगा बाजी का मुझसे खेल खेला ।।
जो कुछ बीता सो बीता खूब बीता। अभी परदेस से घर आव मीता ॥
नगर के लोग ने होरी मचाई। कान्हा को तरह गोपी नचाई ।।
पिया इस वक्तमे तुम घर का आओ।पतुरिया और नटिनी को नचाओ।
मेरे दिल मे अभी होगा हुलासा। तेरे हीले से मै देखूँ तमाशा ॥
बिरहमाती जली जाती है होरे। रहे होली के दिन अब आन थोरे ॥
नगर के लोगो ने आगी जलाई। खुशी से आग होली में लगाई ॥
जली होलो लगे खुल खेल खेलने। सिरो पर अपने हर एक धूल मलने।।
गरहोरीकेदिनअफसोसअफसोस। पियापहुँचा नहीअफसोसअफसोस।।

होरी खेले सब कोई अपने पी के संग।
मेरो जी तरसै सखी, (सो) किस पर डालौ रंग ॥

सुलतान

(ठुमरी काफी)

मोरा चतुर श्याम सों मन अटका ।
बताओ गुइया कोई जादू टोटका ॥
'सुलतान' पिया बिन चैन न आवे ।
मोरा मन है रहत भटका भटका ॥

सैयद बरकतुल्ला

सैयद बरकतुल्ला का उपनाम "प्रेमी" था। ये बिलग्राम के रहने वाले थे इनका केवल एक दोहा मेरे देखने मे आया है जो नीचे दिया जाता है।

दोहा

जम जनि बौरा होई तू, कत घेरत माहि आन ।
हौं तो तबहीं दे चुकी, प्रान नाथ को प्रान ॥

हकीम हाजी अलीखां

अन्त की याद

मकड़ा जाला पूर २ के कितने जीव सताती है।
मक्खी मच्छड़ एक न छोड़े भुनगे तक को खाती है ॥टेक॥
कुटल स्वभाव पड़े तरुणाई वह सुध अपनी खोता है।
काल गालमें फंसि के मूरख अन्त समय फिर रोता है ॥
मकड़ी की लखि नीच वृत्ति को तू वैसा क्यों होता है ।
करजुग है यह नहीं है कलजुग फिरभी तू इत सोता है ॥

खटमल पिस्सू बचें न इससे ऐसा जाल बिछाती है।
मक्खी मच्छड़ एक न छोड़े भुनगे तक को खाती है ॥ १ ॥
यही दशा हो रही हमारी जरा नहीं है दिल में ज्ञान।
बुरा कर्म कोई एक न छोड़ा नहीं अन्तका किया ध्यान ॥
अपना स्वारथ करन हेतु हम दुखी किये कितनों के प्राण।
तापर रटन लगे स्वामी को कहो कैसे होवे कल्याण ॥
पहिले धारा सांच हिये नहीं अब क्यों शोर मचाती है।
मक्खी मच्छड़ एक न छोड़े भुनगे तक को खाती है ॥ २ ॥
सोच काल जब आता सिरपर तब प्राणी पछताता है।
कुछ भी नेकी हुई न हम से हाय प्राण अब जाता है ॥
दान धर्म कुछ किया न हमने बिगड़ी कौन बनाता है।
हाय नीम के पेड़ बोय अब आम कहां से पाता है ॥
जब आता है समय अन्त का मल के हाथ रह जाती है।
मक्खी मच्छड़ एक न छोड़े भुनगे तक को खाती है ॥ ३ ॥
मकड़ी माया जान जगत को हिये सभ्य जन करो विचार।
जब आता है अंत समय तब रो रोके सब करें पुकार ॥
हाय बुद्धि कैसी बौरानी अब तो जीवित पै पड़ी कुठार।
बिन प्रभु भजन किये ते प्राणी नहीं तेरा होवे उद्धार ॥
'हाजी अली' न सोचा पहिले अब तबियत घबराती है।
मक्खी मच्छड़ एक न छोड़े भुनगेतक को खाती है ॥४॥

हाफिज़

(परज धमार)

रंग नयो तेरो ढंग नयो तू कान्हा नयो तेरी आन नई है।
तेरी सभा सब रंग रंगीली हरि की धुनि औ शान नई है ॥

याके रूपको कौन पहचाने ध्यानसो हरि की पहचान नई है।
'हाफिज' छल ने होरी में मोही मुरली नई तेरी तान नई है॥

हामिद

स्वर्गीय पं० नकछेदी तिवाड़ी (अजान) संग्रीहित विज्ञान-मार्तण्ड में हामिद की एक सवैया लिखी है।

सवैया

जाहि तू हेरत है हिय बाहिर सो घट माहि बिराजत तेरे।
कोटिन बन्दगी क्यों न करै कबहूं न मिलै बिन आपन हेरे॥
पिण्ड तजे भटके किन आनहि "हामिद" यों कहै चेत सबेरे।
तू रह्यो नाथ सों कोस हजारन नाथ रहे तुव कण्ठ सो नेरे॥

हिम्मत खां

अग सुगन्ध

प्यारी को परसि पौन गौन कियो जा बन में,
ता बन के वृक्षन को चन्दन टढ़ात है।
केतिकी चमेली चम्पा रायबेलि चेरी वाकी,
ह्वै रह्यो कपूर सो परौसनि को गात है॥
मंजन महल के पनारे तक रहे पानि
अलि कुल आन तहां सबै मडरात है।
ताको बास पाय के दुगैगे कैसे 'हिम्मत खां,'
जाके तन बास त सुबास बसो जात है॥

हुसैन शाह

लोक कहै तू भई बावरी आपी लोक बौरानो रे।

पिय मोरा मैं पिय की सजनी पिय हित को बिकलानो रे ॥
साहु हुसैन फकीर रब्बाना जंगल जाय समानो रे ।

हैदर

(ठुमरी–काफी)

हांरे सैयां हमसे करो जनि प्रीत
फिरत हो न्यारे अलबेले मतवारे
तुम काहू के न मीत ।
नित तुम सौतन घर आवत जात हो
कवन गांव की रीति ।

(ठुमरी खम्माच)

बहियां न पकरो मोरी मुरकि कन्हाई रे ।
कर पकरत चुलिया मसकाई रे ॥
अरज गरज मोरी एको न मानी ।
हैदर पिया की मैं देत दुहाई रे ॥

शाह तुराब अली (काकोरी)

शाह तुराब अली का जन्म १२७५ हिजरी अर्थात् सं० १६१४ वि० मे हुआ था ये अवध के अंतर्गत काकोरी गांव के रहने वाले थे; इसी लिए ये काकोरी कहलाये । इनके पिता का नाम शाह काजिम साहेब था ।

इनके दो एक शेरों से पता चलता है कि यह किसी ब्राह्मण के लड़के शिवराज पर आसक्त थे । आप लिखते हैं ।

बचावे खुदा दिल को मेरे तुराब,
कि है मुद्दई इक बरहमन बचा ।

तथा शिवराज की प्रशंसा मे आपने लिखा है कि उसका ऐसा रूप है कि बाअ़ज़ का दिल भी फिसल जाय। यथा—

तूने शिवराज को नहीं देखा,
है वह खूबों मे खूबरू वाअ़ज़।
बहुत पीरो जवां तुराब ऐसे,
ग़श हैं उसके जमाल पर वाअ़ज़।

इनके मरने का ठीक ठीक समय नही नियत किया जा सकता किन्तु कमसे कम ये बावन बरस तक अवश्य जिन्दा थे। यथा—

कब तक तुराब यार से गाफिल रहेगा तू,
ग़फलत मे उम्र तेरी तो बावन बरस गई।

इनकी लिखी हुई कोई पुस्तक देखने में नही आई शायद उर्दू में इनका लिखा हुआ एक दीवान मिलता है। ये वास्तव मे उर्दू के ही कवि थे किंतु हिंदी में भी इनकी स्फुट रचनाएं मिलती है। नीचे इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं।

(१)

हाँ, हाँ मोको न छेड़ कन्हैया हौं तो दिनन की थोरी।
ब्रजमें का इक हमहीं बसत हैं और बहुत हैं साँवर गोरी।
निकसी हूं मैं आज माँदेर सों अपनी सास ननँद की चोरी।
फेंक न लाल गुलाल बसन पर ऊजर है अबै चूनर मोरी।
रँगसों जुबोरै न मोरी चुनरिया,खेलू तुराब वही सँग होरी।

(२)

सुपने माँ आँख पिया संग लागी चौंकि पड़ी फिर सोइ न जागी।
पिउ छुट और कोई नहि अपनो, यहि सपना कहूं काके आगी ?
फाग में सोये पिया मिल सबरी,जागूँ अकेले मैंहीं तो अभागी।
रंग-रंग की वह सारी जू पहिरे अपने हैं पिया रंग पागी।

हौं तो रहत बैराग में निसि दिन जब से तुराब भए बैरागी ।
रसीले पिउ सग रहस- रहस के भले जतन सों मैं रात जागी ।
जो भोर होते पिया सिधारो भया करेजवा हमारो दागी ।
तुराब हमरी बिथा न पूछो नहीं है मोसो कोई अभागी ।
मैं आज कैसे न होउ बेकल मोहें तो चेटक पियासों लागी ।

(३)

नीकी लगन मोहे अपने पिया को आंख रसीली लाज-भरी ।
जादू कियो मो-पर चितवन सो नींद गई मोरी चैन हरी ।
आंख लगत नही टुक देखे बिन, देख नजर भर जात मरी ।
पीको न कुछ समझाउ री गुनियां मै अस प्यार सों दर गुजरी ।
कहे तुराब डरों काहू सों क्यो पीत करा का चोरी करी ।
कान्ह कुंअर के कारन राधा तन से भई पीरी दुबरी ।
जब सों सिधारे श्याम द्वारका सूनी भई गोंकुल—नगरी ।
रानो पुरानी भई बैरागिन राज करे नई नोखी कूबरी ।
जा—जा के मर—मर के सखिया कूकत हैं दई काह करी ।
किन बिलमाओ 'तुराब' पिया को भूल गइ जो सुध हमरी ।

(४)

कैसे मैं लागूं पिया के गरवा, चुभ —चुभ जात गरे का हरवा ।
कित बिनतनसो कहि मिनतनसो आए ना मोरे मंदिरवा पियरवा ।
चैन सों सोई तुराब पिया संग-मूंद के अपने दसों दुवरवा ।
ताके तो मनको नहीं गम तनको सुखो रहे अस मोरा जियरवा ।

शाह तुराब अली का परिचय और कविताए इस पुस्तक के छप जाने के बाद मिली । अस्तु उन्हें इस परिशिष्ट भाग मे स्थान देने के लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगे । द्वितीय संस्करण म यह त्रुटि दूर कर दी जायगी ।

परिशिष्ट (ग)

'राग कल्पद्रुम" बङ्गला लिपि में हिन्दी गानो का एक बहुत बड़ा संग्रह है; जिसकी रचना श्रीकृष्णनन्द व्यास ने की है। यह संग्रह चार खण्डों में विभाजित है। इसका द्वितीय खण्ड लखनऊ के नवल किशोर प्रेस से हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है। मैंने इस ग्रन्थ के द्वितीय और चतुर्थ खण्ड को देखा है शेष खण्ड बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी मुझे प्राप्त न हो सके। इधर इस अपनी पुस्तक को यथा शीघ्र प्रकाशित करने के विचार के कारण मुझे शेष खण्डों के लिये बेशक लिखा पढी करने का अवसर भी कम मिला। अस्तु इस ग्रन्थ में आये संपूर्ण मुसलमान कवियों की कविताओं का मै अपनी पुस्तक में संग्रह न कर सका। अब द्वितीय संस्करण में राग कल्पद्रुम में आये समस्त मुसलमान कवियों की कविताओं के देने का प्रयत्न मैं करूंगा। राग कल्पद्रुम के चतुर्थ खण्ड के अन्त में उन कवियों की एक बृहत् तालिका दी गई है जिनकी रचनाएं उस मे संग्रहित है। उसमे अनेक मुसलमान कवियों के भी नाम आये है जिन्हें मैं अकारादि क्रम से नीचे लिखता हूं। इसके अतिरिक्त जिन कवियों के नाम अन्य ग्रंथों से मालूम हुए है उनके नाम भी इसी तालिका में सम्मिलित है। किन्तु यह बात अभी संदिग्ध है कि ये सबके सब मुसलमान ही हैं केवल अनुमान से काम लिया गया है। बहुत संभव है कि इन नामो के उद्धृत करने में ऐसे मुसलमान कवियों के नाम छूट गये हो जिनके नाम हिन्दुओं जैसे रहे हों। जिन मुसलमान कवियों की कविता अथवा जीवन वृत्ति इस पुस्तक में पहिले आचुकी है उनके नाम निम्न तालिका में नहीं दिये जायँगे।

अचपल मौज
अजब
अजीब
अलहदाद
अदारंग
अनलहक
अनलहक चिस्ती
अमीर खां
अम्बिया शेख
अलावदीन शाह
अलीमन
अली अकबर हसन
अली गुलामशाह हासानी
अली सूरतजा
अली अहमदाली
असगर अली खां
अहमद शाह
आगर
आगा मोतुमदौलासखी बहादुर
आनन्द रंग
आलमगीर
आलम मदतशाह
आलम शाह
आली
आली भागी
आवसी जी
आशक रंग
आशिक
आसफुद्दौला
आसान शेष
आलम हुसेन
आरिफ
आसिफ
इच्छा बरस
इनायत अली
इमाम खां
इमाम बख्श
इमान दीन
इलतमास
इब्राहिम
इबलीस
इन्शा
इसन्ना शाह काजी
इसफ सने
ईशक मोहमद
इश्क रंग
उद्दोत सेन
उमर बक्स
उश्शाक
एगाजुद्दीन हैदर
औसान
कबीर खां

कलंदर शाह
.कसम साहेब
क़ायम खां
काले मिर्जा
कासम शाह
काजी अकरम
कीरत शाह
कुतुबुद्दीन
कुतुब मूलक
ख्वाजा मौजुद्दीन कुतुबुद्दीन
ख्वाजादीन शकर गंज
ख्वाजामीर
ख्वाजा हसन
ख्याल खुशाल
ख्वाजा कुतुब
ख्वाजा खिद्र
खान आलम (नव्वाब)
खिजर
खुशरंग
गफूर
गबरू
गाजी
गामू
गुजर
गुलशन पीर
गुलामी

चांदशाह
छजुखां
जग्नूमग्नू खां
जलालदीन
जलालदीन मोहम्मद गाजी
जलालदीन मोहम्मद बाकर
जलाल मोहम्मद शाह
जहूर
जलील
जान जानाॅ
जालिम
जाफर खां
जाफर सादक
जाफर पीर
जिन्द
जीवन खां
जुलकर नैन
जैनुद्दीन
जैनलावदीन
तान प्रवीन
तान वर
तान बरस
दरिया खां
दिलरंग
दिलाराम
दिलारामह

दुलेखां
दौलत खां
नज़ीर
नबी
नजफशाह मूरतजा
नवल अजब
नरीम मोहम्मद
नसीरूद्दीन
नाजामदीन
नाशर अली
नाशर खां
नासर पीर
निजामुद्दीन औलिया (सुल्तान)
निशात
निजामुद्दीन चिस्ती
निज़ामी औलिया
निज़ामुद्दीन
नेवाज खां
न्यामत खां
पंथी (मिरजा रोशन जमार)
पान खां
पीर मुरतजा अली
प्यार खां
प्रेम जान
प्रेमी (शाह बरकत)
फरीद
फजायल खां
फरीद शकर गज
फजअली
फारातुला
बक्स साकिल
बदरूद्दीन मीर
बहराम खां
बाकर खां
बांक बरस
बाग़ बहार
बासद खां
बाणी विलास
मजनू
मदत अली
मदन साहब
मदन हैदरी
मनरंग
मर्दान औलिया
मस्तान
महम्मद खां
महम्मद
महम्मद इश्कदा
महम्मद मेदी साहब जमान
मदनायक(निजामुद्दीन बिलग्रामी)
मलिक नूर मोहम्मद
महबूब पीर

महबूब बांदा
मारू जी
मान खां
मियां मिरजा
मीम महोब्बत
मीर रुस्तम
मीर माधो
मुहम्मद बाकर
मुहम्मद नबी
मुबारक हजरत औलिया
मुराद
मुराद अली
मूर खां
मूरत शाह अली
मूरतजा
मेंहदी
मौज
मौजुद्दीन शाह
मौजुद्दीन
मौजुद्दीन अजमेरी
मौजुद्दीन ख्वाजा
मीर अली शाह गुदर
युसुफ
रहीम बक्स
रज्जब अली
रस रंग
रहमतुल्लाह
रहमान
रंग बरस
रंग रस
राग रस खां
शाह जमन
शाह जमाल
शाह जलाल
शाह पन्ना
शाह बहादुर
शाह सवाल
शाह मोहम्मद
शाह शफ़ी
शाह हादी
शूकर जामी
शेख गदाई
शेख मशायक औलिया
शेख़ फ़रीद
शेख शाहज़ादा
शेख सलेम
सखन मखन
सरस रंग
सालार जग
साह आलम
साह शिकन्दर
साह जी

साहनसाह पीर
साहब किरान शाहेजहां
साह मर्दान
साहब खां
सादी खां
सुजानअली
सुल्तान अली खां
सुल्तान इब्राहिम
सुल्तान दूलह
सुल्तान मसादक
सुल्तान सलेम
सुलतानी
सेख नसीरूद्दीन
सेख फरीद
सय्यद सालार
सौरोट पेचारे
हमदम
हज़रत अली
हज़रत मिराजां
हज़रत बर्वा औलिया
हसुखा
हल खां
हसन
हाफिज़ तुरक
हाशम बीजापुरी
हिम्मत बहादुर (नव्वाब)
हिदायत
हिदायत आज़िज़
हिम्मत
हुमायूं
हुसेन मारहरी
हुसेनी
हुसैन हालों खां

परिशिष्ट (घ)

इस पुस्तक के प्रणयन मे जिन ग्रन्थों से विशेष रूप से सहायता मिली है उनकी तालिका नीचे दी जाती है। लेखक उनके प्रकाशक, सम्पादक तथा प्रणेताओं का हृदय से कृतज्ञ है।

(१) शिवसिंह सरोज–शिवसिंह सेंगर

(२) हिंदी की खोज संबंधी रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी

पत्रिका, नागरी प्रचारिणी ग्रंथ माला—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

(३) मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु

(४) हिंदी साहित्य सम्मेलन की लेख मालाएं—हिंदी साहित्य सम्मेलन कार्यालय-प्रयाग

(५) संतबानी पुस्तक माला—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

(६) हिन्दी-भाषा—बालमुकुन्द गुप्त

(७) हिंदी भाषा की उत्पत्ति

(८) सरस्वती- (मासिक-पत्रिका) —इंडियन प्रेस, प्रयाग

(९) कविता कौमुदी—रामनरेश त्रिपाठी

(१०) राग कल्पद्रुम (बंगला)—श्री कृष्णानंद व्यास

(११) आबेहयात (उर्दू) 'आज़ाद'

(१२) नग्मये दिलकश (उर्दू)

(१३) साहित्य रत्नाकर—कवि कान्हजी।

(१४) दिग्विजय भूषण—

(१५) The Modern Vernacular of Hindustan (English)—Sir George A Grierson

(१६) Linguistic Survey of India (English)—Sir George A Grierson

(१७) Hindi Literature (English)—F A.K , M A

इनके अतिरिक्त इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे हजारों काव्य तथा अन्य ग्रन्थों के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनमें से अनेकों से किसी न किसी अंश में सहायता मिली, परंतु स्थानाभाव के कारण यहां उनकी नामावली देना असंभव है।

समाप्त

पुस्तक छपने के बाद

यकरंग

गुलाम मुस्तफा कुली खां का उपनाम 'यकरंग' था। ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनके जन्ममरण आदि का समय अज्ञात है। पहले ये अपनी कविता मे शाह मुबारक 'आबरू' से इसलाह लेते थे किन्तु वृद्धावस्था मे मिर्जा जानजाना मज़हर को अपनी रचनाएं दिखलाया करते थे।

ये बड़े रसिक और चतुर थे और गाने बजाने के भी बड़े प्रेमी थे। वास्तव में ये उर्दू के कवि थे किन्तु इन्होंने अपने संगीत प्रम के कारण हिन्दी पद्यों की भी रचनायें की हैं। इनकी कुछ हिन्दी रचनाएं नीचे दी जाती है:—

निस दिन जो हरिका गुण गायेरे।
बिगड़ी बात बाकी सब बन जाये रे॥
लाख कहूँ माने नहि एको अब कहो कब लग हम समझायें रे।
सोच बिचार के करो कुछ 'यकरंग' आखिर बनत २ बन जायेरे॥

× × ×

सांवलिया मन भायारे, बांके यार।
सोहिनी सूरत मोहिनी मूरत हिरदै बीच समायारे बांके यार।
देस में ढूंढ़ा विदेश मे ढूंढ़ा अन्त को अन्त न पायारे बांके यार॥
काहू में अहमद काहू में ईसा काहू में राम कहाया रे बांके यार।
सोच विचार कहे 'यकरंग' पिया जिन ढूंढ़ा तिन पाया रे बांके यार॥

× × ×

होली ।

हरदम हरनाम भजोरी ।
जो हरदम हरिनाम को भजिहौ मुक्ति हो जइहैं तोरी
पाप छोड़ के पुन्य जो करिहौ तब बैकुंठ मिलोरी ॥
करम से धरम बनोरी ॥
'यकरंग' पिय से जाय कहो कोई हर घर रंग मचोरी ।
सुर नर मुनि सब फाग खेलत हैं अपनी अपनी ओरी ॥
खबर कोई लेत न मोरी ॥

× × ×

होली आई पिया नहिं आये ।
मोरा बिन पिया जिया घबराये, जाय कहां छाये ॥
फाग खेलै सब अपने पिया संग हमरा जिया ललचाये ।
सगरी रैन मोहिं कलपत बीता नैन नीर भरि आये ॥
जाय कहो कोई 'यकरंग' पिय सों तुम बिन कछु न सुहाये ।
फाग मास जल जाये, कौन अब गाये बजाये ॥

× × ×

पिया मिलन कैसे जाओगी गोरी ।
रंग रूप सब जात रहोरी ॥
ना अच्छे गुन ढंग ना अच्छे जोबना ।
मैली भई अब चूंदर मोरी ॥
कर के सिंगार पिया घर जइयो ।
तब देखिहैं पिया तोरी ओरी ।
जाय कहो कोई 'यकरंग' पिया सों ।
तुम बिन या गत हो गई मोरी ।

× × ×

कजली।

बरखा लागा मोरी गुइयां सैयां नाहीं आये मोर।
रिमझिम रिमझिम मेघवा बरसे घटा उठी घन घोर॥
बिजली चमके बादर गरजे बरसत हैं चहुँ ओर।
पपिहा बोले कोयल कूके मोर मचावत सोर॥
चुन चुन कलियां सेज बिछाऊं बिन पिया हो गयो भोर॥
"यकरंग" पिया सों जाय कहो कोइ राह तकत हौं तोर॥

× × ×

ठुमरी।

काहे गोरी चाल चलत इठलात।
अटपट चाल चलो जिन गोरी पतली कमर बलखात।
चंचल चाल तोरे नयन रसीले जिहि चितवत बलि जात॥
'यकरंग' पिया को बेगि ले आओ कलपत हूं दिन रात॥

× × ×

मितवा रे नेकी से बेड़ा पार।
जो मितवा तुम नेकी न करिहउ बुड़ि जइहौ मझधार।
नेक करम से धरम सुधरिहैं जीवन के दिन चार॥
'यकरंग' भागो खेर हशर की जासे हो निसतार॥

× × +

बाट चलत मोरी रोकत डगरिया ढीठ लंगर जसुदा को कन्हैया।
लपट झपट मोरी गागर फोरी मसक गई मोरी सारी चुनरिया॥
बर जोरी मोरी बहियां मरोरी लचक गई मोरी पतरी कमरिया।
'यकरंग' पिया कहो कैसी करूं मैं अब ही निपट मोरी बारी उमरिया॥

× × ×

बलमारे झुलनियां मुहि आज मंगा दे।
रतन जड़ाउ की झुलनी मंगा दे ता बिच लाल लगा दे।
झुलनी पहन के पिया घर जइहो निरगुन राह बता दे।
झुलनी भी ला दे सारी मँगा दे "यकरँग" रंग रँगा दे॥

× × ×

दादरा

कहो कैसे बलमा बने मोरी तोरी।
जब लग बात न मनि हौ मोरी॥
सूनी सेज मोहिं कल न परत है तुम सौतन संग राज रजोरी।
जब से गये मोरि सुधि हूँ न लीनी तुम बिन प्रान तजत है गोरी॥

× × ×

दोहरा

संपत तो हस के कटें, विपत कटें ना रोय।
'यकरंग' आसा राखिये, हरि चाहे सो होय॥

× × ×

रंग वही यकरग रंगो, कि सबसे रंगा न जाय।
'यकरंग' तुम वह रंग रंगो, कि हर रंग में मिलजाय॥

× × ×

पहेलियां

'यकरंग' वह घर कौन है, जामे है दस द्वार।
ऐसे घर में जो बसे, वाको क्या इतबार॥
जीव और देह

× × ×

'यकरंग' वह फल कौन जो, बिन बोये फरियायं।
बढ़त बढ़त इतने बढ़ें, आखिर को झुकि जायं॥
रुदन

आशी

(१८६०—१६७३)

आसी का पूरा नाम मौलाना शाह अब्दुल अलीम "आसी" था। ये सिकन्दर पुर जिला बलिया के रहने वाले थे। इनका जन्म संवत् १८९० तथा मृत्यु संवत् १६७३ है। ये अधिकतर गाजीपुर में रहते थे। अस्तु, ये आसी गाजीपुरी के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। ये अपने समय के अरबी फारसी के अद्वितीय विद्वान थे। इन दोनों भाषाओं पर इनका अपनी मातृ भाषा के समान अधिकार था। कविता का प्रेम इन्हें लडकपन से ही था। इन्होंने काव्यकला मौलाना इमामवख्श 'नासिख' के खान्दान से सीखी थी। ये सूफी धर्म के मानने वाले थे। इससे इनकी कविता में भक्ति, वैराग्य, विरह और प्रेम का चमत्कार पूर्ण वर्णन पाया जाता है। उर्दू के सुकवि होते हुए भी इन्होंने हिंदी में कुछ दोहे लिखे हैं जिनमे से कुछ नीचे दिये जाते हैं:—

दोहे

भुज फरकत तोरे मिलन को, स्रवन सुनन को बैन।
मन माला सोहि नाम का, जपत रहत दिन रैन॥
कर कम्पे लिखनी डिगे, अंग अंग थहराय।
सुधि आवत छाती फटे, पाती लिखी न जाय॥
मन मा राखूं मन जरे, कहूं तो मुख जरि जाय।
गूंगे का सपना भयो, समझ समझ पछताय॥
हम तुम स्वामी एक है, कहन सुनन-को दोय।
मनको मन से तोलिये, दो मन कभी न होय॥
काजर दूं तो किरकिराय, सुरमा दिया न जाय।
जिन नैनन मां पिय बसै, दूजा कौन समाय॥

मै चाहूं कि उड़ चलूं, पर बिन उड़ा न जाय।
काह कहौं करतार को,(जो)पर ना दिया लगाय॥
ओस ओस सब कोई कहे, आंसू कहै न कोय।
मोंहि विरहिन के सोग मे, रैन रही है रोय॥

लालदास

(१५९७—१७०५)

लालदास का जन्म संवत् १५९७ वि० में और मृत्यु संवत १७०५ वि० मे एक सौ आठ वर्ष की अवस्था में भरतपुर रियासत के नगला नामक गांव में हुई। यह गांव अलवर राज्य के सीमा के निकट बसा हुआ है। अलवर राज्य में रामगढ़ एक तहसील है,उसमे शेरपुर एक गांव है,वही लालदास की समाधि है। इस समाधि पर वर्ष में एकवार आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को मेला लगता है। इस समाधि के अतिरक्त और भी कई गावों में लालदास के मंदिर हैं।

लालदास मेव थे। अलवर राज्य के मेवों में इनके बहुत से अनुयायी मिलते हैं। मेवो के अतिरिक्त वैश्यों और कलालो में भी इनके कुछ अनुयायी पाये जाते है। ये कहने मात्र को मुसलमान थे पर वास्तव में हिंदू धर्म के कट्टर अनुयायी थे। ये अलवर राज्य की पहाड़ियों से लकड़ियां बटोर कर बेचा करते थे। लालदास योगी थे किन्तु सन्यासी नहीं, उनके एक लड़की और लड़का भी था। लालदास के संबंध मे प्रभु ईसा मसीह के समान पचीसों ऐसी कहानियां मिलती हैं कि उन्होंने कोढ़ियों का कोढ़ अच्छा कर दिया, अन्धीके आंख दी इत्यादि। कहा जाता है कि तिजारा के हाकिम ने एकवार उनको मांस

का एक टुकड़ा दिया पर उनके हाथ में आते ही वह मांस का टुकड़ा चावल के भात में परिणत हो गया। अस्तु—

लालदास कुछ पढ़े लिखे न थे, पर उन्होंने बहुत सी वाणियां कही हैं जो सदुपदेश से पूर्ण हैं। इन वाणियो का संग्रह अलवर राज्य में लालदास के अनुयायियों के यहां बहुत मिलता है पर अभी तक कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। नीचे इनकी वाणियों का कुछ नमूना दिया जाता है।

शब्द

लाल जी भगत भीख न मांगे मांगत हूं शरम।
घर घर हांडत देख है क्या बादशाह क्या हरम ॥ १ ॥
लालजी साधु ऐसा चाहिए धान कमा कर खाय।
हिरदै हर की चाकरी पर घर कबहूँ न जाय ॥ २ ॥
साधु ऐसा चाहिए चौड़े रहे बाजा।
टूटे की फिर जुड़ै मन का धोखा जाय ॥ ३ ॥
लाल जी हक खाइये हक पीइये हक की करो फरोह
इन बातन में साहब खुशी विरला करते कोइ ॥ ४ ॥
लाल जी घर कर तो हल करो सुनो हमारी सीख।
दोजख वे जायंगे घर बारी मांगै भीख ॥ ५ ॥
"क्या मांगते का मन है मांगे टुकड़ा खाय।
कुत्ता जो हांड़त फिरै जनम अकारथ जाय" ॥ ६ ॥
बहते को बह जाने दो मत पकड़ो थोर।
समझाये समझे नहीं दे धक्के दो और ॥ ७ ॥
शूरा ताही जानिये लड़े धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होय पड़े तहूँ न छाड़े खेत ॥ ८ ॥
सो धन लालन साचरौ जो आगे को होय।
कांधा पीछे गाठरी जात न देखा कोय ॥ ९ ॥

खिरद मन्द अली

खिरद मन्द अली शाहपुर के लाला श्री राम के आश्रित थे। इन्होंने हिजरी सन १२०६ में मनामल दीनी नामक पुस्तक लिखी जिसमें कुरान की कुछ आयतों का हिन्दी मे अनुवाद किया जिसकी नकल कुदरत अली ने हिजरी सन १२५३ में की। पुस्तक में कुल ४८ आयतों का हिंदी अनुवाद है अन्त मे कुछ आयतों की विस्तृत व्याख्या भी पौराणिक ढंग पर की है। इनकी कविता का नमूना नीचे दिया जाता है।

× × ×

अल्ला नाम जपौ रे भाई। जो तुम्हें कुछ है चतुराई ॥
अल्ला नाम जपौ हर सांसा। जो चाहो बेकुंठ क बासा ॥
अल्ला नाम जपौ दिन राता। गैर का तोड़ो देशी नाता ॥
अल्ला नाम से हो निस्तारा। अल्ला नाम है सबसे प्यारा॥
अल्ला सा दूजा नहिं कोई। जो कुछ अल्ला करे सो होई॥
जो कोई अल्ला नाम जपेगा। नीडर हो जग बीच रहेगा ॥

× × ×

जग फानूस का शकल बनाया। आपको जां तर होके छिपाया।
हाथी घोड़े उसमें सारे। दीपक बन सब पुर देख्यारे ॥
दीपक हो जब अन्दर आया। तब वह मन्दिर सब को भाया।
जब दीपक हो आया अन्दर। सूझे इन्दर सूझे चन्दर।
जब लग दीपक फानूस से जावे। काहू को फानूस न भावे ॥

÷ × ×

ओछे पीर से जो मिले, क्यों ना होवे ख्वार।
पूछ जो पकड़ी भेंड़ की, बार रहै ना पार ॥

मन्सूर।

मसूर के बारहमासा की एक हस्त लिखित प्रति फारसी

लिपि में बाबू ब्रज रत्न दास, बुलानाला काशी के पास हमने देखी है । इनके विषय में और कुछ ज्ञात नही है । कविता का नमूना नीचे दिया जाता है ।

सुनो सखियों बिकट मेरी कहानी । भई हूँ इश्क के गम से दिवानी ।
न मुझको भूख है ना नींद राता । बिरह के दर्द से सीना पिराता ॥
तमामी लोग मुझ बौरी कहैरी । खिरद गुम कर्दः मजनू हो रहीरी
अरे यह नाग जिसके डक लावै । न पावेगा नूर व जोड़ा गवांवे ॥
अरे यह आगही है क्या बला है, कि जिसके आगसे सब जग जला है
विकट किस्सा निपट मुश्किल कहानी, दिवानी की सुनो सखियो सुनानी
चि मी साजम कि फिर दीदार पाऊं, व खिल्वत गाह जाना बाह पाऊं ।
रसीदा बरसरम हंगाम बरसात । पिया परदेश है हैहात हैहात ॥

× × ×

चढ़ा सावन बजा मारू नकारा, पिया विन कौन है साथी हमारा ।
घटा कारी है चारो ओर छाई, बिरह की फौज मुझ ऊवर चढ़ाई ॥
पपीहा पीउ २ निसदिन पुकारै, पुकारै दादुरो झींगुर झुकारै ।
अरे जब कूकू कोयल की सुनाये, तमामी तन बदन मे आग लाये ॥
सुने जब मोरकी आवाज बनमों, शके बज़दिल खुदः आराम तनसों
दिल उसका सख्त है ज्यौ फौलाद, सितमगर शेष है फरियाद २ ॥
मिलन पाछे विछुड़ना फिर कठिन है, कहो अब जिंदगी का क्या जतन है
हिंडोल झूलती सब यार पिउ संग, हसदकी आगने जाला मेरा अंग ।

क़ाजी अशरफ महमूद ।

दर्शनोल्लास

ठुमुक ठुमुक पग, कुमुक—कुञ्जमग,
चपल चरण हरि आए ।
हो हो, चपल चरण हरि आए ॥

मेरे प्राण भुलावन आए,
मेरे नयन लुभावन आए,
निमिक-भिमिक-भिम, निमिक भिमिक-भिम
नर्तन-पद्-ब्रज आए,
हो हो, नर्तन-पद-ब्रज आए।
मेरे प्राण भुलावन आए
मेरे नयन लुभावन आए,
अरुण-करुण सम, छिन्न—भिन्न तम,
करन—बाल रवि आए।
हो हो, करन बाल रवि आए॥
मेरे प्राण भुलावन आए,
मेरे नयन लुभावन आए,
अमल कमल कर, मुरलि मधुर धर,
बंशी बजावन आए,
हो हो, बंशी बजावन आए,
मेरे प्राण भुलावन आए,
मेरे नयन लुभावन आए,
पुंज-पुंज हर, कुंज-गुंज भर,
भृंग-रंग हरि आए,
हो हो, भृंग रंग हरि आए,
मेरे प्राण भुलावन आए,
मेरे नयन लुभावन आए,
भुन-भुन दुल-दुल, मंजुल बुल-बुल,
फुल्ल मुकुल हरि आए,
हो हो, फुल्ल मुकुल हरि आए,
मेरे प्राण भुलावन आए,
मेरे नयन लुभावन आए,